



संसार की प्राचीन सभ्यताएँ  
तथा  
भारत से उनका सम्बन्ध

रामकिशोर शर्मा एम० ए०

प्राप्ति स्थान

आदर्श पुस्तक मण्डाल

१८, धपर बितपुर रोड, फर्रुखा—७

प्रकाशक—  
सिंहासन राय 'सिद्धेश'  
आदर्श पुस्तक भण्डार  
१८, अपर चितपुर रोड,  
कलकत्ता-७

शाला—  
आदर्श पुस्तक भण्डार  
डी० १३/८६ लक्सा रोड  
(गुरुनाग) वाराणसी

प्रथम संस्करण  
१००० प्रतियाँ, सन् १९६२

मुद्रक—  
हरिनारायण राय  
प्रिंटिंग प्रेस  
अपर चितपुर रोड, कलकत्ता-७

## \* दो शब्द \*

श्री रामकिशोर शर्मा ने इस पुस्तक में प्राचीनकाल की कुछ मुख्य-सभ्यताओं की चर्चा की है। उन्होंने जिस सामग्री का मसह किया है, उससे बातों को तत्त सभ्यताके सम्बन्ध में दिग्दर्शन प्राप्त हो जायगा और हम बात का अन्दाज लग जायगा कि पिछले कुछ हजार वर्षों में मनुष्य ने किस प्रकार वयरता का अतिग्रमण करके सभ्यता के क्षेत्र में पदापण करने का प्रयत्न किया है। इतिहास अपने को पूर्णतया कभी नहीं टहराता, परन्तु यह भी सत्य है कि प्रायः सभी पुरानी सभ्यताओं का इतिहास एक जैसा रहा है। ये उठी, विकास को प्राप्त हुई और फिर समाप्त हो गई। किसी हिन्दी-कवि के शब्दों में—

जा बढे सो बरे, जो बरे सो बुताने ।

इस नियम के दो ही अपवाद देख पडते हैं, चीन और भारत। हम नहसमें न पडकर कि कौन सभ्यता पूर की है और कौन अपरकाल की, इतना तो निश्चित है कि चीन और भारत की सभ्यताएँ पुरानी सभ्यताओं में से कइयों की दीर्घकाल तक समझालीन रही हैं। परन्तु आज ये सभ्यताएँ तिरोहित हो गईं। कइयोंके तो दीपक उनके ही सामने जले और उनके सामने ही टुटे पड गये। यह गम्भीर विचारणीय प्रश्न है कि यह क्या चीज है जिसने अब तक चीन और भारत को अयोप रखा है। सभ्यता ससृति का बाहरी परिधान है। इन दोनों देशों की ससृतियों में कोई तो ऐसी बात होगी कि उनकी आत्मा अब तक कोई नटा और अनेक बार के राजनीतिक उथल-पुथल का सामना करते हुए आज भी ससार में उँचा स्थान रखती है।

अस्तु, लेखक ने पुरानी सभ्यताओं का भारत से सम्बन्ध भी दिग्दर्शनाया है। इस विषय में उन्होंने उस मत को उपस्थित किया है जिसको मैंने अपनी पुस्तक 'आर्यों का आदि देश' में व्यक्त किया था। उन्होंने ऐसा लिखा भी है। अपने विचारों का समर्थन देकर स्वभाषन प्रस्तुतता होती है। उन विचारों में इतना अंश तो प्रायः निर्विवाद ही है कि कुछ जातियों जैसे मितन्नी का भारत से घनिष्ठ सम्बन्ध था।

उन दूरस्थ लोगों में भारतीय देव देवियों का पूजा जाना ही इस घनिष्ठता का प्रमाण है। परन्तु इस बात को मैं मुक्त-कण्ठसे नहीं कह सकता कि इन सब लोगों का भारत से जाकर दूसरे देशों में घसना अकाष्टा रूप से सिद्ध हो गया है। भाषा, सस्कृति और सभ्यता एक देश से दूसरे देशमें ऐसी अवस्थाओंमें भी गमन करती है जिनके मूल देशमें निवासी अपने घर पर ही रहते हैं। सम्भव था, इसमें कोई सन्देह नहीं है। परन्तु उसका रूप क्या था, और गहराई कितनी थी, यह विवादास्पद प्रश्न है। पणियों का विषय और भी सन्दिग्ध है। जैसा मैंने भी माना है, भले ही वे लोग किनिशियन लोगों के पूर्वज रहे हों, भले ही भारत आते रहे हों, व्यापार और थोड़ा बहुत लूटमार भी करते रहे हों। इन बातों की ध्वनि तो ऋग्वेदमें भी मिलती है। परन्तु वे यहाँ के निवासी थे, यह नहीं कहा जा सकता। मय जाति का प्रश्न और भी जटिल है। नाम में सादृश्य है। यह भी सिद्ध है कि मय लोग निर्माण विद्या के अच्छे पण्डित थे। फिर भी ऐसा कहने में तथीयत हिचकती है कि वे लोग भारत से ही अमेरिका गये थे और महाभारत का मयदानव अमेरिका में युधिष्ठिर का महल बनाने के लिए भारत लाया गया था। यदि श्री शमा ने मेक्सिको, पीरू और ब्राजील की पुरानी सभ्यताओं की भी कुछ खचा कर दी होती तो उनको भारत से सादृश्य की बहुत-सी बातें मिल जाती। इनमें से कुछ बातोंका जिन श्री चमनलाल ने अपनी पुस्तक ( Hindu America ) में किया भी है।

अस्तु, बहुत से भारतीय विद्वानों का यह मत रहा है कि शृंगी पर सर्वत्र भारत से ही सस्कृति और सभ्यता गई है। यह बात सही हो या न हो, परन्तु इतना तो निश्चित है कि प्राचीनकालमें भारत और दूसरे सभ्य देशों में काफी आदान-प्रदान होता रहा है और उसके फलस्वरूप एक का दूसरेपर काफी प्रभाव पड़ता रहा है। मेरा विश्वास है कि प्रस्तुत पुस्तक के द्वारा हिन्दी जाननेवालों को प्राचीन सभ्यता सम्बन्धी काफी सामग्री प्राप्त हो सकेगी और प्राचीनकालमें अन्तर्देशीय सांस्कृतिक आदान प्रदान के विषय की काफी मज़बूत मिल जायेगी।

राज भवन, जयपुर

ज-माघमी २०१६

—सम्पूर्णानन्द

## प्रकाशकीय

आदरणीय ऋषु श्री रामकिशोर शर्मा एम० ए० की पुस्तक 'समर की प्राचीन सभ्यताएँ तथा भारत से उठाका सम्बन्ध' को प्रकाशित कर हमें हार्दिक प्रशंसा का अनुभव हो रहा है। पुस्तक पहले प्रकाशित हो जानी चाहिये थी, पर कार्याधिक्य के कारण वैसा नहीं हो सका। आशा है, इस प्रकार के अवाञ्छनीय विलम्ब के लिए पुस्तक के प्रेमी पाठक हमें क्षमा करेंगे।

पुस्तक के प्रूप-संशोधन के सिलसिले में मुझे सम्पूर्ण विषय को पढ़ जाने का अवसर मिला। मेरी धारणा है कि अध्ययन प्रेमी एवं चिन्तनशील लेखक का पुस्तक-लेखन के अपने उद्देश्य में पूरा सफलता मिली है।

भारत जगद् गुरु है, सभ्यता का पाठ इसने सम्पूर्ण विश्व को पढ़ाया है, उसकी गौरवमयी सभ्यता ने विश्व के प्रायः सभी देशों को प्रभावित किया है—इन सभी विषयों को सुविष्ट लेखक ने आधुनिकतम शोधों से प्राप्त ऐतिहासिक तथ्यों द्वारा प्रतिपादित किया है। इस प्रकार यह पुस्तक प्रकाशित होकर इतिहास-विषय की पुस्तकों की जो सराशा वृद्धि करने जा रही है, उससे मात्र सख्या वृद्धि ही नहीं होगी, धरन् महत्व वृद्धि भी होकर रहेगी—ऐसा हमारा हृद् विश्वास है।

पुस्तक की किसी प्रकार की कमी और त्रुटि से जो सम्जन हम अनगन करायेंगे, उनसे प्रति हम अत्यन्त आभारी होंगे।

—सिंहासन राय 'सिद्धेश'

## कृतज्ञता-ज्ञापन

प्रस्तुत पुस्तक में विषय को अधिक बोधगम्य बनाने के हेतु छोड़े से चित्र तथा मानचित्र भी दिये गये हैं। इनमें से निम्न पाँच 'एटलस आफ एनशंट एण्ड ह्यासिकल ज्योग्राफी' के आधार पर तैयार किये गये हैं जो निम्नलिखित हैं—

- (१) मिस्र साम्राज्य—१४५० इ० पू०।
- (२) बेबीलोनियन साम्राज्य—५६० इ० पू०।
- (३) इटालिया (४) ग्रीस (५) एशिया माइनर।

उक्त मानचित्र प्रकाशित करने की अनुमति 'एटलस आफ एनशंट एण्ड ह्यासिकल ज्योग्राफी' के सम्पादक तथा प्रकाशक जान वारथोलोम्यू एण्ड सन लि० १२ टकन स्ट्रीट एडिनबरा ने निम्ना किसी शु क के प्रदान की है। इस हेतु उक्त सस्था के प्रति हम अत्यन्त आभारी हैं।

'सुमेर' सम्बन्धी अध्याय में 'विकसन' की मूर्ति का जो चित्र दिया गया है वह भी सम्पूर्णानन्द लिखित 'आर्यों का आदि देश' से लिया गया है जिसकी अनुमति श्री सम्पूर्णानन्द ने देने की कृपा की है। कुछ चित्र तथा मानचित्र अथवा प्रथों से भी लिये गये हैं। इन समस्त लेखकों तथा प्रकाशकों के प्रति जिनके प्रथों तथा मानचित्रों से इस पुस्तक में सहायता ली गयी है, हम अत्यन्त कृतज्ञ हैं।

—लेखक

## \* सिफर-सूची \*

संज्ञा—

सभ्यता और संस्कृति	१
भारतीय सभ्यता तथा इतिहास के सम्बन्ध में विदेशी इतिहासकारों का दृष्टिकोण	४
लेखक का दृष्टिकोण	६
पुस्तक के सम्बन्ध में—	१६
अध्याय (१) सृष्टि-निर्माण तथा मानवी सभ्यता का विकास, पृथ्वी की उत्पत्ति तथा सृष्टिका निर्माण मानव सभ्यता के पथ पर	२३
” (२) सुमेर की प्राचीन सभ्यता	४३
” (३) ग्याल्दिया तथा बेबीलोनिया की प्राचीन सभ्यता	७०
” (४) असीरिया ( अमुर देश ) की प्राचीन-सभ्यता	८६
” (५) मिस्र ( ईजिप्ट ) की प्राचीन सभ्यता	१०६
” (६) चीन की प्राचीन सभ्यता	१२६
” (७) यूनान की प्राचीन सभ्यता	१४४
” (८) रोम की प्राचीन सभ्यता	१६७
” (९) भारत की प्राचीन सभ्यता	१६०
(१) क्या आय और द्रविड़ नहर से आये ? आर्यों का प्राचीन साहित्य -- ऋग्वेद की प्राचीनता	१६६
(२) ऋग्वेद वालीन भारतीय सभ्यता	
” (१०) आय सभ्यता का अन्य देशों में विस्तार ईरानी, पणि, मितानी, गिनाद, मय, आदि जातियों का प्राचीन भारत से सम्बन्ध ।	२४०





## \* प्रस्तावना \*

सम्यता क्या है ? सम्यता का साधारण अर्थ तो सभी समझते हैं कि समाज में मिलकर रहने तथा सामूहिक रूप से उन्नति करने का ही नाम सम्यता है, किन्तु पारिभाषिक दृष्टि से विद्वानों ने सम्यता को भी अनेक परिमाणों की है। कुछ विद्वानों का मत है कि प्रारम्भिक मनुष्य जंगल में अथवा कन्दराओं में रहता था। कन्द मूल फल खाकर अथवा वृक्ष पत्रों का शिकार करके निर्वाह कर लेता था। शिकार के लिए वह पत्थर के मद्दे दग के औजार बना लेता था। तन टफने का न उसे ज्ञान था, न वह इसकी आवश्यकता का ही अनुभव करता था। यह उसकी असम्य अवस्था थी और यह अवस्था कद हजार नहीं, कद लाख वर्षों तक रही। परन्तु जब उसने पशु पावन और वृषि के आविष्कार द्वारा आजीविका के साधनों में उन्नति की, अच्छे हथियार और औजार बनाये, शीश को पशुओं की खाल से अथवा पेड़ों की छाल से टकना आरम्भ किया, रहने के लिये भोंपड़ियाँ बनाई और सामूहिक रूप से रहना आरम्भ किया तब वह सम्यता की ओर बढ़ा। फिर जब उसने खाना पकाने के लिये अग्नि का तथा विचार विनिमय के लिये भाषा का आविष्कार किया, फिर सूत कातना तथा उससे कपड़ा बुनना सीखा, धातुओं का आविष्कार किया तथा उनसे तरह तरह के हथियार और औजार बनाये तब वह उन्नत सम्यता के युग में आ गया। इस प्रकार सम्यता उन खोजों तथा आविष्कारों पर निर्भर है जिनके द्वारा मनुष्य के दैनिक आचरणों तथा विचारों पर प्रभाव पड़ा। इस सम्यता के विकास ने उसने भौतिक जीवन की काया पलट कर दी।

इसके विपरीत कुछ विद्वानों का कथन है कि वास्तव में धातु का काम जानने को ही सम्यता समझना चाहिये। इससे पूर्व की अवस्थाएँ जंगली तथा बरबरी थी। जंगलीपन तथा सम्यता के बीच की अवस्था का नाम बरबरी अवस्था है—अर्थात् जब मनुष्य ने जंगली अवस्था को पार करके प्रकृति पर कुछ अधिकार कर लिया था अर्थात् पत्थर चोता और कटना सीख लिया था और भावन के लिए शिकार या मछली मारने पर ही निर्भर न था तथा पशुपालन भी सीख चुका था तब तक वह बरबरी अवस्था में ही था। बाद में जब उसने धातुओं का पता लगाकर उन्हें गगना या विपणना सीख लिया और उनमें विभिन्न प्रकार के हथियार औजार बनाये तभी यह सम्यता की कोटि में आया। धातुओं में अनुमानत उधे पहिले तौष का पता लगा, फिर लौह का।

सभ्यता और सस्कृति—इन दिनों 'सस्कृति' शब्द बहुत अधिक प्रचलित है। सभ्यता तथा सस्कृतिका नाम प्रायः साथ लिया जाता है। कुछ विद्वान सभ्यता और सस्कृति को प्रायः पर्यायवाची मानते हैं। सस्कृति का शब्दार्थ है—सरकार युक्त अथवा सुधरी हुई स्थिति अर्थात् मनुष्य के रहन सहन, आचार-विचार में सुधार, नई-नई बातों का अनुसंधान जिनसे वह पूर्व असभ्य अवस्था से उन्नत अवस्था को प्राप्त हो। इसी को सभ्यता भी कह सकते हैं। परन्तु अद्य विद्वान सभ्यता और सस्कृति में थोड़ा अन्तर करते हैं। उनका मत है कि सभ्यता से मनुष्य के भौतिक क्षेत्र की तथा सस्कृति से मानसिक क्षेत्र की प्रगति सूचित होती है अर्थात् सस्कृति शब्द किसी जातियाँ या जत्त के मानसिक, आत्मिक और बौद्धिक विकास से सम्बन्ध रखता है और सभ्यता शब्द केवल उसने भौतिक विकास से। उदाहरणार्थ जब मनुष्य ने पशु पालन तथा कृषि द्वारा अपनी आजीविका के साधनों में उन्नति की, नये यंत्रों द्वारा अपनी सुविधाओं में वृद्धि की अर्थात् जब वह बनेले जीवन से दृष्टर सामाजिक और सामूहिक जीवन की ओर बढ़ा, तब वह सभ्यता की ओर बढ़ा। परन्तु जब उसने अपने शिकार से बचे हुए समय में अपने परिवार के हथियारों की मूठ पर रेखाएँ और आकृतियाँ खींच कर उन्हें आकर्षक बनाने का प्रयत्न करना आरम्भ किया, अपनी गुफाओं की दीवारों को पशु-पक्षी आदि की आकृतियों से सजाकर सुन्दर बनाने का प्रयत्न किया, तब वह सस्कृति की ओर बढ़ा। इसी प्रकार जब उसने आगे चलकर अपनी आत्मा की तुष्टि के लिए धर्म का आविष्कार किया, सोच विचार में मग्न रहकर जब वह दर्शन की ओर बढ़ा, सौन्दर्य की खोज करते हुए जब संगीत, नाय, मूर्तिकला, वास्तुशिल्प, चित्रकला आदि की सृष्टि की, तब वह सस्कृति की दिशा में बढ़ा। इस अवस्था के अनुसार सस्कृति, विशेषकर उन सूक्ष्म तत्वों से सम्बन्ध रखती है जो विचार-विश्लेष तथा कलाओं के आधार हैं। इस प्रकार सस्कृति सभ्यता की अपेक्षा महान् चीज मानी जाती है।

सभ्यता का विकास प्रायः नदियों के तट पर हुआ इसे सभी विद्वान मानते हैं, क्योंकि मनुष्य ने सामूहिक रूप में बसना पहिले नदियों अथवा जलाशयों के तट पर ही आरम्भ किया होगा। यह स्वाभाविक भी है। मनुष्य के लिये एक स्थान पर स्थायी रूप से टहरने के लिये ऐसा स्थान चाहिये था जहाँ उसने तथा उसके पशुओं के पीने के लिये पानी की सुविधा हो। गेती बारी के लिये भी जहाँ उपर्युक्त जमीन हो, जहाँ मकान आदि बसाने के लिये भी मिट्टी मिल सकती हो। इसी कारण भारतवर्ष में सप्तसिंधु और गंगा यमुना की जमीन, पश्चिमी एशिया में दजल और परात की जमीन, अफ्रीका के उत्तर में नील नदी के आसपास की जमीन और चीनमें हांगहो अथवा पीली नदी की जमीन ऐसे ही स्थल हैं जहाँ सभ्यता का प्रारम्भिक विकास होने का पता लगता है। इसी कारण

महर्षि व्यास ने तो नदियों को ससार की माता बताया है। ऋग्वेद में भी सरस्वती नदी की बरतना की गई है। गंगा, जमुना, गर्मना, गाढावरी, सरयू आदि पवित्र नदियों को हमारे देशवासी आज भी 'माता' कहकर पुकारते हैं।

सबसे प्राचीन सभ्यता कौन सी है?—परन्तु उक्त नदी तटों में से सभ्यता का आरम्भ सबसे पहिले कहाँ हुआ, तथा मनुष्य ने किन नदियों पर सबसे पहिले बस्तिया बसाई इस सम्बन्ध में भारी मतभेद है। इसी के साथ यह प्रश्न जुड़ा हुआ है कि ससार की सबसे प्राचीन सभ्यता कौनसी है? यूरोपीय विद्वान इसका अभी तक पूर्ण निश्चय नहीं कर पाये हैं। परन्तु उन्होंने अब तक की खोजों के आधार पर यह निश्चय कर लिया है कि पहले पुरानी सभ्यता मिश्र अथवा मेसोपोटामिया की है। अभी तक उनका विश्वास था कि आदि मानव-सभ्यता का ये द्रव्यत्व मिश्र देश है जो नील नदी की घाटी में बसा हुआ है और यहीं से सारा ससार में सभ्यता का प्रसार हुआ। परन्तु बाद में उन्होंने यह मत स्थिर किया कि ससार की सबसे प्राचीन सभ्यता सुमेर की है। उनकी मान्यता है कि आज के लगभग ६ हजार वर्ष पूर्व अथवा इससे भी पहिले सुमेर में सभ्यता की अच्छी उत्पत्ति हो चुकी थी जबकि उस समय मिश्र की छोटी छोटी गिजासतें आपस में ही लड़ भगड़ रही थी तथा सभ्यता की प्रारम्भिक अवस्था से गुजर रही थी। इस प्रकार अब उनका विचार है कि सुमेर तथा बैबीलोनिया से ही सभ्यता का प्रसार मिश्र, अरीगिया, सीरिया, तथा फिर यूरोपीय देशों में हुआ।

इन विद्वानों का यह भी विद्वान है कि ४००० ई० पू० के लगभग जब सुमेर तथा मिश्र में सभ्यता उन्नत अवस्था में पहुँच चुकी थी तब ससार के शेष भाग का तो पूरा पाषाण काल की जगली अवस्था में ये अथवा नव-पाषाण काल के चरमता के युग से गुजर रहे थे। हटन बेरटर नामक एक पादशास्त्र लेखक ने बड़ी हृदयता से लिखा है कि सभ्यता एक नई चीज है जिसका प्रारम्भ ६ या ६ हजार वर्ष से अधिक प्राचीन नहीं है और यह आरम्भ मिश्र तथा पश्चिमी एशिया की नदी घाटियों में हुआ। उस समय ससार के शेष भाग में जगती तथा बर्बर मनुष्य निवास करते थे। किन्तु सुमेर और मिश्र के लोगों ने उस समय तक सुमत् अवस्था को पार करके नगर और सामों की स्थापना कर ली थी। विकारी और पशु पालक अवस्था को पारकर खेती करना और धानुओं का उपयोग करना भीत लिया था, स्थापार का भी आरम्भ कर दिया था तथा घम की प्रारम्भिक अवस्था में भी प्रवेश कर लिया था। और फिर इससे भी आगे बढ़कर यन्त्र (मयन निर्माण) कला, एखन कला, गणित, ज्योतिष आदि विद्यायें भी उन्होंने सीख ली थी।

पूर्वी देशों की सभ्यताओं को युरोपीय विद्वान बहुत बाद की मानते हैं। भारत के सम्बन्ध में उनका विचार है कि यहाँ सभ्यता का आरम्भ ईसवी सन् से दो हजार वर्ष पूर्व

हुआ जब कि आर्य लोग इस देश में बाहर से आकर बसे। मोहनजोदड़ों और हरप्पा की खुदाइयों के बाद उनके विचारों में इतना तो परिवर्तन हुआ है कि भारत में कोई सम्यता अब से पाँच हजार वर्ष पूर्व विद्यमान थी, परन्तु वे सिंधु सभ्यता को प्रायः भारत से बाहर की मानते हैं—सुमेर, भूमध्य सागर अथवा यूरोप से आई हुई मानते हैं। अब उनकी इस प्राचीन धारणा में कि सभ्यता की सबसे पुरानी सभ्यता सुमेर, बेबीलोनिया अथवा मिथ्र की है अभी तक कोई परिवर्तन नहीं हुआ है, तथा सभ्यता भर के विद्वान, अधिकांश भारतीय विद्वान भी—इसी को मान्य करते हैं।

### श्रेय पुरातत्त्व विद्वानों को—

उत्कृष्ट निष्कर्ष पर पहुँचने का कारण उत्तम देशों में यूरोपीय पुरातत्त्वज्ञों द्वारा की गई खोजें हैं, जिनका कारण पुरातन काल की अनेक वस्तुएँ जो सभ्यताओं से पृथ्वी पर भीतर दबी पड़ी थीं प्रकाश में आईं तथा जिन्होंने इतिहासकारों को चकित कर दिया। वैज्ञानिक पुरातत्त्व का आरम्भ हुए यद्यपि अभी लगभग १०० वर्ष ही हुए हैं फिर भी उसका कारण अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों पर प्रकाश पड़ा है। भूगर्भ से प्राचीन काल की अनक वस्तुएँ निकली हैं। इन्हीं खोजों के कारण सुमेर, मिथ्र, कीट, शाम आदि अनेक देशों की सभ्यताओं पर प्रकाश पड़ा है। इन खोजों ने सभ्यता के प्राचीन इतिहास की एक प्रकार काया ही पलट दी है तथा इतिहासकारों को अपने इतिहास पर सन्निहित के लिए विवश कर दिया है। सुमेर, बेबीलोन तथा मिथ्र आदि देशों में पुरातत्त्वज्ञों द्वारा किस प्रकार उत्खनन कार्य किया गया, वहाँ क्या-क्या प्राचीन वस्तुएँ प्राप्त हुईं तथा उनसे सभ्यता के इतिहास पर क्या प्रभाव पड़ा इसका विवरण सुमेर, बेबीलोनिया, मिथ्र आदि की सभ्यताओं के सम्बन्ध में यथास्थान दे दिया गया है।

### यूरोपीय इतिहासकारों का एकांगी दृष्टिकोण—

परन्तु यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि इस दिशा में अधिकांश यूरोपीय इतिहासकारों तथा विद्वानों का दृष्टिकोण प्रायः एकांगी ही है। उनकी दृष्टि प्रायः यूरोप तक ही सीमित रहती है तथा उसी की दृष्टि से वे सभ्यता के इतिहास को तथा सभ्यता की सभ्यताओं के इतिहास को देखते हैं। यूरोप में सभ्यता का प्रसार रोम से तथा रोम में यूनान से हुआ। अब यूरोपीय विद्वान बहुत समय तक यूनान को ही सभ्यता का आदिगुरु मानते रहे। लगभग १०० वर्ष पूर्व तक उपास्य यही विश्वास था और चूँकि यूनान की सभ्यता लगभग ६००-६०० ई० पूर्व की अथवा अधिक से अधिक हजार आठ सौ वर्ष ई० पूर्व की मानी जाती थी (अब यह सभ्यता कुछ और पीछे तक अर्थात् षेड दो हजार वर्ष ई० पूर्व तक पहुँच गई है) अब उनकी दृष्टि में सभ्यता का इतिहास मोईसा से पाँच सौ वर्ष

पूर्व आरम्भ होता था। इसके पूर्व भी कोई सभ्यता रही होगी इसकी कल्पना भी वे लोग नहीं कर सकते थे। पदवान ब्रह्म मिश्र की प्राचीन सभ्यता प्रकाश में आई तब वे मिश्र की सभ्यता का उद्गम स्थान मानने लगे और फिर सुमेरी सभ्यता को। इस प्रकार वे सभ्यता का प्रारम्भ ५०० ई०पू० होने के स्थान पर ५००० ई०पू० तक मानने लगे जिसका श्रेय पुरातत्वज्ञों की खोजों को है। वे यह भी मानने के लिये बाध्य हुए कि सभ्यता का प्रारम्भ पूरबी ओर हुआ तथा उसका प्रवाह पूव से पश्चिम की ओर रहा है। इटन चेम्बर का कथन है कि हमारी अमेरिकन संस्कृति मुख्यतः ब्रिटिश द्वीपों से आई, अफ्रीकी संस्कृति यूरोपीय महाद्वीप से आई, यूरोपीय संस्कृति रोम से आई, रोम की संस्कृति यूनान से, यूनान की संस्कृति निकट पूर्व से मुख्यतः मिस्र, बेबीलोनिया तथा फिलिस्तीन से आई। परन्तु सुमेर और बेबीलोनिया तक पहुँच कर ही उनकी दृष्टि रुक जाती है, क्योंकि उनका विचार है कि इस लम्बी यात्रा में सभ्यता उच्च प्राचीन तथा अर्धकालीन प्रागैतिहासिक युग तक पहुँच जाती है जिसके आगे वह सुदूर अतीत व कुहरे में लुप्त हो जाती है और जिसके आगे सभ्यता हो भी नहीं सकती, क्योंकि तब हम पाषाण काल में पहुँच जाते हैं जो जगली तथा चर अवस्था थी।

भारत के सम्बन्ध में भी इन विद्वानों का दृष्टिकोण प्रायः इसी प्रकार का रहा है। भारतीय सभ्यता की प्राचीनता को अधिकतर यूरोपीय विद्वान स्वीकार नहीं करते। जो करने भी हैं उनको सत्ता बहुत कम है तथा उनकी सम्मति को अधिक महत्त्व भी नहीं दिया जाता। रेप्सन और स्मिथ की मान्यता है कि आर्य लोग इसा से अधिक से अधिक २४०० वर्ष से पहले भारत में आये। इसके पदवात् ही उनका वेद आदि ग्रन्थ बने। परन्तु इस मान्यता के अनुसार भारतवासियों की सारी प्राचीन परम्पराएँ ही समाप्त हो जाती हैं। रामायण और महाभारत की घटनाओं के लिये कोई स्थान ही नहीं रहता और रहता भी है तो इन घटनाओं को इसी काल के भीतर विद्वान पढ़ता है। महाभारत की घटनाओं को अनेक यूरोपीय विद्वान तो सदिग्ध ही मानते हैं और जो उन्हें सत्य मानते भी हैं वे उनका काल १५०० ई०पू० के लगभग रखते हैं। फिर रामायण के काल के लिये कोई स्थान नहीं रह जाता, क्योंकि भारतीय परम्पराओं तथा पुराणों में वर्णित राजवंशों की नामावलि के अनुसार भी रामायण की घटनाएँ महाभारत से बहुत पहले घटित हुईं और यदि रामायण को महाभारत से हजार आठ सौ वर्ष पूर्व भी ले जाते हैं तो आर्यों के दो हजार ६० पू० व लगभग भारत में आने का सिद्धांत अत्यन्त ठररता है। फिर इन विद्वानों की—और उन्हीं का अनुसरण करते हुए अनेक भारतीय विद्वानों की भी धारणा है कि महाभारत युद्ध के बाद ही आर्य लोग पूरब की ओर बढ़े और गंगा-समुद्रा होते हुए अयोध्या तक पहुँचे। अन्त अयोध्या में आय राजा स्थापित

होने का काल बहुत पश्चात्कर्णी हो जाता है—एक हजार ईसवी पूर्व के लगभग और इस काल में रामायण की घटनाओं को बिठाना सम्भव नहीं होता। अतः लासन, वेबर, मेण्टानल, कीथ और जिंकोरी आदि विद्वान रामायण को केवल एक कल्पित कल्पना मान कर छुट्टी पा जाने हैं। आश्चर्य यह है कि ये विद्वान अथ अनेक बातों में पुराणों की घटनाओं को प्रमाण मानने लगे हैं, परन्तु राम और दशरथ के सम्बन्ध में, रघु और अज के सम्बन्ध में वे इन घटनाओं को प्रमाण नहीं मानते।

यद्यपि उक्त मत के कि आर्य लोग भारत महाद्वार से आये तथा डेढ़ दो हजार अथवा अधिकसे अधिक २४०० वर्ष पूर्व आये—यूरोप में भी कुछ यूरोपीय तथा भारतीय विद्वान हैं। परन्तु उक्त मत का पक्ष म इतना प्रबल बहुमत है, इतने अधिक यूरोपीय तथा भारतीय विद्वान हैं कि विरोधी मत रखने वालों को आज तक कोई महत्व प्राप्त नहीं हो सका है तथा एक प्रकार से आर्यों के बाहर से आने तथा ईसा स डेढ़ दो हजार वर्ष पूर्व भारत में प्रवेश करने के सिद्धान्त गवनाय ही हो चुके हैं। सम्भवतः भारतीय विद्वान इस सिद्धान्त के विरुद्ध जाने का इस कारण भी साहस नहीं करते कि ऐसा करने से उन पर इतिहास से अनभिज्ञता की छाप लगने का खतरा है।

### लेखक का दृष्टिकोण —

प्रस्तुत पुस्तक का लेखक भी इतिहास का एक विद्यार्थी रहा है तथा इतिहास से उसे प्रेम रहा है। यूरोप के इतिहास से भी उसे प्रेम रहा है तथा यूरोप के इतिहास पर ठमने एक ग्रन्थ भी लिखा था उस समय जबकि हिन्दी में यूरोपीय इतिहास पर अथ कोई पुस्तक न थी। आर्यों के बाहर से आने तथा डेढ़ दो हजार वर्ष ई० पू० में आने के सिद्धान्त लेखक को कभी अच्छे नहीं। उसने दोनों पक्षों के साहित्य का काफी अध्ययन भी किया है, किन्तु उसे उन विद्वानों के तक ही अधिक सुक्ति समान तथा माय दिखाने देते हैं जो यह मानते हैं कि आर्य लोग कहीं बाहर से भारत में नहीं आये तथा उनको सम्प्रता कानी पुरानी है। लेखक आर्य-सम्प्रता का अनुचित पक्षपाती नहीं। यह पुस्तक प्रारम्भ करते समय भी उसका दृष्टिकोण आर्य सम्प्रता के प्रचारक का नहीं, बल्कि एक इतिहास लेखक का ही था। किन्तु जब लेखक ने सुमेर, अशोरिया, शाम, मिस्र आदि देशों की प्राचीन सम्प्रदायों का जोड़ा बहुत अध्ययन किया और इन देशों के प्राचीन इतिहास में भी लेखक को ऐसे ही प्रमाण अधिक मिले जिनसे यह सिद्ध होता है कि उन देशों की सम्प्रदायों पर भारत का प्रभाव ही नहीं पड़ा, बल्कि ऐसा जान पड़ता है कि ये सम्प्रदाय प्राचीन भारत के ही लोगों द्वारा स्थापित की गई हैं तो उसे अपने दृष्टिकोण में परिचयतन करना पड़ा तथा आर्य सम्प्रता को उचित स्थान देना आवश्यक जान पड़ा। अवश्य ही आर्य देशों ने भी कुछ विशेष बातों में

उन्नति की होगी यथा सुमेर में स्थापत्य कला अधिक उन्नत हो सकती है तथा असीरिया में मूर्तिकला, किंतु भारतीय सभ्यता अनेक बातों में उक्त सभ्यताओं से अधिक प्राचीन जान पड़ती है। सुमेर, असीरिया, मिस्र आदि देशों की प्राचीन परम्परायें भी इस मन का समर्थन करती हैं। फिर बोगज बोइ का अधिपत तथा मितानी का इतिहास तो यह अवशिष्ट रूप से सिद्ध करता है कि ईसा से डेढ़ दो हजार वर्ष पूर्व आर्य लोग वहाँ—एशिया के पश्चिमी छोर पर पहुँच ही नहीं चुके थे बल्कि अपने राज्य भी स्थापित कर चुके थे। वहाँ के एक राजा का नाम “दशरथ” भी था जो नाम आश्चर्यजनक ही नहीं, यह प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है कि वे लग आर्य ही थे तथा यह भी कि वे लोग भारत से ही वहाँ पहुँचे, मध्य एशिया अथवा ससार व अरब किसी कोने से नहीं। मितानी का यह “दशरथ” एक ऐतिहासिक पुरुष है इसमें भी सन्देह नहीं हो सकता, क्योंकि उसका नाम मिस्र के इतिहास में भी मिलता है। उसने मिस्र के राजाओं से संधियाँ ही नहीं की, उनके साथ वैवाहिक सम्बन्ध भी किये थे। यह दशरथ नाम यह भी सिद्ध करता है कि डेढ़ दो हजार वर्ष ई० पू० से भी पहले भारत में दशरथ नाम का कोई राजा ही हुआ था और यह इतना प्रतापी तथा प्रसिद्ध था कि जो आर्य भारत से बाहर गये वे उस नाम का आदर करते थे तथा मितानी में राज्य-स्थापन के पश्चात् एक राजा ने दशरथ नाम रखना अपने लिए गौरवपूर्ण समझा—अथवा उसके रिता ने उसका यह नाम रखने में गर्व का अनुभव किया। मितानी के ये राजा आर्य ही थे तथा वे सम्भवतः भारत से ही गये थे यह बात कई यूरोपीय विद्वानों को भी विवश होकर मान्य करनी पड़ी है। इस विषय में अधिक प्रकाश पुस्तक के अंतिम अध्याय में दाना गया है।

मितानी के इतिहास के समान ही बोगज बोइ ( तुर्की की राजधानी अंगोरा के पास एक स्थान ) के पट्टिका लेख भी महत्वपूर्ण हैं। इन्हीं में मितानी तथा रिताई राजाओं के बीच हुआ यह संधि पत्र है, जिसमें मित्र, यदुग, इन्द्र और नासयो का संधिपत्र के साक्षी रूप में आवाहन किया गया है तथा जो १४ वीं शताब्दी ई० पू० का है। इसमें भी यही सिद्ध होता है कि डेढ़ दो हजार वर्ष पूर्व आर्य लोग भारत से एशिया माइनर में पहुँच चुके थे। तथा वे वैदिक देवताओं को तब तक मानते थे। इस लेख से यूरोपीय विद्वानों की यह धारणा भी अन्तः सिद्ध होती है कि ऋग्वेद का निर्माण १२०० ई० पू० में अथवा उसके पश्चात् हुआ। यह कहे की आवश्यकता नहीं—यूरोपीय विद्वानों ने भी इस माना है—कि उक्त संधिपत्र में वर्णित सभी देवता वैदिक हैं जिनका वर्णन ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर आता है। इन्द्र का विशेषकर ऐसा देवता है जो भारतीय आर्यों का ही है। अतः स्पष्ट है कि ये संधिकर्ता अर्थात् मितानी तथा



खिनाइ राजा भारतीय आर्यों के ही वंशज हो सकते हैं जो उस समय तक वैदिक धर्म में आस्था रखते थे। यह भी स्पष्ट है कि इनके पूर्वज आर्यों को भारत से वहाँ तक पहुँचने में तथा वहाँ अपना राज्य स्थापित करने में अनेक शताब्दियाँ लगी होंगी और १४ वीं शताब्दी ई० पू० के सधि पत्र म इन्द्रादि देवताओं के नाम होना यह भी प्रकट करता है कि ऋग्वेद का निर्माण भी उस काल से १४०० ई० पू० से बहुत पूर्व हो चुका होगा। स्पष्ट यही है कि उक्त दोनों बातों—मितानी का इतिहास तथा बोगज बोई का लेख—को जितना महत्व प्राप्त होना चाहिए था, वह आज तक प्राप्त नहीं हुआ है।

इस प्रकार आज के माय सिद्धांत—आर्य लोग बाहर से भारत में आये, वे डेढ़ दो हजार वर्ष पूर्व वहाँ आये, ऋग्वेद की रचना १२०० ई० पू० के लगभग हुई—यदि भारतवर्ष के इतिहास से असत्य सिद्ध न भी किये जा सकते हों तो भी वे पश्चिमी एशियाई देशों सुमेर, असुर, शाम, मितानी आदि के इतिहास से भ्रांत तथा असत्य सिद्ध होते हैं। इस पुस्तक का कम से कम इतना महत्व तो समझा जाना ही चाहिए। वैसे यह इस पुस्तक का लेखक की कोई मौलिक खोज नहीं है। श्री अविनाशचंद्र दास “ऋग्वेदिक इंडिया” तथा “ऋग्वेदिक कल्चर” में विस्तारपूर्वक इन बातों पर प्रकाश डाल चुके हैं कि आर्य लोग वहाँ बाहर से भारत में नहीं आये, बल्कि यहीं से वे अन्य देशों में गये तथा उन्होंने वहाँ अपनी सभ्यता का प्रसार किया। श्री सम्पूर्णानंद का भी यही मन रहा है। श्री दास तथा श्री सम्पूर्णानंद दोनों का मत है कि सुमेर, मिस्र आदि की सभ्यताओं के सस्थापक भारत के ही प्राचीन आर्य लोग थे जो बहुत प्राचीन काल में धार्मिक मतभेद तथा अन्य कारणों से अर्थात् संग्राम में पराजित हो जाने के कारण इस देश से बाहर चले गये थे। सुमेर, असुर, मिस्र आदि देशों की परम्परायें भी इसी मत का समर्थन करती हैं।

लेखक की यह धारणा है कि विद्वानों ने ससार की तथा विशेषतः भारत की सभ्यता के आरम्भ का जो काल निर्धारित कर रखा है उसमें परिवर्तन की आवश्यकता है। यह बताया जा चुका है कि लगभग १०० वर्ष पूर्व यूरोपीय विद्वानों का विचार था कि ससार के किसी भी देश की सभ्यता ईसा से पाँच सात सौ वर्ष पूर्व से अधिक पुरानी नहीं। फिर जब मिस्र तथा सुमेर में ३४ हजार वर्ष ई० पू० के सुदृढ प्रमाण मिले तब वे सभ्यता का आरम्भ ईसा से ४५ हजार वर्ष पूर्व तक मानने लगे। परन्तु भारत की सभ्यता की प्राचीनता में उन्हें अब भी शक है तथा वे सुमेरो सभ्यता को ही ससार की सबसे प्राचीन सभ्यता मानते हैं। इससे पूर्व वे किसी सभ्यता को नहीं ले जाना चाहते। इस संकुचित दृष्टिकोण का एक कारण जो विद्वानों ने सुझाया है तथा जो ठीक भी जान पड़ता है, यह है कि यहूदियों की प्राचीन धर्म पुस्तक “ओल्ड टेस्टामेंट” में जिसका ईसाई धर्म पर

काफी प्रभाव पड़ा है—सृष्टि के प्रारम्भ की मर्यादा ६ ७ हजार वर्ष ही मानी गई है। ओल्ड टेस्टामेन्ट के अनुसार सृष्टि का आरम्भ जल-प्रलय की घटना से १६१६ वर्ष पूर्व हुआ था और जल-प्रलय इब्राहीम के समय से ३६५ वर्ष पूर्व हुआ था। इस प्रकार सृष्टि का प्रारम्भ इब्राहीम से लगभग २ हजार वर्ष पूर्व हुआ। ओल्ड-टेस्टामेन्ट के यूनानी संस्करण में उक्त दोनों घटनाओं में सात सात सौ अथवा आठ-आठ सौ वर्ष का अथवा कुल १६ १६ सौ वर्ष का अंतर है। अर्थात् यूनानी बाइबिल के अनुसार सृष्टि का आरम्भ इब्राहीम से लगभग ३॥ हजार वर्ष पूर्व हुआ माना जाता है। इब्राहीम का समय लगभग २ हजार वर्ष ६० पू० माना जाता है। इस प्रकार यूनानी मत के अनुसार मा सृष्टि का आरम्भ ७-७॥ हजार से अधिक वर्ष का नहीं ठहरता। बाइबिल का प्रभाव प्रायः सभी यूरोपीय निवासियों पर रहा है। अतः ये सृष्टि की कल्पना ७-७॥ हजार वर्ष से अधिक की नहीं कर सकते थे तथा सभ्यता का प्रारम्भ ४ ५ हजार वर्ष से पहिले मानने के लिये तैयार नहीं थे। मिश्रतया मेसोपोटामिया की पुराणियों के फलस्वरूप उन्हें यह मानना पड़ा कि यहाँ सभ्यता का आरम्भ अब से ६-७ हजार वर्ष पूर्व ही हुआ था।

परन्तु वैज्ञानिकों तथा भूगर्भ शास्त्रियों ने आज सृष्टि का जो हिसाब लगाया है उसके अनुसार पृथ्वी की आयु लगभग दो अरब वर्ष माने जाती है तथा आदिम मनुष्य का जन्म भी ६ लाख वर्ष पूर्व का माना जाता है तथा यह भी माना जाता है कि ३०-४० हजार वर्ष पूर्व का मानव आज जैसी ही आकृति धारण कर चुका था। ऐसी अवस्था में उसे सभ्यता की ओर बढ़ने में भी अधिक समय नहीं लगा होगा। कुछ लेखकों ने कृषि का आरम्भ १५ हजार ६० पू० के लगभग माना है, परन्तु अनुमानतः कृषि का प्रारम्भ इससे बहुत पूर्व ही हुआ होगा।

भारतीय सभ्यता व सभ्यता में जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है—यूरोपीय विद्वानों का दृष्टिकोण प्रायः अनुसर रहा है। किन्तु भारतीय परम्परा इसके विपरीत भारतीय सभ्यता का कई सहस्र वर्ष पुरानी तथा सभ्यता की आयु सब सभ्यताओं से भी पुरानी मानती है। लोमनाथ तिलक ने भी ऋग्वेद का निर्माण-काल ईसा से ४ ५ हजार वर्ष पूर्व का, तथा भारतीय सभ्यता का प्रारम्भ उससे भी पूर्व का माना है। भी अविनाशचन्द्र दास के अनुसार तो भारतीय सभ्यता २५-३० हजार वर्ष पुरानी है। यदि ऐसा ही तो इसमें आश्चर्य कुछ भी नहीं है। कुछ यूरोपीय विद्वान मेसोपोटामिया सुनर आदि की सभ्यता को ८ हजार वर्ष पुरानी भी मानने लगे हैं तथा भारतीय सभ्यता उससे भी पुरानी सिद्ध होगी है। प्रायः ऐसा माना जाता है कि सभ्यता का प्रारम्भ कई स्थानों पर गया सिंधु दक्षिण-पश्चिम, गीला आदि नदियों के तट पर एक साथ हुआ होगा। किन्तु यह

## इतिहास और अनुमान :—

यह सत्य है कि इतिहास सत्य पर आधारित है तथा आज का वैज्ञानिक युग सत्य उसी को मानता है जो दृश्य हो तथा जिनकी सत्ता वैज्ञानिक आधारों पर सिद्ध की जा सके। इसी कारण इतिहास वही माना जाता है जो शिला-लेखों, पट्टिका-लेखों, ताम्र पत्रों, सिक्कों आदि पर आधारित हो अथवा भवनों के अवशेष आदि के रूप में मिलने चिह्न विद्यमान हों। केवल अनुश्रुतियों, कल्पनाओं अथवा अनुमानों पर लिखा इतिहास प्रामाणिक नहीं माना जाता। यूरोपीय विद्वान भारत की सभ्यता को अधिक प्राचीन मानने के लिये इसी कारण तैयार नहीं कि यहाँ सत्यता को प्रमाणित करने वाले सुन्दर आधार उपलब्ध नहीं होते। फिर भी वहाँ उपयुक्त ठोस प्रमाण उपलब्ध न हों वहाँ अनुमान तथा कल्पना का भी सहाय लेना पड़ता है तथा विद्वान लोग उसे मान्य भी करते हैं। आर्य लोग भारत में बाहर से आये तथा वे ईसा से डेढ़ दो हजार वर्ष पूर्व यहाँ आये यह मत प्रायः सर्वमान्य हो चुका है। जो लोग इस मत के विरोधी हैं उनके मत को महत्व प्राप्त नहीं होता। कहने की आवश्यकता नहीं कि उक्त मत के पक्ष में कोई सुन्दर प्रमाण नहीं है। केवल अनुमानों पर ही उक्त मत स्थिर किया गया है। जिन आधारों पर उक्त मत का समर्थन किया जाता है जैसे आधार उसने विपक्ष में भी पर्याप्त सत्या में मिलते हैं। कहा जा सकता है कि उक्त मत अभी विवाद की कोटि से बाहर नहीं है, किन्तु उक्त मत अभिकाश यूरोपीय विद्वानों में तथा भारतीय विद्वानों से भी मान्यता प्राप्त कर चुका है। मेक्समूलर का यह मत कि ऋग्वेद की रचना १२०० ई० पू० में अथवा उसके पश्चात् हुई भी ऐसा ही है। उनका मत केवल अनुमानों पर ही आधारित है। इससे अधिक प्रामाणिक लोबमाय तिलक का मत माना जाना चाहिये जो कि स्थिति पर आधारित है।

यह भी कहना अनुचित न होगा कि आर्यों की आदि भूमि मध्य एशिया होने का सिद्धांत अथवा एक भाषा परिवार सिद्धांत—जिसके अनुसार भारत, ईरान, यूनान तथा यूरोप के अनेक देशों में कुछ भाषा साम्य देखकर यह मान लिया गया है कि इन समस्त भाषा भाषियों के पृथक् प्रारम्भ में एक ही स्थान पर रहे होंगे वास्तव में अत्यन्त निर्बल अनुमानों पर आधारित है। इस विषय में यह भी तो कहा जा सकता है कि उक्त देशों में भाषा साम्य का कारण यह है कि भारत से ही बहुत प्राचीन काल में आर्य लोग उन समस्त देशों में पहुँचे थे। अतः आर्यों की भाषा संस्कृत का उन समस्त देशों की भाषाओं पर प्रभाव है। बहुत से शब्दों की मूल धातुएँ एक हैं। कुछ विद्वानों का कथन है कि आर्यों को भारत नहीं आदिवासी मानने से अनेक शक्यताएँ रह जाती हैं जिनका समाधान नहीं होता। किन्तु आर्यों की आदि भूमि मध्य एशिया मानने से तो उससे भी अधिक शक्यताएँ रह जाती हैं जिनका सतोपजनक समाधान यूरोपीय विद्वान आज तक नहीं कर पाये हैं तथा आज भी नये नये सिद्धांत इस सम्बन्ध में निकलते जा रहे हैं।

तारख्य जहाँ ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं होते वहाँ अनुमान तथा कल्पना का भी सहारा ना ही पड़ता है। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक को भी अनेक स्थानों पर अनुमानों का आश्रय लेना पड़ा है, परन्तु ऐसे अनुमान नितांत निराधार नहीं हैं। फिर लेखक का ना आग्रह भी नहीं है कि वह जिन निष्कर्षों पर पहुँचा है वे ही सत्य हैं। जास्तव में सा दावा कोई इतिहासकार कर भी नहीं सकता। लेखक का इतना ही कथन है कि गणों की आदि भूमि भारत मानने की कल्पना पूर्व म ऊँच विद्वान कर चुके हैं। लेखक ने विदेशों के प्राचीन इतिहास से भी ऐसे कुछ प्रमाण मिले जिनसे उक्त मत का समर्थन होता है। अत उक्त कल्पना अधिक माय की जानी चाहिये।

भारत में विश्वस्तनीय प्रमाणों का अभाव -

यह बात अत्यन्त कही जा सकती है कि जिस प्रकार सुमेर, बाबुल, मिस्र आदि में जहाँ की प्राचीन सभ्यता ने अनेक अवशेष तथा स्मारक मिलने हैं, पत्थरों पर कारीगरी के नमूने, अनेक प्रकार के बर्तन पशुओं और मनुष्यों के चित्र, भवनों और मंदिरों के तण्डहर तथा उन भवनों और मंदिरों के जनवाने वाले राजाओं के नाम भी ईंटों पर बुदे हुए मिलते हैं अथवा कब्रों में अनेक प्रकार की वस्तुएँ मिलती हैं, तथा राजाओं के नाम भी लिखे मिलते हैं, उस प्रकार के अवशेष भारत में नहीं मिलने। न कोई अधिक प्राचीन तण्डहर मिलते हैं, न राजाओं के नाम की ईंटें, न प्राचीन कारीगरी की वस्तुएँ, न कोई प्राचीन सिक्के या शिला लेख। ऐसे प्रमाण इतिहास तथा पुरातत्व की दृष्टि से बड़े महत्वपूर्ण समझे जाते हैं तथा विश्वस्तनीय भी। भारत तथा सुमेर में यह अंतर बहुत स्पष्ट है।

भारत के पुराणों में ही कुछ राजाओं की वंशावृत्तियों के समान सुमेरी राजाओं की भी वंशावृत्तियाँ वहाँ के प्राचीन लेखों में मिलती थीं। किन्तु पौराणिक नामावृत्तियों के समान पादनायक विद्वान उँडे प्रामाणिक न मानते थे, उनकी सत्यता में शका करते थे, परन्तु जब उर तथा अन्य स्थानों की खुदाई में कुछ राजाओं के नाम ईंटों तथा अन्य वस्तुओं पर अंकित मिले तब उन नामों की सत्यता तथा ऐतिहासिकता स्वीकार करनी पड़ी। ऐसा ही एक नाम मेसरीपाद है जो एक ईंट पर खुदा हुआ मिला तथा जिसने उस समय में समस्त सन्देह को दूर कर दिया। किन्तु किसी प्राचीन भारतीय राजा का नाम इस प्रकार किसी ईंट अथवा पत्थर पर खुदा हुआ नहीं मिला। यदि महाभारत काल के किसी एक राजा का ऐसा कोई स्मारक प्राप्त हो जाता—सुधिष्ठिर, दुर्योधन, धृष्टकेतु अथवा अन्य किसी राजा का नाम कहीं मिल जाता—तो महाभारत तथा महाभारत युद्धियों के सम्बन्ध में समस्त सन्देह दूर हो जाता तथा महाभारत पद्य उसने पात्रों के सम्बन्ध में आज जो अनेक विशद चलते रहते हैं वे समस्त हो जाते।

उक्त तर्क तथ्यपूर्ण अवश्य है परन्तु जब हम तत्कालीन समस्त परिस्थितियों पर तथा कारणों पर विचार करते हैं तो इन तकियों का बहुत कुछ निवारण हो जाता है। भारत में प्राचीन स्मारक या अवशेष न मिलने का एक कारण यह हो सकता है कि जिस प्रकार प्राचीन आर्य अथवा देवगण आधात्मिकता का अधिक महत्व देते थे, उसी प्रकार अमुरगण जिनके वंशज अधिकांश में बाहर जाकर उन देशों की सम्प्रदायों का स्थापक बने—भौतिकता की ओर अधिक ध्यान देते थे। हमारे ऋषियों ने जीवन तथा जगत को कमी महत्त्व नहीं दिया, उसे क्षणभंगुर समझा। अतः उन्होंने तथा उनके शिष्य आर्य राजाओं ने अपनी सफलताओं को, अपनी कीर्ति को ईंट पत्थरों पर अंकित कराना असाध्य समझा होगा। इस सम्बन्ध में हम चन्द्रगुप्त मौर्य के समय का भारत के यूनानी राजदूत मेगस्थनीज का यह कथन प्रमाण मान सकते हैं—“यह भी कहा जाता है कि भारतीय लोग मृतकों के स्मारक नहीं बनाते, बल्कि उन सद्गुणों का अधिक महत्त्व देते हैं जिन्हें उन्होंने अपने जीवन में प्रदर्शित किया हो और वे उन गीतों को, जिनमें उनके कर्तव्यों की प्रशंसा की गई हो—उनकी मृत्यु के बाद उनकी कीर्ति को सुरक्षित रखने के लिये पर्याप्त मानते हैं।”

—( एनशट इण्डिया मेक डिडल प्रोग्रेट २४ )

यह भी सम्भव है कि सुमेरु, बाबिल आदि के समान प्राचीन भारत में ईंट पत्थर आदि के मकान कम बनते हों—यद्यपि ऋग्वेद में उनका वर्णन मिलता है तथा गरम मौसम के कारण या अन्य किसी कारण से लकड़ी के मकान मंदिर आदि बनाना अधिक उपयुक्त समझा जाता हो। इस सम्बन्ध में फिर हम मेगस्थनीज से समर्थन प्राप्त कर सकते हैं जो कहता है—“उनके नगरों का सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि उनकी संख्या इतनी अधिक है कि जिनकी गणना ठीक ठीक करना कठिन है। किन्तु ऐसे नगर जो कि नदियों के किनारे पर अथवा समुद्र के किनारे पर बसे हुए हैं वे लकड़ी के बने हैं। यदि वे ईंट के बने हों तो अधिक स्थायी नहीं होते, क्योंकि यहाँ की वर्षा और नदियों की बाढ़ें, जो मैदानों को भर देती हैं, इनकी अति अधिक विनाशकारी होती हैं। किन्तु जो नगर उच्च स्थिति में हैं तथा ऊँचाई पर बसे हुए हैं वे ईंट और गारे के बने जाते हैं।

—( एनशट इण्डिया — प्रोग्रेट २०६ )

श्री अमरचन्द्र जी विद्यालंकार के कथन में भी उक्त अनुमान का समर्थन होता है। उन्होंने लिखा है—जंगलों के कारण लकड़ी भी इफरात थी और इसीलिये बहुत क्षमता के इमारतें लकड़ी की ही बनाई जाती थी। इस बात का प्रमाण है कि आग्नी-सातवीं शताब्दी ई० पू० तक राजाओं ने मकान तक लकड़ी के बनाये जाते थे।

—( भारत भूमि और उसके निवासी पृष्ठ ३६ )

प्राचीन भारत में मन्दिर भी प्रायः काष्ठ के बनते थे। शिल्पकला में भी प्रायः काष्ठ का उपयोग होता था, क्योंकि कलात्मक अभिव्यक्ति के लिये काष्ठ पत्थर की अपेक्षा अच्छा समझा जाता था। पटना सम्राज्य में ऐसे बहुत से काष्ठावशेष रत्ने बताये जाते हैं।

यह सम्भव है कि आय देवगणों की अपेक्षा असुर आदि जातियों ने भवन निर्माण कला का अधिक विकास किया हा तथा पत्थर आदि ने अधिक स्थायी भवन बनाने की ओर ध्यान दिया और अपनी इस विशेषता का वे अपने तथा नहर के देशों में ले गये हों।

सिंधु घाटी की खुदाई में मोहेंजोदड़ो, हरप्पा तथा लोथल आदि में अच्छे-बुरे भवनों के अवशेष प्राप्त हुए हैं। ये नगर प्रायः असुर सम्भवा व ही अवशेष माने जाते हैं। इन्हीं के वंशजों ने सुमेर, बाबुल में पहुँचकर पत्थर मरुत बनाने जिनके अवशेष अब तक मिलते हैं। किन्तु भारत में आय अथवा देव लोगों की सम्भवा में ऐसे पत्थर भवनों की महत्त्व न दिया जाता हागा और इसी कारण उनमें व इ अवशेष मौ नहीं मिलते।

भारत में प्राचीन अवशेष प्राप्त न होने का कारण और हो सकता है। सुमेर, बाबुल मिस्र आदि ठोठ स्थान हैं और वहाँ पुराने स्थल अधिवास में गोदे जा चुके हैं, क्योंकि वहाँ यह कार्य एक शताब्दी से अधिक समय से हा रहा है और ऐसे लोगों द्वारा किया गया है जिन्होंने केवल ऐतिहासिक जिज्ञासा की शक्ति में तथा ऐ तहासिक खोज में ही अपना धन तथा समय लगाया। किन्तु भारत में उत्खनन कार्य इसी शताब्दी में लार्ड कर्जन द्वारा पुनः विभाग की स्थापना किये जाने के बाद ही प्रारम्भ हुआ तथा यह कार्य सरकारी कर्मचारियों द्वारा किया गया जिनमें न उतनी जिज्ञासा थी—न उतनी लगन। उनकी बड़ी सफलताओं में केवल महेन्द्रोदड़ तथा हगप्पा की खुदाईयाँ ही गिनाई जाने योग्य हैं और इन स्थानों की खोज में अरुमात् ही एक अन्य कार्य के सम्बन्ध में हुए।

इतना प्रतीति के पररात् उत्खनन-कार्य की ओर कुछ अधिक ध्यान दिया गया है तथा कुछ असाधारण सरथाओं की ओर से भी यह कार्य आरम्भ किया गया है। इसके पल्लरम्प पञ्जाब, मध्यप्रदेश तथा उत्तर प्रदेश के अनेक स्थानों पर—रोहड़, हनुवापुर, कुम्भेश, अरन्तिक, कोशम्बी आदि में—कुछ आशाजनक परिणाम भी निकले हैं। परन्तु धातन में अभी कार्य बहुत थोड़ा ही हुआ है। क्या आश्चर्य है कि देश में अनेक ऐसे स्थल विद्यमान हों जो देश के प्राचीन स्मारकों को अपने गभ में छिपाये पड़े हों, जहाँ ये प्राचीन गौरवशाली अवशेष भवनों की किसी पारदे की प्रतीक कर रह हों। क्या आश्चर्य है—भविष्य में अधिक उत्खनन के पल्लरम्प कुछ ऐसी वस्तुएँ प्राप्त हो जहाँ जिनसे भारत की प्राचीन सभ्यता पर कुछ अधिक प्रकाश पड़े सके।

## हमारा साहित्य भण्डार —

यद्यपि भारत की प्राचीन सभ्यता के ठोस प्रमाणों के रूप में प्राचीन भवन, शिला लेख, ताम्रपत्र आदि अभी तक यहाँ पर्याप्त संख्या में प्राप्त नहीं हुए हैं, किंतु भारत के पास उसकी प्राचीन सभ्यता का द्योतक एक ऐसा भंडार विद्यमान तथा सुरक्षित है जैसा सभ्यता के अन्य किसी देश के पास नहीं। यह है हमारा विशाल तथा समृद्ध साहित्य भण्डार। वास्तव में तो हमारे ग्रंथ—वेद, ब्राह्मण, उपनिषद् एवं ग्रंथ, वेदांग आदि तथा पुराण भी पत्थर एवं धातुर्भा के स्मारकों से अधिक महत्वपूर्ण माने जाने चाहिये, क्योंकि उनमें हमारी प्राचीन सभ्यता का विस्तृत तथा सजीव चित्रण विद्यमान है। विहार राज्य के पूर्व राज्यपाल श्री माधव हरि अणे ने एक बार कहा था—'इंग्लैंड और टीर्ररी से भारताय इतिहास की खोज हास्यास्पद है—वास्तव में भारत'य इतिहास तो वेदों पुराणा और उपनिषदों में से ही मिल सकता है।' हमारे वेद सभ्यता के प्राचीनतम ग्रंथ और ऋग्वेद तो सभ्यता के पुस्तकालय की सबसे प्राचीन पुस्तक मानी ही गई है। प्राचीनता तथा अनुपमैय महानता के कारण ही वास्तव में ऋग्वेद मानवरचिन न माना जाकर इदर दत्त अथवा अपौरुषेय माना जाता है। केवल इस एक ऋग्वेद में ही हमारी प्राचीन सभ्यता सभ्यता की इतनी प्रचुर तथा अगाध सामग्री भरी हुई है जिससे उस अत्यंत प्राचीन काल का सम्पूर्ण इतिहास निरालंभ वा सरुना है। हमारे रहन रहन, आचार विचार, सामाजिक और धार्मिक जीवन का प्रतिबिम्ब ऋग्वेद में दायण की भाँति देखा जा सकता है। यह हमारे प्राचीन इतिहास एवं प्राचीन सभ्यता का दर्पण है।

किंतु यूरोपीय विद्वानों की कुछ भ्रांत धारणाओं के कारण तथा भारत के प्रति अनुदार दृष्टिकोण के कारण हमारे इस अनुपम साहित्य भण्डार को यह महत्व प्राप्त नहीं हो सका है जो प्राप्त होना चाहिए था। यूरोपीय विद्वानों एवं इतिहासकारों की दृष्टि में यहूदियों का ओल्ड टेस्टामेंट भी भारत के ऋग्वेद की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक माना जाता है। उमें ऋग्वेद की अपेक्षा अधिक प्राचीन भी मानते हैं। उसे आधार मानकर उन्होंने पर्सनमी एशिया तथा यूरोप के प्राचीन इतिहास की अनेक गलतियों का सुलभाने में सहायता ली है, किंतु ऋग्वेद को वे भारत की प्राचीन सभ्यता के लिये प्रामाणिक नहीं मानते, क्योंकि उनकी दृष्टि में वह बहुत बाद की रचना है।

## भारतीयों के एक दल का दृष्टिकोण —

अधिक आश्चर्य की बात यह है कि स्वयं हमारे देश के विद्वानों व दल ने ही वेदों के सम्बन्ध में कुछ विचित्र सा दृष्टिकोण बना रखा है। यह दल 'निसर्गारक्त' दृष्टिकोण रखता है तथा वेदों की प्राचीनता को स्वीकार करते हुए भी यह भारत के प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध में उसे प्रमाण नहीं मानता। यह दल ऋग्वेद दयानन्द के विचारों से

प्रभावित समझा जाता है। वे वेदों को अरीरुच्य मानते हैं। अब उसमें इस लाक का कोई बात हो ही नहीं सकती। फिर उसमें इस देश की नदी पहाड़ों का, राजाओं तथा युद्धों का ब्यथन कैसे हो सकता है? इनकी मायता है कि ऋग्वेद आदि में कोई इतिहास नहीं है तथा यदि कोई इतिहासकार देशों में पुराने स दर्भ देखकर भारत के प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध में कोई खोज करते हैं तो ये विद्वान उससे चेद मत्रों का अर्थ नहीं, बल्कि अनर्थ करना बताते हैं तथा उन इतिहासकारों को अविज्ञ टहराते हैं।

इतना तो अस्मय सत्य है कि वेद, ब्रह्मण आदि इतिहास की दृष्टि से नहीं लिखे गये, भौतिक इतिहास को सुरक्षित रखना उनका उद्देश्य भी नहीं रहा, किंतु यह भी मय्य है कि ऋग्वेद में तथा अथर्व वेदों में ऐसे शब्द तथा संज्ञा मिलते हैं जिनसे भारत के प्राचीन इतिहास में पर्याप्त सहायता मिलती है। कहीं कहीं तो उसने सामाजिक व्यवस्था का ऐसा वर्णन मिलता है कि जिससे तत्कालीन समाज का एक सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत किया जा सकता है।

य वर्णन तथा नदियों, पहाड़ों, नगरों, राजाओं आदि के नाम इतिहास के ही उपकरण हैं तथा इतिहासकारों की दृष्टि में काफी महत्व रखते हैं। उदाहरणार्थ ऋग्वेद में जब "पुर" शब्द आता है तो हम समझ सकते हैं कि उस नाल में दुग्धुक्त अथवा सुदृढ़ परकोटे से घिरे हुए नगर भी विद्यमान थे, समुद्र की भयंकर तरंगों की उपमा बड़ स्थानों पर मिलने से यह समझा जा सकता है कि उस समय के लोग समुद्र से भी भलीभाँति परिचित थे। 'सूची' (सूह) का नाम आगे से सहज में ही यह अनुमान कृषि जा सकता है कि उस समय सूह भी विद्यमान थी जिससे बपड़े सीधे जाते होंगे तथा यह सूची किसी वातु को ही बनती होगी। निष्कर्ष यह समझा जा सकता है कि साने के आभूषण भी बताते थे तथा निष्कर्ष का व्यवहार सिर्फ वस्त्र में भी होता था। इसी प्रकार प्राचीन सभ्यता की अनेक बातें ऋग्वेद से प्राप्त होनी हैं।

दोनों पक्षों के दृष्टिकोणों में जो अंतर है वह ऋग्वेद म० १० सू० ७५ के २ मंत्रों से भलीभाँति स्पष्ट होता है। इन ७ दिव्यों मंत्रों में 'गगा, यमुना, सप्तती, सतुद्रि (सतलज) परागो (राप्ती), अभिवनी (चापन), मन्तूरा (व्यास), विन्मना (भेल्म) आदि तथा दूसरे लोक में सिंधु कुभा (काष्ठी), गामती, मनु आदि नदियों के नाम आते हैं। सूह में नदियों का ही देवता बनाया गया है फिर भी विस्मय करने विद्वात कहते हैं कि गगा यमुना आदि नदियों और देशों का वर्णन यंत्र में नहीं है। वेद के शब्दों को नदीवाचक तथा नगर और देशवाचक समझना बेशक मंत्रों पर बलात्कार है। अगर समान देव्य कर उगमें इतिहास की कल्पना करना बड़ा भ्रमजनक है। सब तर्क यंत्र में स कोई सम्बद्ध इतिहास और सुगमरुद्ध भूगोल का वर्णन नहीं किया गया, तब तक वेद का भिन्न-भिन्न स्थान से प्रकल्पित नदियों और नगरों के नामों को देख कर उसमें इतिहास निकालने



का यत्न करना वेद-साहित्य में अरुनी अनभिज्ञता दर्शाना है। (ऋग्वेद संहिता, आर्य साहित्यमण्डल अजमेर द्वारा प्रकाशित भाष्य भूमिका)।

यह दृष्टिकोण विचित्र ही नहीं, सखुचित तथा एकांगी भी जान पड़ता है। मन्त्रों में आये हुए सभी शब्द नदियाँ के नाम हैं, स्वयं वेदोंमें ही यह भी लिखा है कि इस सूक्त की 'देवता' नदियाँ हैं फिर भी यह कहना कि इन शब्दों का मुख्यार्थ नदियों के प्रति सगत न होने से य शब्द नदीवाचक नहीं है, अथवा ये नदियों के नाम नहीं हैं, कुछ समझ में नहीं आता। यह सत्य है कि वेद के शब्दों के एक से अधिक अर्थ किये जा सकते हैं, एक एक मन्त्र के चार प्रकार से अर्थ विद्वानों ने किये हैं, उपर्युक्त नदी सूक्त के भी कई अर्थ किये जा सकते हैं, कोई उन्ने आध्यात्मिक पक्षमें लेते हैं, कोई राष्ट्रीय पक्ष में। गंगा, यमुना, सरस्वती आदि प्रत्येक शब्द का दूसरा अर्थ भी लगाया जा सकता है जैसे अजमेर भाष्य में गंगा यमुना आदि सब देह की नादियाँ मानकर गंगा का अर्थ इडा नाड़ी, यमुना का अर्थ रिगला नाड़ी और सरस्वती का अर्थ सुषुम्ना नाड़ी किया गया है तथा इसी प्रकार सिन्धु का अर्थ आत्मा, तथा अन्य शब्दों का अर्थ भी विभिन्न नादियाँ बताया गया है। ऐसा अर्थ करने में किसी का आपत्ति नहीं हो सकती। फिर भी यह कैसे कहा जा सकता है कि ये नाम नदियाँ के नहीं हैं जबकि वेद में ही उन्हें नदी सूक्त बताया गया है। इतिहासकारों का तात्पर्य इतने से ही सिद्ध हो जाता है कि ये नाम नदियों के हैं क्योंकि इससे सिद्ध होता है कि उस समय आर्यों का विस्तार इन नदियों तक था तथा वे लोग नदियों से परिचित थे।

यह तो सभी जानते हैं कि वेद का इतिहास अथवा भूगोल के प्रश्न नहीं हैं जिनमें देश का कोई क्रमबद्ध इतिहास अथवा सुसम्बद्ध भूगोल मिल जायगा किन्तु वेद में अनेक ऐसी बातें आल्कारिक रूपमें या सचेत रूपमें मिल जाती हैं जिनका सम्बन्ध तत्कालीन इतिहास अथवा भूगोल से है और तत्कालीन इतिहास जानने के लिये विद्वान तथा इतिहासकार अन्य प्रामाणिक सामग्री के अभाव में इन्हीं सांकेतिक वर्णनों का सहारा लेते हैं। इसमें किसी भी पक्ष के विद्वानों को आपत्ति क्यों होनी चाहिये।

ऐसा भी नहीं माना जा सकता कि जो विद्वान वेद के शब्दों में नदी, पर्वत, व्यक्ति अथवा देशों के नाम देखते हैं उन्हें यन्त्रों का अर्थ समझ नहीं है, क्योंकि इनमें अनेक ही नहीं हैं नदी सभूत के भी अनेक विद्वान सम्मिलित हैं। स्वयं लोकमाय तिलक ने भी अनेक मन्त्रों का अर्थ लौकिक रूप में ही लिया है किन्तु उक्त निर्वर्ण परक लोगों ने सभी शब्दोंको भिन्न अर्थ में लिया है। वे इन्द्र और वृषको ही आजातीय अथवा प्राकृतिक तत्त्व नहीं मानते—यद्यपि इनके भौतिक रूपके भी पर्याप्त प्रमाण ऋग्वेद में मिलते हैं—वे पुरूरवा, उर्वशी, नहुष, ययाति, युक्, देवपानी आदि सभी शब्दों का अर्थ आजातीय पदार्थ मानते हैं। वे मुदास का अर्थ 'उत्तम दानशील पुरुष' और दिवोदास

(इतिहासकार विद्वान सुदास और दिवोदास को राजाओं के नाम मानते हैं) का अर्थ 'सुद्ध की कामना करने वाला 'अथवा' शान प्रकाश देने वाला करते हैं। 'हल्वी दस्यून पुर आयषी नित रीत्' (२-२० C) का अर्थ जहाँ ५० मंगलदेव शास्त्री जैसे सस्कृतके विद्वान 'दासुओं के लोहे की अथवा लोहवत् दृढ़ पुरियों का नाश करने वाला' कहते हैं (भारतीय सस्कृत का विनास) वहाँ अजमेर भाष्य में उसका अर्थ इस प्रकार किया गया है— दस्यून हल्वी=आत्मा ये नाशकारी अतः शत्रुओं को नाश करके, आपसी आवागमन सम्पत्ती, पुर = देह बंधनों को, नितारीत=भर कर जाता है। ऋ० ७-८३ में "दाशराल" तथा "दश राजान" शब्द हैं जिनसे अनेक विद्वानों ने दाशराल अथवा दस राजाओं का अर्थ सुद्ध किया है किन्तु अजमेर सस्कृत में दस राजान का अर्थ दस तेजस्वी पुरुष किया गया है तथा दस राजाओं का सुद्धका कहीं वर्णन नहीं है। इसी प्रकार 'सप्त सिन्धु' का अर्थ 'सप्त प्राग' किया गया है। इस प्रकार दृष्टिकोण भेद तथा अर्थ भेद के अस्वरूप उदाहरण गिनाये जा सकते हैं। यह निगम करना तो विद्वानों का काय है कि इनमें कौनसा अर्थ सही है और कौनसा गलत। जहाँ तक लेखक का सम्बन्ध है उन्ने इतिहासकारों का दृष्टिकोण ही सही दिखाई देता है। अतः इस पुस्तक में भारतीय सम्पत्ता का वर्णन इन्हीं विद्वानों के अर्थ के आधार पर किया गया है। इतना और कहना आवश्यक है कि श्रुत्वेद का आयामान्त पठन तथा मनन तो लेखक ने नहीं किया है फिर भी उन्ने उस महान ग्रन्थ का एक दो बार अवलोकन करने का प्रयत्न किया है—हिन्दी तथा अंग्रेजी अनुवादों के सहारे से तथा जो सामग्री उसे उपयुक्त दिखाई दी उसका उपयोग यथास्थान करने का प्रयत्न किया है।

पुस्तक के सम्बन्ध में —

पुस्तक में वर्णित अन्य विषयों के सम्बन्ध में भी कुछ शब्द यहाँ कह देना आवश्यक जान पड़ता है।

पुस्तक में उन सम्पत्ताओं का वर्णन है जो सत्तर में प्राचीनतम मानी जाती हैं तथा उनके वर्णन में घातु-युग, नव पाषाण-युग, पुरा पाषाण युग, हिम-काल आदि शब्द आते हैं तथा मनुष्य की भिन्न भिन्न नस्लों तथा भाषा समूह आदि का भी उल्लेख करना पड़ता है। अतः यह आवश्यक समझना गया कि इन युगों तथा नस्लों आदि का भी कुछ वर्णन किया जाय जिससे उक्त देशों की सम्पत्ताओं को तुलनात्मक दृष्टि से समझने में सहायता मिले। फिर इन युगों को समझने के लिये और भी प्राचीन काल में जानना पड़ता है अतः पुस्तक का प्रारम्भ सृष्टि निर्माण-काल से तथा मनुष्य प्राणी की उत्पत्ति से करना ठीक सात हुआ। अतः प्रथम अध्याय में सृष्टि का निर्माण का वर्णन समुद्र में किया गया है। इस वर्णन में पारंगत विद्वानों के विशेषकर डार्विन व विगासवाद के सिद्धान्त की अपेक्षा में स्वीकार किया गया है, क्योंकि अन्य कोई सिद्धान्त ऐसा आज तक सामने

नहीं आया है जिससे उक्त समझाओं का सतोपजनक हल निकल सके। फिर भी यह सम्भव है कि मनुष्य के पूर्वज बादर न हों जिनके बादर से मिलते जुलते प्राणी हों जिनका संशुद्ध और विकसित रूप आज का मनुष्य है।

सुमेर, असुर, मिस्र आदि देशके इतिहास, उनकी सभ्यताओं तथा भारत से उनके सम्बन्ध का जो बगन किया गया है वह प्रायः यूरोपीय लेखकों तथा इतिहासकारों के विवरणों के आधार पर किया गया है जो अंग्रेजी पुस्तकों से लिये गये हैं। इन सार्वभौम पीडिया ब्रिटेनिका से भी पर्याप्त सहायता ली गई है विशेषतः उन विषयों व सम्बन्ध में जिनके सम्बन्ध में अंग्रेजी ग्रन्थ उपलब्ध न हो सके। इन सभ्यताओं की खोज तथा उनका अध्ययन प्रायः यूरोपीय विद्वानों तथा अन्वेषकों द्वारा किया गया है, अतः उनके विवरणों को प्रामाणिक मानना भी उचित है। पश्चिमा एशिया में भारत के प्रभाव को—विशेषतः मितत्रों के आगमन को—अनेक यूरोपीय विद्वानों ने भी इच्छापूर्वक अथवा अनिच्छापूर्वक मान्य किया है। उन यूरोपीय विद्वानों व सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने भारत का अतुच्छ रूप से पक्ष लिया है क्योंकि साधारणतः यूरोपीय इतिहासकारों का दृष्टिकोण भारत व प्रति अनुदार ही रहा है। अतः भारत के पक्ष में उनकी स्वाभाविक रीतियों को प्रामाणिक ही माना जाना चाहिये।

इन सभ्यताओं के बगन के सम्बन्ध में एक बात और भी कहना आवश्यक है। इतिहास का आरम्भ विद्वान लोग प्रायः उस काल से करते हैं कि जहाँ से किसी देश का प्रामाणिक विवरण इतिहास की पृष्ठाटियों के अनुसार मिलना प्रारम्भ होता है। इसी कारण बहुत से विद्वान पहले भारत व इतिहास का प्रारम्भ यूनानियों के भागत-आक्रमण से अथवा अधिक से अधिक युद्धकाल से मानते थे। किंतु इस पुस्तक का विषय मुसलमान राजनीतिक इतिहास नहीं, बल्कि सभ्यताओं का इतिहास है, अतः पुस्तक के अध्यायों का आरम्भ इतिहास काल से बहुत पूर्व से प्रारम्भ किया गया है जहाँ से कि उन सभ्यताओं का प्रारम्भ होता है।

मेसोपोटामिया की भूमि सुमेरी, बाबुली, असुर आदि अनेक सभ्यताओं की जन्मभूमि मानी जाती है। इन समस्त सभ्यताओं का बगन एक अध्याय में करने से अध्याय का विस्तार बहुत बढ़ जाता। अतः मेसोपोटामिया की सभ्यताओं को तीन भागों में बाँटा गया है।

सुमेर, बाबुल, असुर, मिस्र, चीन, भारत, यूनान तथा रोम की सभ्यताओं के अतिरिक्त जिनका बगन इस पुस्तक में किया गया है—बड़ अथवा सभ्यताएँ—ईरानी, शामी, यहूदी, लिस्साइ आदि जातियों की—काफी पुरानी मानी जाती हैं। भूमध्यसागर में फ्रीट टापू की सभ्यता भी काफी पुरानी है। किन्तु यहूदी सभ्यता को छोड़कर शेष सभ्यताओं

का सगर के इतिहास पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ा। फिर भी इनमें से अनेक जातियों तथा उनकी सभ्यताओं का वर्णन अन्तिम अध्याय में भारतीय सभ्यता के विस्तार के रूप में कर दिया गया है क्योंकि ये सभी जातियाँ भारत की प्राचीन जातियों से सर्वाधिक ज्ञान पड़ती हैं।

भारतीय सभ्यता का वर्णन कुछ अधिक विस्तार से दिया गया है। इसके दो भाग हैं। प्रथम भाग में भारतीय इतिहास की कुछ प्रमुख समस्याओं पर विचार किया गया है। इसी में श्रृंगेद क समय के सम्बन्ध में भी विचार किया गया है क्योंकि यदि श्रृंगेद को १२०० ई० पू० की रचना मान लें, तो भारतीय सभ्यता का महत्व ही समाप्त हो जाता है। भारतीय सभ्यता के अध्याय के द्वितीय भाग में सभ्यता भी केवल उन्हीं बातों पर विचार किया गया है जिनके सम्बन्ध में यूरोपीय लेखकों का यह विचार रहा है कि आर्य लोग इन बातों से परिचित न थे—जैसे वे कहते हैं कि ज्योतिष का ज्ञान बेबीलोन से भारत में आया, आर्यों को घातुओं का ज्ञान तथा समुद्र का ज्ञान न था, एक ईश्वर की कल्पना न थी आदि। वैदिक काल की सम्पूर्ण सभ्यता का यह वर्णन नहीं है।

भारतीय इतिहास तथा सभ्यता की प्राचीनता के वर्णन में श्री अविनाश चन्द्र दास, श्री सम्पूर्णानन्द, डा० सत्यनारायण आदि के ग्रंथों से भी पर्याप्त सहायता ली गई है। इन पुस्तकों में—विशेषतः श्री सम्पूर्णानन्द की "आर्यों का आदि देश" में लेखक को अपने मत का काफी समर्थन मिला तथा प्रेरणा भी मिली। श्री चतुरस्र शास्त्री (स्व०) की पुस्तकों का भी लेखक ने अवलोकन किया। उनका अध्ययन आदर्शजनक था तथा कल्पनाएँ भी प्रातिहारि दिखाने देती हैं। किन्तु उनके निष्कर्षों में कुछ अव्युक्ति दिखाई देती है, क्योंकि उ होने भारत के प्राचीन इतिहास की प्रायः सभी घटनाओं एवं परम्पराओं को जिनका वर्णन वेद तथा पुराणों में मिलता है दूर, मेसोपोटामिया, श्याम आदि देशों में घटित हुई बताने का प्रयत्न किया है, यथा, इन्द्र का राज्य काकशास में अथवा एलाम में था और दक्षिण से यह भारत आया, नृसिंह तथा नरमसिन (अफ़साद के सारगोन के पौत्र) एक ही थे, सूर्यनगरी (इरान के दक्षिण-पश्चिम में) पद्यन अथवा ब्रह्मजी ने बसाया, चन्द्र और सूर्य विदेश से भारत में आये आदि। ऐसी कल्पनाएँ कुछ अन्य विद्वानों ने भी की हैं किन्तु ये सुद्धिगम्य नहीं दिखाई देती। इसने विवरीत लेखक ने इन देशों में भारतीय प्रभाव के लो उदाहरण दिये हैं वे विदेशी व्योमकों तथा पुरातत्वविदों की लोओं तथा उनके निष्कर्षों के आधार पर दिये गये हैं। लेखक का मत है कि भारतीय सभ्यता ही सुमेर, मिस्र, श्याम आदि देशों की सभ्यताओं की जन्मदात्री है तथा आर्यों का आदि स्थान भारतपर ही है फिर भी लेखक का यह दावा नहीं है कि यही मत अन्तिम है अथवा इसे ही मान्य किया जाना चाहिये। निम्न

सुमेर, अशुर तथा मितानी आदि में जो प्रमाण उपलब्ध होते हैं उनसे आर्यों के बाहर से भारत में आने की तथा इससे डेढ़-दो शताब्दी पूर्व आने की बात समझ में नहीं आती। वास्तव में आजकल भारतीय इतिहास की समस्याओं के सम्बन्ध में इतने सिद्धांत प्रचलित हैं कि सत्य का अन्वेषण करना कठिन हो रहा है। विशेषतः आर्यों के आदि स्थान के सम्बन्ध में विद्वान लोग आज तक भी किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके हैं।

लेखक ने कोई मौलिक अनुसंधान किये हैं ऐसा भी उसका दावा नहीं है। परन्तु अथ अन्वेषकों तथा विद्वानों ने जो खोजें की हैं तथा जो निष्कर्ष निकाले हैं उनका अध्ययन कर लेखक ने उन प्राचीन सभ्यताओं की एक रूपरेखा दि दी के पाठकों के सामान्य प्रस्तुत करने का तथा उन सभ्यताओं के काल निर्धारण का प्रयत्न किया है तथा भारतीय सभ्यता से उसका सम्बन्ध भी बताया है।

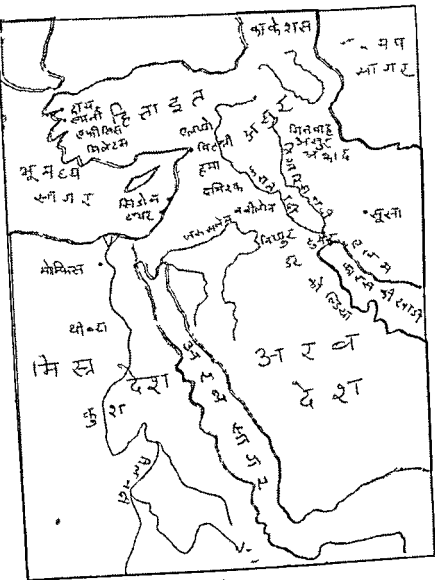
प्रत्येक देश की सभ्यता के वर्णन से पूर्व उसका संक्षिप्त इतिहास देना भी आवश्यक जान पड़ा, क्योंकि उससे उन सभ्यताओं को समझना अधिक सुगम होता है अतः प्रायः प्रत्येक अध्याय के चार भाग हैं—देश की भौगोलिक स्थिति, उसका संक्षिप्त प्राचीन इतिहास, सभ्यता का विवरण तथा भारत से उसका सम्बन्ध। अन्तिम विषय ऐसा है जिस पर किसी भी लेखकों ने बहुत कम प्रकाश डाला है। अतः लेखक को उसमें विशेष परिश्रम करना पड़ा है।

भारत में विजयी सभ्यता तथा यूरोप में इसवी सन् के प्रवर्तन को एक काल सीमा मानकर उससे पूर्व का ही वर्णन पुस्तक में दिया गया है। इसी दृष्टि से यूनान तथा रोम की सभ्यताओं को भी पुस्तक में सम्मिलित कर लिया है यद्यपि अथ यथोद्भूत सभ्यताओं की तुलना में वे सभ्यताएँ बालक तुल्य ही हैं। यूरोपीय इतिहास की दृष्टि से ये सभ्यताएँ प्राचीन मानी जाती हैं। भारत की प्राचीन सभ्यता इतनी विस्तृत है कि उसका पूर्ण विवरण बहुत लम्बा होता। अतः उसकी प्राचीनता का दिग्दर्शन कराते हुए उसके अति प्राचीन काल का ही वर्णन किया गया है।

अन्य पुस्तकों से इस पुस्तक की रचना में सहायता ली गई है उनकी सूची अंत में दी गई है। लेखक उन लेखकों का अत्यंत कृतज्ञ हैं।







मध्य पूर्व का मानचित्र  
(T. 100)

## अध्याय १

# सृष्टि-निर्माण तथा मानवी सभ्यता का विकास

### (१) पृथ्वी की उत्पत्ति तथा सृष्टि का निर्माण

आज के विज्ञान वेत्ताओं का विचार है कि एक समय ऐसा भी था जब न यह पृथ्वी थी, न चंद्रमा और न तारागण। केवल एक सूर्य था जो एक प्रज्वलित वायुमय गोले के रूपमें विद्यमान था और यह ज्वालामय पिण्ड चरती की भाँति चकर खा रहा था। फिर किसी काल में चक्कर खाते हुए ज्वालामय पिण्ड से अनेक टुकड़े टूट-टूट कर अलग हो गये जो बाद में ग्रह बहलाये। इन्हीं टुकड़ों में हमारी पृथ्वी भी है जो सूर्य का केवल एक छोटा सा टुकड़ा है।

आज के विज्ञान वेत्ताओं का यह भी अनुमान है कि सूर्य हमारी पृथ्वी से लगभग १०॥ लाख गुना बड़ा है अर्थात् सूर्य में इस विशाल भू-मण्डल जैसी १०॥ लाख पृथिवियों समा सकती हैं। सूर्य का व्यास ८ लाख ६६ हजार मील लम्बा माना जाता है जो हमारी पृथ्वी के व्यास (८ हजार मील से कुछ कम) से लगभग १०६ गुना बड़ा है।

आर्य की बात यह है कि अत्यंत प्राचीन काल में हमारे ऋषियों ने भी सृष्टि-उत्पत्ति के इस रहस्य को समझ लिया था तथा उन्होंने अपने दम से उसका षण्ण सप्तर के सबसे प्राचीन माने जाने वाले ऋग्वेद में एक अद्भुत सूक्त (दशम मण्डल सूक्त १२१) में जो "द्विरण्यगम समवाताग्रे" से प्रारम्भ होता है किया है। इस सूक्त का भावार्थ यह है सृष्टि के पहले केवल "द्विरण्यगम" (परमेश्वर) ही था, जो अरुण नाम से ही ख्यात होना था। उसी ने इस पृथ्वी और आकाश को अपने अपने स्थान में रखा। एक अथ मन (मण्डल १०, सूक्त ७२ मंत्र ५) में प्रकृति से गुरादि लोकों की उत्पत्ति बनाकर कहा गया है कि उस अग्नि रूप सूर्य ने यह उत्पन्न हुई। इसी कारण मंत्र में पृथ्वी को सूर्य की "दुहिता" अर्थात् पुत्री बनाया गया है। उसका बाद अन्य सृष्टि उत्पन्न हुई। तात्पर्य यह कि जहाँ आज के वैज्ञानिक सबसे पहले केवल सूर्य की विद्यमानता मानते हैं वहाँ भारत के ऋषियों ने उससे भी

ॐ ऋग्वेद के मंत्रों समूह को सूत्र कहते हैं। ऋग्वेद का प्रथम मण्डल सूक्तों में बड़ा हुआ है। प्रत्येक सूक्त में किसी एक विशेष सम्बन्धी मंत्र समूह है जिसकी उत्पत्ति अनिश्चित है। किसी सूक्त में मंत्र ३-४ मंत्र हैं तथा किसी में १०० से भी अधिक।



आगे बढ़कर यहाँ तक बताया कि सबसे पहिले केवल इश्वर था, फिर प्रकृति उत्पन्न हुई, तत्पश्चात् सूर्य की उत्पत्ति हुई तथा फिर सूर्य से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई।

सूर्य से पृथक होना व समय यह पृथ्वी भी आग का एक विशाल अणुर थी अथवा वह गैस के एक महान गोल के रूपमें थी जो घघर रहा था। यह गोल सूर्य के चारों ओर बढ़े वेगसे घूम रहा था। फिर इस पृथ्वी का एक टुकड़ा उभी प्रकार टूटकर अलग हो गया जिस प्रकार पृथ्वी सूर्य से टूटकर अलग हुई थी। पृथ्वी का यह टुकड़ा चन्द्रमा कहलाया। धारे धार लाखों वर्षों में पृथ्वी का ताप कम होने लगा और फिर ये ठंडे हो गये। पृथ्वी के चारों ओर की भाप बदलकर बादल बन गई और पृथ्वी पर जल बन कर बरसने लगी। इससे पृथ्वी के बहुत स भाग में जल भर गया और वह जल थलमयी हो गई। यह जल ही आजकल समुद्रों के रूप में दिखाई देता है। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि पृथ्वी का जो टुकड़ा अलग हो कर चन्द्रमा हो गया, वहाँ पृथ्वी में एक बड़ा गड्ढा बन गया और फिर उसमें जल भर गया। यही जल प्रशांत महासागर कहलाता है जो आज बल अमेरिका और जापान के बीच में भरा हुआ है।<sup>१</sup> जिस प्रकार सूर्य का एक टुकड़ा होने के कारण पृथ्वी सूर्य से बहुत छोटी है उसी प्रकार पृथ्वी का एक टुकड़ा होने के कारण चन्द्रमा पृथ्वी से छोटा है। अनुमान है कि पृथ्वी चन्द्रमा से ८१ गुनी बड़ी है।

फिर एक दिन ऐसा आया जब सारे बादल समाप्त हो गये और सूर्य पृथ्वी पर चमकने लगा। पृथ्वी पर दिन और रात होने लगे और यह बहुत कुछ वर्तमान रूप में आ गई। पृथ्वी को ठण्डा होकर वर्तमान रूप ग्रहण किया हुए कितना समय यतीत हुआ यह कहना तो कठिन है फिर भी वैज्ञानिकों ने अनुमान किया है कि पृथ्वी को वर्तमान रूप में आये हुए लगभग दो अरब वर्ष यतीत हो चुके होंगे। कुछ लोग अनुमान करते हैं कि पृथ्वी को ठण्डी होने में कम से कम दार्द करोड़ और अधिक से अधिक ४ करोड़ वर्ष लगे होंगे। यह भी अनुमान है कि पहले चन्द्रमा ठण्डा हुआ, फिर पृथ्वी ठण्डी हुई। पृथ्वी की गर्मी में कमी होने पर उसका ऊपरी भाग ऐसे तरल रूपमें हो गया जैसी पिघली हुई घातुएँ होती हैं। दीर्घकाल व पश्चात् जब पृथ्वी की गर्मी में और अधिक कमी हुई तो वह तरल जग्गिमय पदार्थ भी ठण्डा होकर जमने लगा और इन प्रकार उसका बह पन हो गये। अर्थात् उसकी तहें एक व ऊपर एक जमती गई। फिर वह समय आया जब पृथ्वी के ऊपरी भाग से गर्मी पूर्णतया समाप्त हो गई और गले हुए पदार्थों का बाहरी हिस्सा तहों अथवा परतों की भाँति जम गया—यद्यपि पृथ्वी के भीतर ये घातुएँ बहुत कुछ पिघले हुए रूप में रह गईं। पृथ्वी की चट्टानें इसी प्रकार परतों जमने से बनी हैं। भिलने

नाम के एक भूगर्भ शस्त्री का अनुमान है कि पृथ्वी की यह पपड़ी अथवा सतह ४० मील मोटी है और उसके नीचे चातुओं का मण्डार है।

जब तक पृथ्वी आग के समान धक्कती रही तब तक उस पर बसने वाला पानी माप बनकर उड़ जाता था। पृथ्वी के ठण्डे हो जाने पर जो नया हाती वह अब पृथ्वी के समान माप में न बढ़ती थी, अतः पृथ्वी के ऊपर ही बहने लगती थी और टालू स्थानों पर वर्षा न यह पानी ठहर जाता था। इसी प्रकार पानी मरने-म ते झीलें बनीं तथा सागर और महासागर बन। यहाँ तक कि आज पृथ्वी पर स्थल की अपेक्षा जल का ही भाग अधिक है। अनुमान है आज पृथ्वी के सम्पूर्ण पृष्ठ तल पर ६६६ प्रतियुत अर्थात् दो तिहाई से भी अधिक जल है तथा बचल ३०४ प्रतियुत अर्थात् एक तिहाई से भी कम स्थल-भाग है।

अनेक विज्ञान वेत्ताओं का अनुमान है कि पृथ्वी के जल और स्थल भाग में समय समय पर परिवर्तन होता रहता है अर्थात् जहाँ आज जल है वहाँ किसी समय स्थल था और जहाँ आज स्थल है वहाँ कभी जल था। उदाहरणार्थ कुछ लोगों का विचार है कि आजकल जिस स्थान पर राजस्थान की मरुभूमि है वहाँ पुराने समय में समुद्र बहता था। इसी प्रकार यह भी अनुमान है कि आज जहाँ भारत के दक्षिण में हिन्द महासागर है वहाँ किसी समय में भूमि थी और भारत की भूमि दक्षिण में आस्ट्रेलिया तथा पश्चिम में अफ्रीका की भूमि से मिली हुई थी। अर्थात् एक ओर तो भारत की भूमि सुमात्रा, जावा, बाला, लडा, बोर्नियो आदि सब द्वीपों से मिली हुई थी और दूसरी ओर दक्षिण पश्चिम में अरब सागर के स्थान में भी स्थल भाग था तथा भारत की भूमि मेडागास्कर टापू तथा अफ्रीका महाद्वीप से भी जुड़ी हुई थी। इस प्रकार आस्ट्रेलिया, भारत तथा अफ्रीका एक दूसरे से मिले हुए थे।

### पृथ्वी का इतिहास—

ऊपर बताया गया है कि वैज्ञानिकों के मतानुसार पृथ्वी का जन्म हुए लगभग २ अरब वर्ष पहिले ही हुआ है। भारत पर में एक सुष्ट सतह भी प्रकृत है जो आजकल १ अरब ६५ करोड़ ५८ लाख अर्थात् २ अरब के लगभग ही है। इस सुष्ट सतह में पृथ्वी के रूप में अनेक परिवर्तन हुए हैं जिनका पता उसकी चट्टानों से लगता है। अर्थात् पृथ्वी के ठंडे होने पर उसकी जो विभिन्न प्रकार की चट्टानें बनीं उनका अध्ययन भूगर्भ शास्त्रियों ने करके पृथ्वी की आगु का भिन्न-भिन्न फालों में विभाजन किया है। अतः पुराने तिहाई के बहा है कि इतिहास तथा पुगलतवेत्ता वहाँ तक पीछे जाकर अपना काय समाप्त कर देते हैं वहाँ से भूगर्भ शास्त्री सूत्र प्रवण

करते हैं अर्थात् अपना काय आरम्भ करते हैं तथा पृथ्वी के इतिहास को पृथ्वी के आरम्भ काल तक ले जाने हैं। पृथ्वी के इतिहास व विभिन्न कालों तथा उन कालों में पृथ्वी पर हुए परिवर्तनों का यह अनुमान भूगर्भशास्त्रियों ने भूमि के विभिन्न स्तरों, उसकी चट्टानों की बनावट तथा भिन्न भिन्न स्थानों अर्थात् भूमि के अन्दर प्राप्त हुए अस्थि-पत्तियों, वृक्षों के अस्तरों तथा अन्य पुरातन वस्तुओं के परीक्षण के आधार पर किया है क्योंकि पुराने अस्थिपत्तियों तथा वृक्षों के अवशेषों आदि से हम बतना अनुमान लगाया जा सकता है कि जिस काल में उन जीव तथा वृक्ष विद्यमान थे, उस काल में उक्त स्थान पर वैसी जलवायु रही होगी अथवा पृथ्वी की वैसी अवस्था रही होगी जिसमें कि उक्त जीव तथा वृक्ष पनप सकें। इसी परीक्षणों के आधार पर अनेक निष्कर्ष निकाले गये हैं।

उक्त परीक्षणों तथा अनुमानों के आधार पर पृथ्वी के सूर्य से अलग होने के समय से लेकर अब तक के इतिहास को ५ बड़े भागों अर्थात् कालों अथवा युगों में विभाजित किया गया है और फिर प्रत्येक काल को कई छोटे छोटे विभागों में बाँटा गया है जिन्हें खण्ड कहते हैं। इस प्रकार ५ बड़े कालों को १६ खण्डों में विभाजित किया गया है। इन खण्डों का समय भी लाखों तथा करोड़ों वर्ष का ही है। सृष्टि की कथा १ के आधार पर पृथ्वी का युगों तथा खण्डों में वर्गीकरण इस प्रकार है —

भौगर्भिक काल अथवा युग

खण्डों में विभाजन

१—आदि काल ( इओजोइक )

१—लेबिसियन, २—टोरिडारियन,

२—पुरातन काठ (आर्केओजोइक)

३—कम्ब्रियन, ४—ओर्दोवीसियन,

३—प्राचीन अथवा पुराजीवक काल  
( पेलियोजोइक )

५—सिलेसियन, ६—डेवोनियन,

७—कार्बोनिफेरस, ८—परमियन,

४—माध्यमिक या मध्यजीवक काल  
( मेसोजोइक )

९—ट्राइरसिक, १०—ज्युरेसिक,

११—क्रोटेसस, १२—इयोसीन,

५—आधुनिक अथवा नवजीवन काल  
( काइनोजोइक या टेरटियरी )

१३—ओला इयोसीन, १४—माइयोसीन,

१५—प्लाइसोसीन, १६—प्लाइस्टोसीन ।

लोकतिलक का वर्गीकरण इसमें थोड़ा भिन्न है। उन्होंने आदि तथा पुरातन कालों को एक मानकर प्राचीन अथवा पेलियोजोइक काल को द्वितीय, माध्यमिक या मेसोजोइक काल को तृतीय, आधुनिक अथवा काइनोजोइक काल को चतुर्थ काल माना है। इसी को उन्होंने टेरटियरी काल भी कहा है। इससे बाद के काल को उन्होंने पोस्ट-टेरटियरी अर्थात् आधुनिक परन्तु अथवा वर्तमान कहा है और उसे पाचवाँ काल

माना है जो इस समय तक चल रहा है। उनके मतानुसार इस काल का आरम्भ हिम काल के पश्चात् हुआ। इसी प्रकार उक्त १६ खण्डों में भी उनके मतानुसार थोड़ी भिन्नता है।

कुछ अथ भूगर्भ शास्त्रियों के मतानुसार 'टेरटियरी' तीसरा बड़ा काल है जो मेसोजोइक के बाद तथा काइनोजोइक के पूर्व आता है। काइनोजोइक को कुछ लोग 'क्वाटरनरी' भी नाम देते हैं। कुछ भूगर्भ-शास्त्री टेरटियरी तथा क्वाटरनरी दोनों का सम्मिलित नाम काइनोजोइक रखते हैं। फिर भी बड़े युगों तथा उनके १६ खण्डों को अधिकशः भूगर्भशास्त्री मानते हैं।

इन भिन्न भिन्न कालों तथा खण्डों में पृथ्वी के रूप, उसकी चट्टानों की जनावट आदि बातों में अनेक परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों का विवरण संक्षेप में इस प्रकार बताया जा सकता है।

आदि काल में पृथ्वी का कोई निश्चित रूप न था। शिखरों, चट्टानों तथा प्रस्तरों में बहुत क्षीप्रता से अवस्था-परिवर्तन हो रहा था। पृथ्वी की सतह का रूप भी बदल रहा था। कहीं बड़े बड़े गड्ढे पड़ रहे थे कहीं पर्वत ऊपर उठ रहे थे। इस काल की चट्टानें प्रायः पृथ्वी की उष्णता की स्थिति में बनी हैं। अब उनमें जीवनात्मित्व के भी कोई लक्षण नहीं पाये जाते। पुगसन तथा प्राचीन अर्थात् द्वितीय अथवा तृतीय कालों में भी इसी प्रकार अनेक परिवर्तन होते रहे। इन कालों में ज्वालामुखियों का भी प्रकोप रहा, ज्वालामुखी पर्वत कभी कभी भूमि में प्रकट होते और ऊपर उठने कभी फिर दब जाते, फिर उठकर अपने उच्चतम पदार्थों से सारा पृथ्वी तल ढक देते और कभी फिर शान्त हो जाने। ज्वालामुखियों के कोप के साथ भूकम्प भी हाते जिनके कारण पृथ्वी हिल उठती और उसका एक तथा एक-भाग में अनेक परिवर्तन हो जाते। कोई एक-भाग जल में डूब जाता और कोई नया एक-भाग जल से बाहर निकल आता। इन कालों के अन्त में अनेक साधारण पर्वतों का जन्म भी पृथ्वी पर हो गया।

ऐसा माना जाता है कि इस तृतीय अर्थात् प्राचीन काल में ही भारत की भूमि में भी अनेक परिवर्तन हुए। भारतवर के दक्षिणी प्लेटो या पठार का निर्माण दूसरे अर्थात् पुरातन काल में ही गया था। इसी काल में यह दक्षिणी पठार एक ओर आस्ट्रेलिया तथा दूसरी ओर अफ्रीका से मिला था। आगे के काल में इसका बहुत सा भू-भाग समुद्र में डूब गया किन्तु दक्षिण का प्लेटो समुद्र में नहीं डूबा। इसी कारण यह प्लेटो समुद्र भर के सब भागों में पुराना माना जाता है। इसी प्रकार इस काल में भारत के पूर्व तथा उत्तर में समुद्र के जल में से भूमि ऊपर उठ आयी और गंगा सिन्धु का मैदान बना। पहले इस उत्तरी भाग में भी समुद्र था तथा उस समुद्र के ऊपर हिमालय पर्वत था।

हिमालय से जो नदियाँ निकलीं वे हिमालय की भूमि को काट काट कर नीचे लाती रहीं और समुद्र में डालती रहीं ।

हजारों लाखों वर्षों में इसी मिट्टी से समुद्र भरता रहा और जल पीछे हटता गया । इस प्रकार गंगा, सिंधु तथा ब्रह्मपुत्र आदि नदियों ने हिमालय से मिट्टी ला ला कर समस्त समुद्र को धीरे-धीरे पाट दिया और मैदान बना दिया । राजस्थान के सम्राज्य में भी यही अनुमान किया जाता है कि वहाँ पहले समुद्र था जो सूख गया और भूमि बाहर निकल आयी । उसी समुद्र का अवशेष सागर भील मानी जाती है । इस प्रकार इन कालों में भारत की भूमि ने बहुत कुछ बतमान जैसा रूप ग्रहण कर लिया । ससार के अन्य भागों में भी इसी प्रकार अनेक परिवर्तन हुए । आगे माध्यमिक काल में भी ऐसे परिवर्तन होते रहे । लोकमान्य तिलक का मत है कि हिम काल अथवा उससे पूर्ववर्ती काल में आल्प्स तथा हिमालय की पर्वत श्रेणियाँ बनीं तथा इसी काल में उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका की पर्वत श्रेणियाँ बनीं ।

हिमकाल के सम्राज्य में भी विज्ञानवेत्ताओं का अनुमान है कि ससार के भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न समयों में हिम-प्रलय होते रहे । अंतिम हिम प्रलय का सर्वाधिक प्रसार आज से लगभग पचास हजार वर्ष पूर्व विश्व के तृतीयांश में हुआ तथा उसमें स्तनपोषी जंतुओं का घोर विनाश हुआ । एशिया के हिमालय प्रदेश में भी इस हिम प्रलय का अधिक प्रसार हुआ । किंतु यूरोप और अमेरिका अत्यधिक हिमप्रस्त हुए ।

**पृथ्वी पर जीवन का आरम्भ —**

पृथ्वी पर जीवन का आरम्भ कब हुआ इस सम्राज्य में भी विद्वानों में काफी मतभेद है । पृथ्वी की समस्त आयुमें तीन चौथाई वर्ष अजीब कल्प के माने जाते हैं तथा चौथे भाग में उस पर जीवन की उत्पत्ति हुई मानी जाती है । कुछ विद्वानों का मत है कि तृतीय और चतुर्थ कालों में अर्थात् प्राचीन तथा माध्यमिक काल में जीवन का आरम्भ हो गया था, क्योंकि इन कालों की चट्टानों की तहों में जीवन के कुछ चिह्न पाये जाते हैं । सम्भवतः इस काल में आरम्भिक अर्थात् मीन जैसे प्राणियों का जन्म हो गया था । कुछ विद्वान इस काल को ५० करोड़ वर्ष पूर्व से लेकर २०-२५ करोड़ वर्ष पूर्व तक मानते हैं । कुछ लोगों का अनुमान है कि आरम्भ में जिन जीवों का जन्म हुआ उनके दाय, मुँह नाक कान आदि कुछ भी न थे । उनके न मांस था, न हड्डी और न ऊपर का खोल ही न था । चौथे या मध्य जीवन काल में विशालनाय टिपकरी, मगर आदि दंत धारी प्राणियों तथा प्रथम गुद्ध पक्षियों तक का जन्म हो चुका होगा । अन्य लोगों का विचार है कि जीवन का आरम्भ पाचवें (लोक० तिलक के अनुसार चौथे) अर्थात् आधु

निक काल से ही माना जाना चाहिये। इसी काल का इयासीन खण्ड जीवन के आरम्भ का काल है। आलाइगोसीन अर्थात् अरुण जीवन कालमें जीवन बहुत ही निम्न श्रेणी का था। पृथ्वीका जलवायु उस समय तक कुछ गरम ही था। उसके आगे का माइयोसीन खण्ड निकट जीवन का काल है जिसमें भिन्न भिन्न जीवधारी छाटी अवस्था में ही रहे यद्यपि उस समय पृथ्वी के जलवायु की गर्मी कम होने लगी थी। प्लाइसोसीन (निकटतर जीवन) खण्ड में भिन्न-भिन्न जीवधारियों में उत्पत्ति हुई। इस काल में पृथ्वी का जल वायु वर्तमान जमी अवस्था में आता जा रहा था। पाचवा खण्ड प्लाइसोसीन निकटतम जीवन का काल है। इस काल में भिन्न-भिन्न जीवधारियों की और अधिक उत्पत्ति हुई। इसका आगे टेरटियरी काल माना जाता है जिसे "हिमाच्छादित" अथवा हिम-काल भी कहते हैं। इस काल में स्तनपयी जीवों का प्रथमतः विकसित रूप दिखायी देने लगा।

इस प्रकार ये चट्टानें ही इस पार्थिव गैर की प्रारम्भिक अवस्थाओं का लिखित इतिहास हैं जिनके आधार पर उक्त निष्कर्ष निकाले गये हैं। इन चट्टानों के काल की कल्पना भी भूगर्भ वेत्ताओं ने की है। इस कल्पना के अनुसार निम्न चट्टानों का काल ८० करोड़ वर्ष से लेकर ८ करोड़ वर्ष पूर्व तक माना जाता है जिसके पश्चात् जीवन सहित चट्टानों का काल आरम्भ हो जाता है। कुछ लोग जीवन सहित चट्टानों का अर्थात् पृथ्वी पर जीवों के आरम्भ होने का काल १० से ६ करोड़ वर्ष पूर्व से लेकर ६० करोड़ वर्ष पूर्व तक मानते हैं।

### जीवन का विकास —

पृथ्वी पर जीवन का प्रथमतः आरम्भ तथा विकास किस प्रकार हुआ यह एक दूसरा महत्वपूर्ण प्रश्न है। इस पर भिन्न भिन्न क्षमों में भिन्न-भिन्न विद्वानों तथा विचार प्रचलित हैं। किन्तु वैज्ञानिक मन का प्रायः सर्वमान्य मत है वह यह है कि अजोय कल्प की समाप्ति पर जीवन का प्रादुर्भाव जल से हुआ—ऐसे गरम तथा उबले जल से जिस पर सूर्य का प्रकाश पड़ता था। पृथ्वी पर बने हुए तालाबों में तथा भीलों में ऐसा ही जल होता है। इन्हीं तालाबों के किनारे की कीचड़ में कचन, नम्रवन आदि तत्वों के योग से एक चैरदार पदार्थ—बैक्टीरिया के समान—बना तथा फिर कुछ अन्य तत्वों के योग में इसी चैरदार पदार्थ में जीवन का प्रारम्भ हुआ। यह उन्नी अवस्था चैरदार पदार्थ कीचड़ में से ही अपना भोजन प्राप्त करता था तथा उसी से यह बढ़ने लगा। प्रायः ५ में इसमें एक कोष (सेल) रहता था जो इसका शरीर बढ़कर चरम सीमा पर पहुँचा तो वह टूट-टूटकर टूटकर हो गया। अर्थात् जो ये एक कोष वाले जीव बढ़े सोफर अपनी पूरी शक्ति पर आ जाते थे तब इनके दोनो छोर फूल जाते थे और मध्य में पतन होते जाते थे। यहाँ तक कि एक दिन इनके दो भाग हो जाते थे। यह

दोनों भाग पर भिन्न-भिन्न जीव बनकर रहते थे। इस प्रकार इन दो या अधिक टुकड़ों का स्वतंत्र अस्तित्व हो गया अर्थात् एक जीव से दो या अधिक जीवों की उत्पत्ति हुई।

“सृष्टि की कथा” के लेखक के अनुसार उक्त पदार्थ में अनेक रासायनिक प्रक्रियाओं के कारण क्रियाशील शक्ति उत्पन्न होने लगी और धीरे धीरे चेतना शक्ति के लक्षण स्पष्ट दिखाई देने लगे। “जीवनाणु की सामर्थ्य और कार्यकारिणी शक्ति बढ़ने लगी। इसी सामर्थ्य से जीवनाणु का विभाजन हुआ—एक अणु से दो अणु बने, दो से चार हुए, चार से आठ और आठ से सोलह। धीरे धीरे वे इतने समर्थ हो गये कि एक एक से तीन-तीन चार चार टुकड़े होन लगे। इस प्रकार कालान्तर में अस्पर्य जीवनाणुओं की सृष्टि हो गई।”

इस प्रकार प्रारम्भिक जीवन उथले जल में अर्थात् तालाबों, झीलों तथा समुद्रों के किनारे उत्पन्न हुआ तथा लाखों करोड़ों वर्ष तक जाति भेद के अनेक दर्ज पानी में ही व्यतीत करता रहा। यदा जीवन धीरे-धीरे बनसतियों के रूप में प्रकट होने लगा। बनस्पति शास्त्र के विद्वानों की कल्पना है कि सबसे पहले एक कोष्ठीय पौधा—प्रोटोकोकस उत्पन्न हुआ होगा। इसमें एक कोष्ठ होता है जिसमें क्लोरम प्रोटोप्लाजम, एक वेन और थोड़ा सा इग रंग होता है। इस एक कोष्ठीय पौधे से थोड़े दिनों के पश्चात् चार कोष्ठों का जन्म हुआ और इस प्रकार धीरे धीरे सहस्रों कोष्ठों का जन्म हुआ।

फिर जल के पौधों से स्थल पौधों का जन्म हुआ। ऐसे पौधों में सबसे पहले पत्तों (पत्नी) का जन्म हुआ। फिर बहुपत्रक पौधे जन्मे और उससे बाद छत्राकार वृक्षों, देवदार, नारियल, ठाड़, रज्जूर इत्यादि की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार अनेक वृक्षों का जन्म हुआ।

बनस्पति तथा वृत्तों के पश्चात् जीवधारी प्राणियों की कहानी शुरू होती है। अनुमान है कि इनका आरम्भ भी जल में ही हुआ और सबसे पहले छोटी-छोटी मछलियों का जन्म हुआ जिनके न रीढ़ की हड्डी थी और न खोपड़ी। इनके बाद रीढ़ की हड्डी वाले तथा खोपड़ी वाले जीवों की उत्पत्ति हुई। फिर सारीसभ अर्थात् साप के समान पट से चलने वाले जीवों का जन्म हुआ। ये जीव स्थल पर चलनेवाले थे।

जलचर जीव चलकर किस प्रकार बने इसकी भी कल्पना प्राणिशास्त्रियों ने की है। जीवधर्मियों में ऐसी प्रवृत्ति होती है कि वह आस पास की अवस्थाओं में अनुकूलता तथा मेल बढ़ा लेता है। ऐसा न होना तो जीवन का रहना ही सम्भव न होता। जल में जो मछलियाँ प्रथमतः उत्पन्न हुईं उनके आगे भी यही समस्या आइ होगी कि यदि ताप या भील में पानी कम हो जाय अथवा जमीन खल जाय, तो वे जीवन की रक्षा किस

प्रकार करें। इसी चिन्ता ने उन्हें सूखी भूमि से अनुकूलता प्राप्त करने की प्रेरणा दी होगी। जो जीव इस प्रकार अनुकूलता प्राप्त न कर सके होंगे वे मर गये होंगे तथा जिन्होंने अनुकूलता प्राप्त कर ली वे जीवित रह सके होंगे। इस प्रकार जल से जीवन सूखी भूमि पर आया। जीवन के इस विशाल क्रम का एक उदाहरण मेढरू है। वह पानी के बाहर भी जीवित रहने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। प्राणिशास्त्रियों का यह भी अनुमान है कि वनस्पति के समान प्राणियों में भी सबसे पहले एक कोष्ठीय जीव की उत्पत्ति हुई। फिर बहु कोष्ठीय जीवों का विकास हुआ। जब पृथ्वी पर सरीसृप अर्थात् पेट के बल सरकने वाले जीव पैदा हो गये तब उनका आगे का भाग सिर के रूप में विकसित हो गया। फिर उनके शरीर में रेंगने के लिए पैर भी निकलने लगे। फिर धीरे-धीरे नाक, आँसु मुख आदि विकसित होने लगे। अनुमान है कि इन सरीसृपों से ही एक ओर तो पक्षियों की उत्पत्ति हुई तथा दूसरी ओर पशु उत्पन्न हुए। ये पशु अपने बच्चों को दूध पिलाते थे। इन दूध पिलाने वाले चौपायों में हृदय, पैंपड़े, शानेन्द्रियाँ आदि सभी अंग थे। पशुओं में बंदर, लंगूर, चिम्पाजी आदि भी थे।

विकास के उत्तरोत्तर क्रम में कुछ जीवों ने पिछले दो पैरों से चलना और आगे के दो पैरों से वस्तुओं को पकड़ने का काम लेना आरम्भ किया। धीरे धीरे उसने आगे के पैरों से चलना बिल्कुल छोड़ दिया और ये दो पैरों दो हाथों के रूप में विकसित हो गये। बंदर, लंगूर आदि ऐसे पशु हैं जो आगे के दो पैरों से चल भी लेते हैं तथा उनसे हाथों का काम भी ले लेते हैं। इन्हीं बंदरों, लंगूर तथा वनमानुस आदि का विकास होकर मनुष्य की शकल के प्राणियों का क्रम हुआ और फिर वह धीरे धीरे मनुष्य बना। विकास के इस क्रम का सबसे अंतिम प्राणी मनुष्य ही है तथा मनुष्य के रूप में विकास का क्रम अपनी चरम सीमा को प्राप्त हुआ है।

मनुष्य तथा अन्य जीवधारियों के विकास का उक्त क्रम पारश्चात्य विज्ञान वेत्ताओं ने अनेक प्रकार की वैज्ञानिक खोजों तथा कल्पनाओं के आधार पर निश्चित किया है। इनमें मुख्य इंग्लैण्ड के सुप्रसिद्ध डार्विन महाशय हैं जिन्होंने यह सिद्ध किया है कि वतमान अवस्था में मनुष्य बंदर का ही विकसित रूप है। जिन्होंने पहले पहल यह सिद्धांत सन् १८६६ में अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "ऑरीजिन ऑफ स्पेसीज" में प्रस्तुत किया जो इंग्लैण्ड में प्रकाशित हुआ। इस सिद्धांत के कारण लोगों में बड़ी हलचल मची। बहुत लोगों ने डार्विन का मजाक भी बनाया कि तुम्हारे ही पुत्रों बंदर रहे होंगे, हमारे पूर्वज तो मनुष्य ही थे। अनेक विद्वान डार्विन सिद्धांत के सम्बंध में अब भी शक करते हैं फिर भी कां अंग सिद्धांत इतना सम्मान न होने के कारण अधिकांश सभार ने डार्विन के विश्वास क्रम को मान्य कर लिया है। कुछ लोगों का विचार है कि मनुष्य ब्रिच



जीव से बढ़कर अपने वर्तमान रूपमें पहुँचा है वह जीव बदरती नहीं था, हाँ बदरती सी आकृति का कोई व्यय जीव हो सकता है। कुछ लोग कहते हैं कि मनुष्य प्रारम्भ से मनुष्य ही था।

मनुष्य स्वयं भी अपनी उत्पत्ति का सम्बन्ध में विचार करता रहा है। विभिन्न घमों में इस सम्बन्ध में भिन्न भिन्न विचार प्रचलित हैं। चीन के प्राचीन लोगों का विश्वास था कि पान्कू देवता ने—जिनके सत हाथ और आठ पैर थे—मनुष्य को बनाया और यही मनुष्यों का प्रथम राजा बना। यहूदियों के विचार के अनुसार इश्वर ने सबसे पहले एक मनुष्य का निर्माण किया और उसका नाम आदम रखा। उसका जन्म स्वर्गमें हुआ था और उसकी पत्नी से एक स्त्री उत्पन्न हुई जिन्का नाम ईव या हौआ था। यही सभार का सप्त प्रथम स्त्री थी। फिर आदम और हौआ से यह समस्त सृष्टि उत्पन्न हुई। भारत के पुराने लोगों की मान्यता है कि समस्त सृष्टि ब्रह्मा ने उत्पन्न की और उसी से मनुष्य की उत्पत्ति हुई। पुराणों के अनुसार (वायु पुराण अध्याय १०) ब्रह्मा से स्वयम्भुव मनु उत्पन्न हुए तथा फिर मनु और शतरूपा से इस समस्त मानव सृष्टि की उत्पत्ति हुई। \* इसी प्रकार अ्य घमों में भी मनुष्य का जन्म के समय में विभिन्न कल्पनाओं की गई है परन्तु वे केवल कल्पनाएँ हैं जिनका वैज्ञानिक आधार कुछ भी नहीं है। इसी कारण सभार के अधिकांश विद्वान् डार्विन के विचारमार्ग के सिद्धांतको ही सत्य मानने के पक्ष में हैं।

मनुष्य का जन्म सबसे प्रथम पृथ्वी के किस भाग में हुआ। इस सम्बन्ध में भी लोगों ने भिन्न भिन्न कल्पनाएँ की हैं। स्वामी दयानन्द का विचार था कि आदि मानव का उत्पत्ति स्थान त्रिविंशत अर्थात् त्रिंशत् प्रदेश है तथा सर्गारम्भमें अमैथुनी सृष्टिसे मनुष्य का जन्म यतमान जैसे विकसित रूपमें ही हुआ। अंग्रेजी का सुपरिख्यत सन्दर्भ ग्रन्थ एन साइक्लोपीडिया ब्रिटानिया में लिखा है कि—मानव इतिहास के विद्यार्थी इस बात में प्रायः सहमत हैं कि पश्चिमी गोलार्द्ध में जो सर्व प्रथम मनुष्य थे वे उसी भाग में नहीं जन्मे थे (कहीं अत्यन्त से आये थे)। उत्तरी तथा दक्षिणी अमेरिकामें मनुष्य का जो प्राचीनतम अवशेष मिले है वे भी नवीन दृष्ट के हैं तथा उनमें पुरातन मनुष्यों की कोई विशेषताएँ नहीं हैं जैसी कि जावा चीन आदि स्थानों में मानव अवशेषोंमें कथवा उसके

\* मत्स्य पुराण (अध्याय ३) में मनुष्य की उत्पत्ति की कथा इस प्रकार दी गई है— ब्रह्मा ने लाक की रचना करने की इच्छा से अपने हृदय में सावित्री का ध्यान करके तरुदा आरम्भ की। जब करते समय उनका निष्पाप शरीर च दो भाग हो गये—अर्द्धभाग स्त्री रूप और दूसरा अर्द्ध भाग पुरुष रूप हो गया। उसी स्त्री रूप का शतरूपा नाम पड़ा। इसी दो भागों से मनुष्य की उत्पत्ति हुई।

वाद के ने दरखल मनुष्य के अग्रगण्यो में लिखा देती हैं। अतः यह निश्चित जान पड़ता है कि मनुष्य के प्रारम्भ का स्थान एशिया महाद्वीप ही है क्योंकि जापान तथा चीन एशिया में ही हैं। इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध विद्वान एच० जी० वेल्स का विचार है कि हमारे सदृश्य आकृति के मनुष्य का जन्म दक्षिणी एशिया अथवा उत्तरी अफ्रीका में हुआ होगा अतः वही उसका आदि स्थान है। उनका यह भी विचार है कि आज से २५००० वर्ष पूर्व से लेकर ४० हजार वर्ष तक मनुष्य अपना वर्तमान रूप ग्रहण कर चुका था \*। डा० राधा कुमुद मुकुर्जी का मत है कि आदि मानव पञ्जाब और सिवात्रिक पर्यन्त की ऊँची भूमि पर विकसित हुआ होगा अर्थात् मनुष्य का जन्म पश्चिम-महाद्वीप भारत में ही हुआ \*। एक अनुमान यह भी है कि आदमी गुरु से ही आदमी या और उसकी उत्पत्ति एक साथ अनेक देशों में हुई। डार्विन के विकास क्रम को मानते हुए भी यह कल्पना उद्दिगम्य जान पड़ती है कि मनुष्य अपने विकसित रूप को अनेक देशों में एक साथ ही प्राप्त हुआ होगा। पूर्ण मनुष्य बन जाने पर उसने सम्पत्ता का आरंभ प्रकृतियाँ और सम्पत्ता की ओर उसका यह पग विभिन्न देशों में विभिन्न गतिमा रखा होगा अर्थात् कहीं उसने शीघ्रता से सम्पत्ता सीपी, कहीं बहुत धीमी गति से इस ओर उड़ा।

### (२) मानव प्रगति पथ पर—

जैसा कि ऊपर बताया गया है विज्ञान-शक्तियों के मतानुसार जीवन का प्रारम्भ क्षुद्र रूप में हुआ तथा विकास करते-करते वह मनुष्य रूप को प्राप्त हुआ। उनका यह भी विचार है कि जिस प्रकार क्षुद्र जीवन को विकास करते करते मनुष्य रूप प्राप्त होने में लाखों वर्ष लगे उसी प्रकार आदिम मनुष्य जगत् में वर्षों में सम्पत्ता की अनगिनत सीढ़ियों को पार करता हुआ वर्तमान सम्पत्ता की अवस्था को प्राप्त हुआ है।

मनुष्य प्राणी की प्रारम्भिक उत्पत्ति कब और किस स्थान पर हुई इसका निश्चित उत्तर तो विज्ञान वेत्ताओं के पास नहीं है। परन्तु जिस प्रकार उन्होंने पृथ्वी की चट्टानों की खोज कर तथा उनकी बनावट तथा उनमें प्राप्त हुए अणुओं के आधार पर जनपति तथा जीवमय प्राणियों के विकास क्रम का निर्धारण किया है, उसी प्रकार भूमि के भीतर प्राप्त हुए पत्थर तथा चकमक के कुछ इस प्रकार के टुकड़ों को देखकर वा हथियार या औजारों की शृङ्खला में बनाये गये शिगाद देते हैं यह अनुमान किया है कि पत्थरों के ये भदे औजार मनुष्यों के ही बनाये हुए हैं तथा इनके बनाने वाले प्रारम्भिक अथवा आदिम मनुष्य ही होंगे। भूमि की जिन तहों में ये हथियार और औजार प्राप्त हुए हैं उनके विषय में भूगर्भ शास्त्रियों का यह अनुमान है कि उनके तहों उस काल में बन चुकी

o—Outline of History—H G Wells—p 62

।—इतिहास व प्रेस ग्यालियर अधिप्रेषण का अन्तर्धीय भाग।

थीं जिनको अब से पूर्व लगभग ६ लाख वर्ष का समय व्यतीत हो चुका है। इस प्रकार आदिम मनुष्य अब से लगभग ६ लाख वर्ष पूर्व उत्पन्न हो चुका होगा। वहीं से मनुष्य के विकास का सूत्र भूगर्भ शास्त्रियों के हाथ से पुगन्त्व शास्त्री अपने हाथ में ग्रहण करते हैं और फिर मनुष्य की सभ्यता के विकास का प्रस्तर युग, ताम्रयुग, कांस्य युग, लौह युग आदि में विभाजित करते हैं।

**मानवी कपालों के अवशेष—**

विज्ञान-वेत्ताओं ने एक अत्यन्त आधार पर भी मनुष्य के विकास का तथा उसके कालक निश्चय किया। हवियारों ने अतिरिक्त कई स्थानों पर मनुष्य तथा मनुष्य सदृश्य प्राणी की कुछ खोपड़ियों भी प्राप्त हुई हैं जिनकी बनावट के आधार पर तथा इस आधार पर कि वे पृथ्वी के भीतर कितनी गहराई में प्राप्त हुई हैं अनेक अनुमान किये गये हैं। ऐसी खोपड़ियाँ जावा (इंडोनेशिया), फॉर्मिग (चीन), डेडवुड (जर्मनी) आदि कई स्थानों पर प्राप्त हुई हैं।

जावा में एक खोपड़ी एक अन्य सैनिक विद्वान डेयूजोइस को सन् १८८१ ई० में सोन्दा नदी के किनारे प्राप्त हुई थी। अभी तक प्राप्त अवशेषों में यह जावा मानव ही सबसे पुराना माना गया है क्योंकि उसका समय इसा से लगभग ६ लाख वर्ष का अनुमानित किया गया है। डेडवुड के मनुष्य का समय इसा से ३ से ४६ लाख वर्ष पूर्व का माना जाता है। फिर ने-दरथल मनुष्य का पता लगता है और यह वास्तविक मनुष्य माना जाता है। ये ने-दरथल मनुष्य गुप्ताओं में रहता था जिन्हें वह अग्नि का प्रयोग करना जान गया था। इसके जो अवशेष प्राप्त हुए वे ५० हजार वर्ष पुराने माने जाते हैं कि तु अनुमान किया गया है कि यह मनुष्य दो लाख वर्ष तक जीवित रहा होगा। इस मनुष्य का कपाल डूबल डर्ब नगर के पास ने-दरथल नामक स्थान पर प्राप्त हुआ था। अतः यह ने-दरथल मानव के नाम से प्रसिद्ध है। इसके बाद जिस मनुष्य का पता चलता है वह और अधिक विकसित था और वह सच्चा मनुष्य माना जाता है। उसने ने-दरथल मानव का विनाश कर दिया।

हाल के वर्षों में इस प्रकार की कुछ और भी खोजें हुई हैं। श्री गड्डल साहृत्वायन ने बताया है कि दिगम्बर १९२८ में एक तद्वन चीनी विद्वान को जो खोपड़ी प्राप्त हुई वह ५ लाख वर्ष पूर्व के मनुष्य की थी। ३ अक्टूबर १९५६ में मायडन ग्यूजियम नैरोधी (दक्षिणी अफ्रीका) के कपूरटर डा० लीकी ने उनकी पत्नी को प्राप्त हुई एक ऐसी खोपड़ी का प्रदर्शन लंदन में विज्ञान-वेत्ताओं के एक समाज में किया था। यह मनुष्य सदृश्य प्राणी ६ लाख से १० लाख वर्ष पूर्व उस देश में रहता था जो आज टांगानिका

के नाम से प्रसिद्ध है। यह मनुष्य ५ फीट से कम ऊँचा था, उसका माया नहीं के बराबर था, गदन त्रैल के समान था तथा चेहरा चूड़ा लम्बा था। रूसी वैज्ञानिकों को साइबेरिया के वर्ष में दबे हुए ऐसे अस्थिपत्र मिले हैं जो १० लाख वर्ष पुगने बताये जाते हैं। भारत में भी हाल में उत्तरी सिञ्चालिक पहाड़ में आदिम मनुष्य के चिह्न प्राप्त हुए हैं जो फोसिल (पथराइ हड्डियों) के रूप में हैं। इनसे यह अनुमान होता है कि आदिम मनुष्य भारत में उत्पन्न हुआ था। चण्डीगढ़ के पाम की ऊररी सिञ्चालिक की ये चट्टानें प्लाइस्टोसीन अर्थात् निकटतम जीवन के काल की समझी जाती हैं। यह काल कम से कम १० लाख वर्ष पूर्व का समझा जाता है। यहाँ अनेक पशुओं की भी पथराइ हड्डियाँ प्राप्त हुई हैं। मार्च १९६० में चीन में एक अन्य प्राचीन मनुष्य के अवशेष प्राप्त हुए जो दक्षिणी चीन में १ लाख से २ लाख वर्ष पूर्व तक क किसी समय में रहता था, किन्तु इस त्वाच का महत्व पीकिंग मानव जैसा नहीं समझा जाता। नमदा उपत्यका (जबलपुर तथा होशंगाबाद जिलों) में भी प्राचीन मानव के कुछ अवशेष प्राप्त हुए हैं जिनका काल लगभग ६ लाख वर्ष पूर्व का समझा जाता है। इस प्रकार विज्ञान बेंचामों ने लगभग ८ १० लाख वर्ष पूर्व तक के मनुष्य का पता लगाया है। मानव सृष्टि इससे पूर्व ही उत्पन्न हो चुकी होगी।

### उन्नति के ३ युग—प्रस्तर काल —

पुगने औजारों, हथियारों तथा अन्य अवशेषों का अध्ययन कर पुगतत्वशास्त्रियों ने मनुष्य की उन्नतिके जो तीन काल निर्दिष्ट किए हैं वे प्रस्तर-युग, कांस्य युग और लोह युग कहलाते हैं।

प्रस्तर युग के दो बड़े भाग पुरा पाषाण युग (Palaeolithic age) तथा नव पाषाण युग (Neolithic age) हैं। प्राचीन अथवा पुरा पाषाण युग के औजार बहुत भद्दे टग के बने हुए मिलते हैं। इस काल में पथर के अतिरिक्त सींग, लकड़ी तथा हड्डी के भी औजार बनाये जाने लगे थे। नव पाषाण-युग में मनुष्य अपने औजार और हथियारों को पिय पिस कर सुन्दर और चिकना बनाने लगा था। अतः ये हथियार अधिक उत्तम प्रकार के हैं। पुग पाषाण युग का समय बहुत लम्बा था जो १६ लाख वर्ष पूर्व से ५० हजार वर्ष पूर्व तक माना जाता है। नव पाषाण-युग के सम्बन्ध में किहीं विद्वानों की कल्पना है कि ५० हजार वर्ष पूर्व यह आरम्भ हो गया था तथा अन्य लोग मानते हैं कि यह अब से केवल ७ हजार वर्ष पूर्व आरम्भ हुआ। यहाँ यह स्मरणीय है कि पुरा पाषाण युग तथा नव पाषाण युग का आरम्भ तथा अन्त पृथ्वी के सब भागों में एक साथ नहीं हुआ।

पाषाण-काल के मनुष्य प्रायः गुफाओं में रहने लगे थे। इससे पहले वे खुले जंगलों अथवा मैदानों में रहते होंगे और कर्मूल कर्मलाकर पट मारते रहे होंगे अथवा पशुओं

को मार कर खते होंगे। गुफाओं में रहने के दीर्घ समय में वे लोग लकड़ी से चिब खाँचना तथा रंगों का प्रयोग करना भी सीख गये थे। क्योंकि अनेक गुफाओं की दीवारों पर और हड्डियों पर भी चित्रकारी का काम के नमूने मिले हैं। टाम हेरिसन नामक एक अंग्रेज सज्जन ने गुफाओं के जीवन के सम्बन्ध में अनुसंधान करने के लिए कोर्नियो द्वीप के किनारे की एक गुफा में अपने दल के साथ कई महीने तक रहने का अभ्यास किया। इस अनुभव के आधार पर उनका कथन है कि इन गुफाओं में कम से कम ५० हजार वर्ष पूर्व से मनुष्य का निवास रहा है। इस प्रायण काल के लोग जानवरों का शिकार करने के लिये तीर भी बनाने लगे थे, परन्तु भोजन को अथवा मांस को आग पर पकाने की विधि उन्हें उस समय तक मादूम नहीं हुई थी ऐसा अनुमान किया गया है।

दूसरा प्रयत्न जो मनुष्य ने उन्नति की ओर बढ़ने के लिये किया वह था शरीर की रक्षा के लिये वस्त्र पहिनना तथा मकान बनाना। प्रारम्भ में वस्त्र पशुओं के चमड़े के ही थे, धीरे धीरे ऊन तथा अन्य पशुओं से वस्त्र तैयार किये जाने लगे, किन्तु यहाँ तक पहुँचने में लोगों का बहुत समय लगा होगा। मकान का प्रारम्भ प्राकृतिक उद्यानों तथा गुफाओं से हुआ। इसके बाद तालाबों और झीलियों के किनारे लकड़ी और बाँसक मकान बनाये जाने लगे।

इसके पश्चात् अग्नि का आविष्कार हुआ जो मनुष्य जाति के क्रांतिकारी आविष्कारों में से एक है। अग्नि का ज्ञान मनुष्य को कम और किस प्रकार हुआ यह कहना कठिन है। सम्भव है पथर के औजार बनाने समय अथवा उन्हें चिबना करने के लिये विषते समय चिनारियों के उड़ने पर उसे अग्नि के दर्शन हुए हों और उसी यह ज्ञात हुआ हो कि पत्थरों के रगड़ने से अग्नि उत्पन्न हो सकती है। इस प्रकार अग्नि उत्पन्न करके वह अपने भोजन को पकाकर खाने लगा। धीरे धीरे जब ये लोग अनाज उत्पन्न करना सीख गये तब अनाज को आग में भून लेते और फिर उस भुने हुए अनाज को पत्थरों से पीस कर उसकी रोटियाँ बना लेते और ऐसी रोटियों के टुकड़े कुछ गुफाओं में प्राप्त हुए हैं जो उस समय के मनुष्यों के महत्वपूर्ण अवशेष हैं।

फिर एक दीर्घ समय के पश्चात् मनुष्यों को घातुओं का ज्ञान हुआ। तब वह घातुओं के हथियार भी आग्नि में तपाकर बनाने लगा। विभिन्न घमों में आग्नि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कुछ दन्त कथाएँ प्रचलित हैं। उनसे इतना ही ज्ञात पड़ता है कि यह आविष्कार बहुत प्राचीन काल में सम्भरत पुत्र प्रायण-काल में हो चुका था।

उन्नति की अगली सीढ़ी पशुओं को अपने वश में लाकर उनका पालन-पोषण करना तथा अपने कार्यों में उनका उपयोग करना था। पहले मनुष्य पशुओं को मार कर केवल उनका मांस खाना आता था। बाद में वह उन्हें पालकर उनका दूध पीने

लगा। जब पालन पशु अधिक बढ़ने लगे तो उनके लिये चारे की कठिनाई होने लगी। अतः चारे की तलाशमें मनुष्यों ने समूह अपने पशुओं के छुट्टों सहित दूर-दूर जाने लगे। इस समय के मनुष्य का जीवन चरवाहों जैसा था और वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर, एक चरागाह से दूसरी चरागाह तक अपने पशुओं के साथ घूमते रहते थे। यह चरवाहा जीवन का काल भी सदृशा वर्षों तक रहा। इस प्रकार घूमते फिरते जहाँ कहीं उन्हें अधिक हरियाली तथा जल की सुविधा मिलायी जाती वहाँ वे टहर जाते। इस प्रकार नदियों, झीलों तथा तालाबों के किनारे उनकी झोपड़ियाँ बनने लगीं। पशु पालन का यह युग सभ्यता की प्रगति में एक बड़ी मजिल थी। पशुओं के रखरखाव लिये मनुष्यों ने आस में भी मल जोल बढ़ाया, यह समूहों में रहने लगा और ऐसे ही समूहों के द्वारा आगे जातियों की नींव पड़ी।

पशु पालन के बहुत काल पश्चात् कृषि का युग आया। यह उन्नति की ओर एक ऐसा पग था जिसने मनुष्य के रहन-सहन में फिर एक बार क्रान्तिकारी परिवर्तन किया। अनुमान है कि कृषि का आरम्भ आग्निमय रूप से हुआ होगा। आरम्भ में जब मनुष्यों के समूह अपने पशुओं के साथ चारे की तलाश में इधर उधर घूमते थे तो उन्होंने देखा होगा कि उनसे छोड़े हुए या गिरे हुए अनाज के बीज पौधों के रूप में उग आये हैं। और उनमें अनाज की बालियाँ लग रही हैं। तब उनका चित्त में अधिक अनाज सृजन में प्राप्त करने के लिये अपने पास के जंगल अनाज के बीजों को जान-बूझकर पृथ्वी पर फेंकने का विचार पैदा हुआ होगा। जब घूमते-फिरते वे फिर उसी जगह आते होंगे, तो उन बीजों की उपज को इकट्ठा कर लेते होंगे। जब उन्हें यह अनुभव हुआ होगा कि बीज नियत समय पर पौधे बनकर फल देते हैं, तब वे अपने स्थानों पर फसल आने तक टहर जाते होंगे, इस प्रकार वे एक स्थान पर स्थायी रूप से टहरने के अभ्यस्त हो गये। खेती की शुद्धता इस प्रकार हो जाने पर वे वहीं घर बनाकर रहने लगे और उनका पारिवारिक जीवन स्थायी होने लगा। इसी प्रकार धीरे धीरे सामूहिक निवास अथवा गणना की सुविधा पड़ी। कृषि-काल का आरम्भ कुछ युरोपीय ज्यूरॉलॉग १५ हजार वर्ष पूर्व मानते हैं, परन्तु यह विश्वास उन्होंने यूरोप की दृष्टि में लगाया है। अन्य स्थानों में यह काल इससे बहुत पूर्व आरम्भ हो चुका होगा।

यहाँ यह स्मरण रखें कि उन्हें भी आदि अनाज मनुष्य द्वारा उत्पन्न किये जाने से पूर्व जंगलों में प्राकृतिक रूप में उगते थे। लक्षण आदि कई देशों में वे अनाज अब भी जंगलों में प्राकृतिक रूप से उत्पन्न होते हैं।

विद्यमान में आगे बढ़कर पशु पालन तथा कृषि कार्य तक मनुष्य ने जो प्रगति की उसे विद्वान प्रकृत काल की ही प्रगति मानते हैं। ऊपर बताया था कि प्रकृत काल

का आरम्भ तथा अतः पृथ्वी के भिन्न-भिन्न भागों में एक ही समय में नहीं बल्कि भिन्न-भिन्न समयों में हुआ जिनमें हजारों वर्ष का अंतर है। अनेक स्थानों में प्रस्तर युग में ही कृषि का आरम्भ हुआ हागा तथा अनुमानतः मिट्टी के चिकने तथा सुन्दर वतन बनाये जाने लगे। गाँव भी इसी समय में बसने लगे थे। मैसोपोटामिया में प्रस्तर-युग का अन्त ३५०० ई०पू० म हुआ समझा जाता है। डेनमार्क में १६०० ई०पू० में हुआ तथा 'यूजीलेण्ड' में तो पाषाण युग ही १८०० ई० सन् तक अर्थात् अब से केवल २०० वर्ष पूर्व तक चलता रहा जबकि यहाँ ४ निवासियों का यूरोपीय जातियों से सम्पर्क हुआ। यूरोप में पुरा पाषाण-युग का समय ७००० ई० पू० तक अथवा ५००० ई० पू० तक भी समझा जाता है और उसके बाद नये पाषाण युग का आरम्भ हुआ। सम्भवतः मध्य एशिया में भी इसी समय नये पाषाण युग का आरम्भ हुआ ऐसा कुछ लेखकों का मत है। साधारणतः यह समझा जाता है कि अब से ६-७ हजार वर्ष पूर्व सभ्यता के अधिकांश भागों में पाषाण युग समाप्त होकर धातु-युग प्रारम्भ हो चुका था।

जब कृषि मनुष्य को समृद्धता और सुधार के मार्ग पर लाई तथा मनुष्य जाति गाँवों में स्थायी रूप से बस गयी तब उसे अपनी रक्षा तथा सुव्यवस्था के लिये कुछ उपाय सोचने पड़े। इसी से आगे चलकर राजा तथा शासन-व्यवस्था का विकास हुआ।

मनुष्य समाज में धर्म का प्रारम्भ भी बहुत काल पूर्व हो गया था जिसका कारण भय माना जाता है इससे अनेक प्रकार के अंधविश्वास प्रचलित हुए तथा भिन्न-भिन्न धर्मों का विकास हुआ।

### धातु युग—

पाषाण युग के पश्चात् धातु युग आया। कुछ विद्वानों ने इसके दो बड़े भाग किये हैं जिन्हें कांस्य युग तथा लोह युग कहा जाता है। कुछ लोग पाषाण युग के पश्चात् ताम्र युग की कल्पना करते हैं क्योंकि ताम्र एक स्वतंत्र खनिज धातु है जिसके हथियार तथा औजार बनाये जा सकते थे। पत्थर के हथियारों की अपेक्षा ताम्र के हथियार अधिक नुकीले तथा शक्तिशाली थे तथा शत्रु को हानि भी अधिक पहुँचा सकते थे। ताम्रयुग की कल्पना दुनिया के भिन्न-भिन्न भागों में ३००० ई० पू० से १८०० ई० पू० तक की गई है। कुछ विद्वान ४००० अथवा ५००० ई० पू० में धातु युग में मनुष्य का प्रवेश मानते हैं तथा उसका आरम्भ ताम्र युगसे मानते हैं। श्री राहुल साह्यायन के अनुसार मध्य एशिया में २५०० ई० पू० से १५०० ई०पू० तक ताम्र युग रहा और १५०० ई० पू० से ७०० ई० पू० तक पीतल युग रहा। \* भारत में माहेजोदड़ो तथा बहादुरगढ़ (हरिद्वार) में ताँबे के हथियार प्राप्त हुए बनाये जाते हैं। ताँबे में कुछ भाग जस्ता का

मिश्रण करने से पीतल नाम की एक नई धातु जन जाती है। पीतल के हथियार ताँबे के हथियारों से भी अधिक कड़े होते थे। अतः धीरे धीरे बहुत से देशों में पीतल का प्रचलन हो गया। एक लोग पीतल की ही तलवारें तथा भाटे बनाते थे। यह मिश्रण की क्रिया मनुष्य ने धीरे धीरे ही सीखी होगी।

ताँब तथा पीतलके पदार्थ कामे का युग आया ऐसा माना जाता है। यह भी अनुमान है कि कासे का शान पहले एशिया के लोगों को हुआ होगा और वहाँ से वह यूरोप व लोगों में पहुँचा। यूनान, इटली, आस्ट्रिया और फ्रांस में १००० ई० पू० तक कास्य युग रहा और उत्तरी यूरोप में ४०० ई० पू० तक रहा। कुछ लोग ५००० ई० पू० से ३००० ई० पू० तक कासे का प्रयोग का काल मानते हैं। कासा, ताँबे और टिन के मिश्रण से बनता है।

कास्य युग के बाद लौह युग आया। अनुमान किया गया है कि लोहे का प्रयोग भी कासे के समान पूर्व में ही सम्भवतः पश्चिमी एशिया में प्रारम्भ हुआ और उसने शीघ्र ही कामे को हटकर उसका स्थान ले लिया। लगभग ३००० ई० पू० से इस काल का आरम्भ सम्भवा जाता है और यही काल अभी तक चल रहा है। अनुमान किया गया है कि मिस्र देश में लोहा १५०० ई० पू० व लगभग पहुँचा, क्योंकि इससे पूर्व की मिस्र की कब्रों में लोहे का पता नहीं चलता। यूनानमें लोहा लगभग १००० ई० पू० में पहुँचा और वहाँ से वह यूरोप के अन्य देशों में पहुँचा। उस समय तक यूरोप के लोग प्रायः घर घर अवस्था में ही ये अर्थात् भोजन की प्राप्ति के लिये केवल प्रकृति पर निर्भर न रहकर कृषि मसाधनों का उपयोग करने लगे थे, पशु-पालन तथा कृषि कार्य करने लगे थे, किंतु इसने आगे न बढ़े थे। लोहे का प्रयोग आरम्भ हो जाने पर ये लोग भी सम्यता के युगमें आ गये।

भाषा की उत्पत्ति तथा उन्नति—

धातुओं के प्रयोग के समान भाषा की उन्नति भी धीरे-धीरे हुई। प्रारम्भिक अवस्था में मनुष्य बोलना नहीं जानता था तब वह पशुओं की तरह अपने गले से भिन्न-भिन्न प्रकार की आवाजें निकालकर अथवा सपेठों से ही अपने भावों को प्रकट करता था। अनुमान किया गया है कि प्राचीन प्रारम्भ काल तक मनुष्य बोल नहीं सकता था, परन्तु नवीन प्रारम्भकाल में वह बोलना सीख गया था। यद्यपि उस समय उसके शब्दों की संख्या सीमित ही रही होगी। भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न मनुष्य-समूहों ने अपने भाव प्रकट करने के लिये भिन्न-भिन्न शब्दों की रचना की और इस प्रकार भिन्न-भिन्न भाषाओं का विकास हुआ।

इसी प्रकार धीरे धीरे लिपि अथवा लेखन काल का विकास हुआ, जो उन्नति की



एक अत्यन्त महत्वपूर्ण मजिल थी। पुरा पापाण फालीन मनुष्य अपनी गुफाओं में भाति-भाति के भद्दे चित्र बनाया करता था। उ ही चित्रों से धीरे धीरे लेखन-कला का विकास हुआ। ऐतिहासिक काल के आरम्भ तक लेखन कला काफी उन्नति कर चुकी थी यद्यपि यह उन्नति भी भिन्न भिन्न देशों में भिन्न भिन्न मजिलों पर थी। वेनीलोनिया और मिस्र देशों में यह कला ५ ई हज़ार वर्ष पूर्व काफी उन्नति कर चुकी थी ऐसा माना जाता है। उस समय लिखने का ढंग यह था कि जिस वस्तु के सम्बन्ध में कोई बात कहना हो उसकी आकृति लकड़ों से बना दी जाती थी। उ ही रेखाओं तथा चित्रोंका अन्तिम विकास वर्णमाला के रूप में हुआ। ईराक और मिस्र की प्राचीन लिखावट चित्रलिपि की श्रेणी तक ही रही। अन्य कुछ देशों में चित्र के स्थान पर प्रतीकों से काम लिया जाने लगा अथवा अन्य प्रकार के चित्र बनाये जाने लगे। कहीं भिन्न भिन्न प्रकार की रेखाओं से भी काम लिया जाने लगा और इस प्रकार ससार के भिन्न भिन्न देशों में भिन्न भिन्न लिपियों का विकास हुआ।

**भाषाओं तथा नस्लों में मनुष्य-जाति का वर्गीकरण—**

इस प्रकार ससार के भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न प्रकार की भाषाएँ तथा लिखावटें प्रचलित हुईं। बहुत-सी भाषायें तथा लिपियाँ आपस में बहुत कुछ मिलती जुलती भी हैं। इसी प्रकार ससार के भिन्न भिन्न भागों में जो मनुष्य जाति विभक्त हुई उसमें शारीरिक गठन, रंग रूपादि की अनेक भिन्नतायें मानी जाती हैं। विज्ञान-वेत्ताओं ने समस्त मनुष्य जाति का वर्गीकरण भाषाओं तथा शारीरिक विशेषताओं के आधार पर किया है।

ससार में अनेक भाषायें प्रचलित हैं। उनमें से एक बड़ा समूह “इण्डो यूरोपीय” भाषाओं का माना जाता है। बहुत से लोग इसी को आर्य भाषा समूह भी कहते हैं, क्योंकि इसके बोलने वाले आर्य जाति के लोग समझे जाते हैं। इस आर्य अथवा इण्डो यूरोपीय वर्ग की भाषायें भारत से लेकर अफ्रीकाय यूरोप में फैली हुई हैं। भारत की संस्कृत, ईरान की पुरानी जेद तथा पारसी भी तथा यूरोप की ग्रीक, लैटिन, ट्यूटन, केल्टिक और स्लाव अर्थात् यूनानी, इटालियन, फ्रांसीसी, जर्मनी, अंग्रेजी, रूसी आदि भाषायें इसी एक भाषा समूह के अन्तर्गत मानी जाती हैं, क्योंकि इनमें बहुत से शब्द मिलते-जुलते पाये जाते हैं। मूठ शब्दों की इसी समानता के आधार पर यह माना जाता है कि ये सब भाषायें किसी समय एक ही रही होंगी और उनके बोलने वाले प्रारम्भ में एक ही स्थान पर रहे होंगे। बाद में जब वे लोग अलग-अलग दिशाओं में चले गये—तब यूरोपीय विद्वानों तथा भाषा शास्त्रियों की मान्यता के अनुसार—उनकी भाषाओं में अन्तर आता गया। यह भी अनुमान किया गया है कि जब एक भाषा

भाषी दूसरी जातियाँ एक ही स्थान पर रहती थीं उस काल को कम से कम ८ हजार वर्ष प्यतीत हो चुके हैं ।

दूसरे समूह की भाषाओं का नाम सेमेटिक या सामी भाषाओं का समूह है और इसमें हीब्रू, अरबी, शामी (सीरियन) प्राचीन असीरियाई (असुर) तथा बाबुल एव प्राचीन फिनीशियाई भाषायें सम्मिलित हैं । बादमें यह भाषा मिश्र उत्तरी अफ्रीका तथा अत्री सीनिया आदि में फैली । इन भाषाओं के शब्दों के मूल तथा व्याकरण के नियम आर्य भाषाओं से भिन्न हैं तथा लिखावट भी सीधी दाहिनी ओर से बाई ओर को लिखी जाती है किन्तु असुर, बाबुली तथा अक्कादी भाषाओं की लिखावट बाई ओर से सीधी दाहिनी ओर का चलती है, क्योंकि ये लिपियाँ सुमेरी लिपि से ली गई थीं ।

तीसरा समूह हेमेटिक (शामी) भाषाओं का है और इस समूह में बर्बरी, प्राचीन मिस्री और अफ्रीका की कुछ अन्य जगली जातियों की भाषायें तथा ऐजियन सागर के प्राचीन निवासियों की भाषायें सम्मिलित की जाती हैं । कुछ विद्वान इ हें भी सामी समूह में ही सम्मिलित करते हैं ।

उपर्युक्त तीन बड़े समूहों के अतिरिक्त कुछ और भी भाषा समूह माने जाते हैं जिनमें से एक तुर्की समूह कहता है जिसमें तातारी मुगल, मचू, लेपलेण्ड, फिनलेण्ड और साइबीरिया की कुछ भाषायें सम्मिलित समझी जाती हैं । एक चीनी समूह भी है जिसमें चीनी, घरमी, श्यामी और तिब्बती भाषायें सम्मिलित की जाती हैं । एक अन्य समूह अमेरिका की प्राचीन भाषाओं का माना जाता है । दक्षिण भारत की द्रविड़ भाषाओं तथा मलय भाषाओं को भी कुछ विद्वान इसी प्रकार के भाषा समूहों में मानते हैं ।

इन भाषा समूहों का बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध मनुष्य समाज की जातियों अथवा नस्लों से है । सखारमें जो मनुष्य समूह पाये जाते हैं उ हें सूत शकल, रंग-रूप, शारीरिक बनावट आदि के आधार पर कई जातियों अथवा नस्लों में बाँटा गया है । इनकी शारीरिक विशेषताएँ एक दूसरी से इतनी भिन्न हैं कि मानना पड़ता है कि ये जातियाँ प्रारम्भ से ही अलग अलग उत्पन्न हुई हैं । कुछ लोगो का विचार है कि यह जाति भेद भिन्न भिन्न स्थानों की प्राकृतिक विभिन्नताओं के कारण उत्पन्न हुआ है और वास्तव में मनुष्य-जाति एक ही है । किन्तु अलग अलग स्थानों पर अलग-अलग नस्लों के विकसित होने की प्रक्रिया अधिक बुद्धिगम्य जान पड़ती है ।

० सामी और शामी का यह भेद ध्यान में रखना चाहिये । अफ्रीकीमें जिन देश को सीरिया कहते हैं उसका स्थानीय नाम शाम है । दूसरी ओर जिन भाषा समूह को सेमेटिक कहते हैं उनका हिन्दुस्तानी रूप सामी है दोनों अलग-अलग शब्द हैं ।

यूरोप तथा पश्चिमी एशियाके पुराने लोग यह मानते थे कि ससार के समस्त मनुष्य गृह के तीन बेटों—साम, हाम और याफज की सन्तान हैं। सामले या गे हुआ रग की जातियाँ साम की सन्तान हैं, जगली जातियाँ हाम की सन्तान हैं और गारे तथा पीले चमड़े वाली जातियाँ याफज की। बाद के लेखकों ने समस्त मनुष्य समाजको एक अथ आघार पर तीन जातियों में विभाजित किया है जो गोरी पीली और वाली कहलाती हैं। वह मनुष्य-समूह जो भारत, पश्चिमी एशिया और यूरोपमें हजारों वर्षों से बसा हुआ है गोरी नस्लका माना जाता है। दूसरा समूह वह है जो एशिया के पूर्वी भागमें पैदा हुआ है और जिसका नाम मंगोल रखा गया है। इस जाति के लोगों का रग पीला, बाल काले और सीधे, आँख छोटी और नाक बिपटी होती है। तीसरा बड़ा समूह अफ्रीका के हब शियों का है। ये लोग अमेरिका में भी काफी सख्या में पहुँच गये हैं। इनका रग काला, बाल घुघराले और शरीर बलवान होता है। कुछ लोग एक और चौथी नस्ल उन लोगों की मानते हैं जो आस्ट्रेलिया के प्राचीन निवासी हैं। इनका रग भी काला होता है। ससार में यही तीन या चार मुख्य जातियाँ मानी जाती हैं।

मनुष्य जाति के ये भिन्न-भिन्न समूह अपनी अपनी परिस्थितियों के अनुसार उन्नति की ओर बढ़ते रहे और उस अवस्था तक पहुँचे जहाँ से सभ्यता का तथा इतिहास का भी प्रारम्भ होता है। सभ्यता तथा इतिहास का प्रारम्भ का काल भिन्न-भिन्न जातियों में भिन्न भिन्न रहा। किसी जाति ने शीघ्रतासे सभ्यता की ओर पग बढ़ाया किसी ने बहुत धीमा गति से। यूरपीय विद्वानों का विचार है कि अब से लगभग ६ हजार वर्ष पूर्व मसोपोटामिया अर्थात् सुमेर और बेबीलोन में तथा मिश्र देश में भी सभ्यता का प्रारम्भ हो गया था। भारत की सभ्यता को यूरपीय विद्वान बाद की मानते हैं, किन्तु अनेक प्रमाणों से भारतीय सभ्यता अथ समस्त सभ्यताओं से भी पुरानी सिद्ध होती है। अधिकांश यूरपीय विद्वान सुमेर की सभ्यता को ससार की सबसे पुरानी सभ्यता मानते हैं। सुमेर, बेबीलोन, मिश्र आदि की सभ्यतायें कितनी पुरानी हैं तथा उनकी क्या क्या विशेषतायें थीं, इनका सक्षिप्त बयान अगले अध्यायों में किया गया है।

## अध्याय २

### सुमेर की प्राचीन सभ्यता

आज जो देश इराक के नाम से प्रसिद्ध है उसे प्राचीन काल से यूरोप के लोग मेसोपोटामिया कहते आये हैं। यह नाम यूनानी लोगों का रखा हुआ था जिसका अर्थ होता है दो नदियों के बीच की भूमि। गत प्रथम यूरोपीय महायुद्ध के बाद जबकि इस देश की सीमाओं का पुनर्निर्धारण किया गया तब इसका नाम इराक रखा गया जो इस समय प्रचलित है। इसकी वर्तमान राजधानी बगदाद है।

इराक मुख्यतः दो प्राचीन नदियों—दजला और फरात की भूमि है। उत्तरमें आर्मीनिया तथा तुर्किस्तान के प्लेटो हैं। इन पहाड़ों की पूर्वी श्रेणी की एक चाटी अरागत तीन मील के लगभग ऊँची है। इस चोटी के दक्षिण में एक और पहाड़ है जिससे फरात नदी निकलती है। इसी स्थान पर जागरोस पहाड़ों का सिलसिला शुरू हो जाता है। आर्मीनिया के नीचे वन भील व पास से दजला नदी निकलती है। इन नदियों की घाटियों का दक्षिणी भाग नीचा मदान है जो ईरान की खाड़ी तक चला गया है। यही निचला भाग बेबीलोनिया कहलाता था। इस भाग की भूमि नदी उपजाऊ है। जिस प्रकार हमारे देश में गंगा और यमुना हिमालय पर्वत से निकलकर प्रयाग में मिलती हैं उसी प्रकार दजला और फरात मेसोपोटामिया व उत्तरी पहाड़ों से निकलकर बसरा नगर से कुछ मील उत्तर में एक दूसरी में मिल जाती हैं। प्राचीन काल में ये दोनों नदियाँ अलग-अलग घागओं में फारस की खाड़ी में गिरती थीं।

दजला फरात नदियों के मुहानों की भूमि को पुरानी बाइबल में (ओल्ड टेस्टामेंट में) 'शिनार' कहा गया है। बाद में जब बेबीलोन शहर इस समस्त प्रदेश की राजधानी बना तब यह प्रदेश बाबुल या बेबीलोनिया कहलाया।

ऐतिहासिक दृष्टि से मेसोपोटामियाँ को तीन भागों में बाँटा जा सकता है। उत्तर में अगुर और अजद हैं जो आगे चलकर बाबी प्रसिद्ध हुए। मध्य में जजुन नाम का प्राचीन नगर था। इन नगर ने मेसोपोटामियाँ की सम्पदा पर सबसे अधिक प्रभाव डाला जिसमें यह समस्त देश ही बाबुल या बेबीलोनिया के नाम से प्रसिद्ध हुआ। दक्षिण का भाग कैंगी (भूमि) अथवा कैंगी मुनेर (मुनेर की भूमि) कहलाता था जो बाद में बबल मुनेर कहा जाने

लगा। सुमेर और अक्काद एक प्रकार से बेबीलोनियाके उपक्षेत्र थे, किन्तु उनमें जाति तथा भाषा सम्बन्धी भेद थे। अक्काद म बहुत प्राचीन काल से सामी भाषा बोली जाती थी तथा उनकी जाति भी सामी (सेमेटिक) थी जबकि सुमेर वालों की भाषा तथा जाति भिन्न थी। इसी कारण सुमेर और अक्काद अलग अलग प्रांत गिने जाते हैं।

### सभ्यता की आदि भूमि—

यह माना जाता है कि सभ्यता का विकास नदियों के तटों पर हुआ। दजला और फरात को अनेक सभ्यताओं की जन्मभूमि होने का गौरव प्राप्त है। सुमेर, अक्काद, बेबिलिया, बाबुल तथा असुर सभ्यताओं का जन्म तथा विकास इन्हीं नदियों के तट पर तथा इनके बीच की भूमि में हुआ। इनमें सबसे पुरानी सभ्यता सुमेर की समझी जाती है जो मेसोपोटामिया की ही नहीं, यूरोपियन विद्वानों तथा पुरातत्व शास्त्रियों की दृष्टि में सभ्यता की सबसे पुरानी सभ्यता मानी जाती है। उनकी दृष्टि में सभ्यता का आरम्भ बेबीलोनिया अथवा मिस्र देश में हुआ। 'जब कोई तीन हजार या चार हजार ई० पूर्व के लगभग से प्राचीन इतिहास प्रारम्भ होता है तब सभ्यता बहुत छोटे से क्षेत्र में—पश्चिमी एशिया तथा मिश्र की नदी घाटियों में—सीमित थी।' × अधिकांश विद्वान अब यह मानते हैं कि बेबीलोनिया की सुमेरी सभ्यता मिस्र की सभ्यता से भी पुरानी है और मिश्र में सभ्यता बेबीलोनिया से ही पहुँची तथा फिर मिश्र से यह सभ्यता क्रीट टापू से होती हुई यूनान में एथनी और वहाँ से रोम होती हुई समस्त यूरोप में फैली।

इस प्रकार मेसोपोटामिया अथवा बेबीलोनिया सभ्यता की आदि भूमि मानी जाती है। इस सभ्यता का कारण वे असत्य तथा महत्वपूर्ण अवशेष हैं जो उन भूमि में उत्खनन कार्य किये जाने पर भूगर्भ से प्राप्त हुए हैं। इस भूमि में उत्खनन के द्वारा अनेक प्राचीन नगरों का पता लगा है—सुमेर, एरिदू, उर, निप्पुर अगादे बाबुल, निनेवेह अदि—जिनमें कई प्राचीन सभ्यताओं के अवशेष भूमि के भीतर दबे पड़े थे। इन अवशेषों को प्रकाश में लाने का श्रेय दगलेण्ड, फ्राय, जमनी आदि के इन पुरातत्वशास्त्रियों तथा इतिहास सशोधकों को है जिन्होंने वर्षों तक अथक परिश्रम करते इन अवशेषों को भूगर्भ से बाहर निकाला। सौ वर्ष पूर्व तक कोई नहीं जानता था कि सुमेर, अक्काद तथा बाबुल की सभ्यतायें कितनी प्राचीन हैं तथा उन से ५ ई. हजार वर्ष पूर्व वहाँ का जन जीवन कितना उन्नत हो चुका था। उक्त स्थानों की खोज होने पर ही उन प्राचीन सभ्यताओं का रहस्योद्घाटन हुआ तथा उन सभ्यताओं के प्रकाश में आने के कारण इतिहास के विद्वानों

×—When ancient history begins some three or four thousand years before Christ civilisation was confined within a narrow area—the river valleys of Western Asia and Egypt—A History of Ancient World—by Hutton Webster

को सभार के इतिहास तथा सभार की सम्पत्तियों के सम्बन्ध में अपनी मान्यताओं तथा अपने विचारों में महत्वपूर्ण परिवर्तन करने पड़े। वास्तव में उक्त स्थानों के उत्खनन कार्य ने सभार के इतिहास में महान परिवर्तन कर दिये हैं।

### उत्खनन कार्य—

यूरोपीय विद्वानों की इतिहास जिज्ञासा अथवा साहसी है जिसका कारण मेसोपोटामिया की प्राचीन भूमि में उत्खनन कार्य सभार हुआ। सर्वप्रथम सन् १८५५ में श्री जे० इ० टेल्र को—जो कि बगदा में ब्रिटिश सैनिक (राजपूत) थे, ब्रिटिश गवर्नर की ओर से यह कार्य सौंपा गया कि वे मेसोपोटामिया के कुछ दक्षिणी स्थलों का निरन्तर सम्बन्ध में अनेक प्रकार की अनुश्रुतियाँ जियमान थीं, अनुसंधान करें। बगदाद के पास ही—दक्षिण की ओर परात नदी से १०-११ मील दक्षिण में कुछ पुराने टीले उभरे हुए थे जिन्हें सभार में अनेक प्रकार की कलायें प्रचलित थीं। एक टीला सबसे बड़ा था जिसे वहाँ के लोग तेल अल मुस्कर कहते थे। टेल्र ने पहले इसी टीले की खुदाई करने का निश्चय किया। इस खुदाई में प्राचीन भवनों, मंदिरों आदि के षो खण्डहर, शिलालेख तथा अन्य अवशेष प्राप्त हुए उनके द्वारा न केवल उन्हें अपना परिश्रम सफल हुआ दिखाई दिया, बरिच आगे उत्खानन-कार्य के लिए प्रोत्साहन भी मिला। इन खोजों से इस बात का पता चला कि जिस स्थान को उत्खनन में द्वारा खोज निकाला गया है वह तो वही नगर है जो प्राचीन काल में 'उर' कहलाता था तथा जिसका उल्लेख यहूदियों की धर्म पुस्तक पुस्तक बाइबल में जिसके द्वारा पश्चिमी एशिया के प्राचीन इतिहास में पड़ी सहायता मिली है 'खालिथों का उर' नाम से किया गया है। उर वह महत्वपूर्ण स्थान है जहाँ प्राचीन सुमेरी लोगों की मुख्य मस्ती थी जो बाद में बाल्टी लोगों की भी एक मुख्य नस्ली बनी तथा जो यहूदियों के आदि पुत्र इब्राम इब्राहिम का निवास स्थान थी। उर के लोगों ने इब्राहिम को उर छोड़ने के लिये विवश किया था तथा वहाँ से निष्काशित के बाद उन्हें बहुत वर्षों तक इधर उधर मटकने के परात्प पश्चिमो एशिया में कर्मान प्रदेश में अपना घर बनाया पड़ा था। उर का विशेष महत्त्व इस कारण था कि उससे सभार की सर्व प्राचीन मानी जाने वाली सम्पत्त सुमेरी सम्पत्त पर पर्याप्त प्रकाश पड़ा।

परात्प १६ वीं शताब्दी के आरंभ में एक प्राचीनी नगर ने उर नामक (समाप्त) स्थान की खुदाई की। इनके सुमेर की प्राचीन सम्पत्त पर और अधिक प्रकाश पड़ा। १६१८ में मेसोपोटामिया में स्थित एक अनेक शैलिक अपिकारी भी केवल मानव ने परिदू नामक एक अन्य प्राचीन स्थान की खुदाई करवाई। यह स्थान उर के दक्षिण-

पश्चिम में था तथा बड़ा पवित्र माना जाता था। सुमेरी लोगों का विश्वास था कि एरिदू पृथ्वी पर सबसे पुराना नगर था। इन स्थानों की खुदाई में प्राप्त सभ्यता के कारण आगे तो ब्रिटिश ग्युजियम की ओर से उत्खनन कार्य नियमित रूप से प्रारम्भ कर दिया गया तथा चर, एरिदू आदि के अतिरिक्त अल उवैद तथा कुठ अ यछाटे स्थानों पर भी काय किया गया।

इनमें उर स्थान की खुदाई सबसे अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हुई। वहाँ घरों में खाना पकाने की कई प्रकार के बर्तन, पत्थर के बिकने औजार, पुराने महलों और मंदिरों के खण्डहर, शिलालेख, नामों से अंकित इट्टे आदि अनेक महत्व की वस्तुएँ प्राप्त हुईं। इन वस्तुओं से पता चला कि उर नगर की बस्ती काफी बड़ी थी तथा वहाँ पर आबादी दीर्घ काल तक रही। उर के पुराने राजाओं, राजवशों, उनकी विजय पराजयों, राजधानियों आदि-आदि का भी ज्ञान हुआ जिससे उर के इतिहास का तथा सुमेर की प्राचीन सभ्यता का रूप बहुत कुछ स्पष्ट हुआ। इसी सामग्री के आधार पर यूरोपीय विद्वानों ने यह मत स्थिर किया कि सभ्यता का उदय इसी दजला-नरात की घाटी में हुआ तथा यहीं सभ्यता की सबसे प्राचीन सभ्यता है जो अब से लगभग ६ हजार वर्ष तथा ईसवी सन् से चार हजार वर्ष पुरानी है।

उर भूमि के खोदने पर नगर के बाहर भूमि के नीचे बहुत सी कब्रें भी मिलीं। १६०६ में इन कब्रों और कब्रों के नीचे की भूमि की जो खुदाई की गई उसमें कब्रों के नीचे की मिट्टी की तह में मिट्टी की कुछ पट्टियों पर कुछ लिखावट मिली। यह लिखावट ३०००-६००० ई० पू० की अनुमानित की गई है। यहीं कुछ पक्की इट्टे भी मिलीं जिनसे यह प्रमाणित हुआ कि उर में पक्की इट्टे के भवन बनते थे तथा वह सुसभ्य तथा समृद्ध लोगों का नगर था। विभिन्न स्तरों में प्राप्त हुए वस्तुओं से अनुमान किया गया है कि यह नगर दो द्वाड़ हजार वर्ष तक कायम रहा होगा। ये इट्टे भी लगभग ३ हजार वर्ष ६००० ई० पू० की अनुमानित की गई हैं। कुछ भवनों की बनावट से ऐसा अनुमान होता है कि उनकी नींव में तथा उनके निचले भाग में पक्की इट्टे लगा दी जाती थी तथा ऊपरी भाग में कच्ची। गरीबों की कब्रों के शवों के साथ मिट्टी के थोड़े से बर्तन भी गाड़ दिये जाते थे तथा अमीरों और राजपश के लोगों की कब्रों में सने के तथा अन्य प्रकार के हथियार, लकड़ी की वस्तुएँ तथा अन्य अनेक प्रकार की वस्तुएँ भी गाड़ी जाती थीं। कुछ कब्रें उर के प्रथम राजपश की जो ३१००-६००० ई० पू० लगभग हुए, हैं तथा कुछ उनसे पूर्व की भी हैं। इन कब्रों में प्राप्त हुए बहुत-सी वस्तुएँ कलापूर्ण भी हैं। कुछ कब्रों में फान की बालियाँ तथा नाम की बेलनाकर मुररें (नाम अंकित करने की) भी प्राप्त हुई। इन प्रकार भूगर्भ के भीतर से इतनी प्रचुर सामग्री प्राप्त हुई कि उसके आधार पर सुमेर के इतिहास तथा सभ्यता पर पर्याप्त प्रकाश पड़ा।

### सुमेर का इतिहास—

(१) सुमेर लोगों का आगमन—जहाँ तक पता लगा है 'सिनाइ' प्रदेश के सबसे पुराने निवासी सुमेरी लोग ही थे, परन्तु यह भी पता लगता है कि ये लोग उक्त प्रदेश के मूल निवासी न थे। अनुमान है कि ये सुमेरी लोग किसी अन्य देश से, पूर्वी और उत्तरी पर्वतों की घाटियों में होकर या समुद्री मार्ग से इस प्रदेश में ४००० ई० पू० के लगभग आये थे। सुमेरी लोगों के यहाँ आकर बसने से पूरा यहाँ के मूल निवासी जगली तथा असभ्य थे जिनके मिट्टी के चित्रित बर्तन तथा परधरके औजार मिले हैं। सुमेरी लोगों ने इस देश में आकर अपनी बस्तियाँ बसा लीं और वहाँ के पुराने लोगों के साथ—जो सामी जाति के थे—गहने लगे और रोती चारी करने लगे। सुमेरी लोगों ने यहाँ अपनी कई बस्तियाँ बसाई जा एक दूसरी से स्वतन्त्र थीं अर्थात् प्रत्येक बस्ती का एक अलग राजा होता था और एक अलग देवता। एक सुमेरी कहानी के अनुसार पहली बस्ती दिलमन थी जो देवता एनी द्वारा बसाई गई थी। यह एकी देवता सुमेरी सभ्यता का संस्थापक माना जाता है। यह एरिदू नगर का मुख्य देवता था। एरिदू नगर फारस की खाड़ी पर स्थित था। कुछ लोग एरिदू को प्रथम सुमेरी नगर मानते हैं।

सुमेरी लोगों की मुख्य बस्ती उर नामक नगर में थी। उनके आने के पूर्व भी यह पसनी बनी हुई थी परन्तु वह एक गाँव जैसी थी जहाँ उस प्रदेश के पुराने निवासी रहते थे। सुमेरी लोगों ने वहाँ पक्की इटों के मकान बनवाकर और पक्की सड़कियाँ में बसकर उसे एक नगर बना दिया। उन्होंने नगर की रक्षा के लिये उसका चारों ओर एक मजबूत दीवार भी बनवाई। यह बस्ती एक पहाड़ी पर बनी हुई थी। वहाँ के पुराने निवासियों ने अपनी मिट्टी की भाँपड़ियाँ पहाड़ी के निचले ढालों पर तथा मैदानों में बना लीं और वहाँ खेती-चारी करने लगे।

ये सुमेरी लोग किस जाति के थे तथा वहाँ से आये इस सम्बन्ध में यूरोपीय विद्वान अभी तक निश्चय नहीं कर सके हैं। श्री लिपोजाइ ब्लो जिन्होंने उर के उत्खनन में प्रमुख भाग लिया था (जिनका स्वर्गावास हाल ही में अप्रैल १९६० में हो गया) इतना ही कहते हैं कि ये लोग वहाँ से आये थे, यह हम लोग नहीं जानते ×

× Then at a date which we cannot fix people of a new race made their way into the Valley coming whence we do not know and settled down side by side with the old inhabitants. These were the Sumerians—Ur of Chaldees by Leonard Wooley



उर तथा अन्य स्थानों पर जिन कबरों का पता लगा है उनमें पुरानी कबरों ३५०० से ३२०० इ० पू० तक की अनुमानित की गयी हैं। यह काल उन कबरों में प्राप्त सामग्री के आधार पर निर्धारित किया गया है। इसी के आधार पर यह अनुमान किया गया है कि सुमेरी सभ्यता इसमें कई शताब्दी पूर्व की होना चाहिये तथा इसी आधार पर यह भी निश्चय किया गया है कि सुमेरी लोग इस भूमि में लगभग ४००० वष पूर्व आकर बसे होंगे।

इन खोजों तथा निष्कर्षों से उन लोगों का अनुमान गलत सिद्ध हो गया है जो मिस्र की सभ्यता को सभ्यता की सबसे पुरानी सभ्यता मानते हैं और यह कहते हैं कि मिस्र ही वह केंद्र स्थल है जहाँ से सभ्यता का प्रकाश सभ्यता के चारों ओर फैला। इसके विपरीत यह माना जाने लगा कि सुमेरी सभ्यता से ही बेबीलोन, असर, मिस्र, फिनीशिया आदि ने प्रकाश पाया। अब ३००० इ० पू० में अथवा इससे पूर्व सुमेरी सभ्यता उत्पत्ति पर भी तब मिस्र अनेक छूटे छोटे राज्यों में बँटा हुआ था जिनमें आपसी झगड़े चलते रहते थे।

सुमेरी लोगों का विश्वास था कि उत्तरे देश में एक बड़ी बाढ़ किसी समय आयी थी, परन्तु उनका यह भी विश्वास था कि बाढ़ से पूर्व भी सुमेर में उनके कई राज्य स्थापित थे। वे मानते हैं कि बाढ़ से पूर्व उनके दस राजा राज्य कर चुके थे, परन्तु ये राजा कहाँ तथा कब हुए इसका कोई पता नहीं लगता। अतः इतिहासकार उहें काल्पनिक मानते हैं।

बाढ़ के पश्चात्, 'राज प्रथा पुनः स्वर्ग से उतरी'। यह भी कहा गया है कि बाढ़ के बाद प्रथम राजधानी किंग नामक स्थान पर स्थापित हुई। इस बाद एरिच, उर, अवान आदि स्थानों में राजवशों की स्थापना हुई। इनमें उर का राजवश प्रमुख था।

### (२) उर का राजवश—

१६०३ २४ में उर से ३-४ मील दूर के एक गाँव की खुदाई में बहुत पुराने खण्डहर पाये गये। इहाँ में एक भवन के खण्डहरों में एक सफेद पत्थर की पट्टिका मिली जिस पर कुछ लिखावट थी। एक लिपि विशेषज्ञ डा० गेड ने उन अक्षरों का इस प्रकार पढ़ा—उर का महाराज मेसतीपाद का पुत्र उर के महाराज अतीपाद द्वारा अपनी पत्नी निन खरसाग के हेतु यह निर्मित कराया गया। यह लेख वाला पत्थर उक्त भवन की नींव का था। इससे यह सिद्ध हुआ कि सुमेरी लोग उस समय भी भवनों की नींव में ऐसे शिलालेख लगाते थे जिनमें यह उल्लेख रहता था कि उक्त भवन किसने किस निमित्त बनवाया।

नींव के इस शिलालेख से एक महत्वपूर्ण खोज का समर्थन हुआ। सुमेरी राजाओं की जो नामावलिषाँ प्राप्त होती हैं और जो तीन हजार इ० पू० के पहले की हैं उनमें

मैसूरीवाद का नाम आता है। ये राजा दज़ल और फ़राह की तिनली घाटियोंके शासक थे। इन नामावलिओं में बाद के राजाओं का समर्थन तो उनके नाम के कई स्मारकों से हो गया था और यह सिद्ध हो गया था कि ये नाम नैतिक नहीं ऐतिहासिक हैं। किन्तु पूर्ववर्ती राजाओं के समर्थन में काँ ठोस आधार नहीं मिल रहा था। अतः इतिहासकार उन नामों की सत्यता में सन्देह करते थे—निरीपकर इस कारण कि उन राजाओं की आयु का जो उल्लेख किया गया था वह प्रायः बहुत लम्बा था। किन्तु उक्त नींव के शिलालेख ने उक्त समस्त राजाओं का समाधान कर दिया और उन समस्त नामों को सत्य मानने का आधार प्रदान कर दिया।

मैसूरीवाद उर के प्रथम राजवंश का स्थापक था और मुमेर की प्राचीन वंश-वलिओं में उसका राज्य काल ८० वर्ष का बताया गया था। इसी कारण इतिहासकार लोग उससे अस्मित में आना करते थे, परन्तु उसका नाम का शिवालय मिल जाने के कारण अब वे उसके राज्य काल का भी सत्य मानते हैं तथा मुमेर की प्राचीन वंश-वलिओं में उल्लिखित नामों को भी सत्य मानते हैं। उन वंश-वलिओं ने आधार पर यह भी सिद्ध लगाया गया है कि उक्त भवन जिससे उक्त शिलालेख प्राप्त हुआ ३१०० ई० पू० के लगभग बना होगा। उस समय की प्राप्त वस्तुओं के आधार पर ही उस समय की समाज व्यवस्था तथा कला आदि पर भी काफी प्रकाश पड़ा। इसी प्रकार उसमें पूज की वस्तुओं के आधार पर पूर्ववर्ती सभ्यता तथा नया विपुलता का अनुमान किया गया। इस प्रकार उक्त एक ही शिलालेख के आधार पर उस समय की सभ्यता पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ा।

यह भी अनुमान लगाया गया है कि जिग इमारत में उक्त शिलालेख प्राप्त हुआ वह मेसोपोटामिया की सबसे पुरानी इमारत रही होगी तथा सहर की भी सबसे पुराने इमारतों में से एक होगी। उर के इस प्रथम राजवंश के—जो मुमेर का तृतीय राजवंश माना जाता है—अधिक भवन तथा अन्य स्मारक प्राप्त नहीं होते। ऐसा अनुमान किया गया है कि इस वंश का अन्त एकाएक हो गया तथा मुमेर का शासन किसी दूसरे वंश के हाथ में चला गया तभी से उर की प्रधानता भी कम हो गई।

अनुमान है कि उर के राजवंश की समाप्ति के पश्चात् कुछ समय तक इस क्षेत्र में अनजाना रही। पश्चात् एरिज राज्य की प्रधानता मिली और राजा एगाल रागिबी गद्दी पर बैठा। यह बड़ा प्रतापी राजा था जिसने अपने राज्य का विस्तार नूनन-सागर तक कर दिया था। इसका समय २७५५ ई० पू० समझा जाता है। फिर लागस राजा को प्रधानता मिली और यहाँ का राजा अन्तेनैना उर का भी अधिपति बन गया। अन्तेनैना की एक बिना गिर की मूर्ति प्राप्त हुई है। इसका काल २७०० ई० पू० के लगभग समझा

## (३) अक्काद का प्रभुत्व सारगौन—

उर के प्रथम राजवंश की समाप्ति के पश्चात् कुछ समय तक सुमेरु में अवस्था रही तथा कई छोटे-छोटे राजा प्रभुत्व के लिये लड़ते-झगड़ते रहे। अन्तमें उत्तरी भाग के एक योद्धा ने जिसका नाम सारगौन था सुमेरु की भूमि पर आक्रमण कर दिया और वहाँ अपना अधिकार कर लिया। सुमेरु पर एक बाहरी राजा का आधिपत्य हो गया।

कहा जाता है कि यह सारगौन एक माली का पुत्र था तथा किश नामक नगर का निवासी था। वह सामी जाति का तथा सामी भाषा भाषी था। ये सामी लोग इस क्षेत्र में विशेषकर उत्तरी भाग में बसे हुए थे तथा इस क्षेत्र के मूल निवासी माने जाते हैं। कोई कोई इतिहासकार सामी जाति के लोगों का मूल-स्थान अरब को मानते हैं।

सारगौन वीर तथा मद्दुवाकाशी था। पहले उसने अरने यहाँ के—किश के—सुमेरी राजा के विरुद्ध विद्रोह खड़ा कर दिया तथा सफलता प्राप्त की। किश उसने अपनी राजधानी किश में न रखी, उसने राजधानी अक्काद या अगादे नगर में स्थापित की जो उत्तरी मेसोपोटामिया में था। अत्र उत्तरी मेसोपोटामिया में अक्काद एक प्रघात नगर बन गया और इस नगर के कारण उत्तरी मेसोपोटामिया का नाम भी अक्काद पड़ गया। वहाँ की भाषा अक्कादी कही जाने लगी।

सारगौन ने उत्तरी मेसोपोटामिया तथा किश पर अधिकार करने के बाद प्रायः समस्त दक्षिणी भाग पर भी—सुमेरु आदि पर—अधिकार कर लिया और तब से वह 'सुमेरु और अक्काद का राजा' कहा जाने लगा तथा मेसोपोटामिया का नाम 'सुमेरु और अक्काद का राज्य' हो गया। सुमेरु पर अक्काद का ही अब प्रभुत्व था।

सारगौन बड़ा बलवान राजा हुआ। उसने शाम तथा फिलिस्तीन को भी जीत लिया तथा इस प्रकार भूमध्यसागर तक अपने राज्य का विस्तार कर लिया। फिर उसने एलाम, मीडिया और लघु एशिया तक भी अपना राज्य बढ़ा लिया। इसी कारण इतिहासकार उसे प्रथम विश्व-विजेता मानते हैं और उसके राज्य को एशिया का तथा मसारा का भी प्रथम साम्राज्य मानते हैं। सारगौन का काल २६३०-२५७५ ई० पू० माना जाता है।

सारगौन के शासन-काल की एक बड़ी विशेषता यह है कि यद्यपि उसने सुमेरी राजाओं को हराकर समस्त सुमेरु पर अपना अधिकार कर लिया, फिर भी उसने सुमेरी सभ्यता का अपना लिया। इसका कारण यही है कि उस समय की सामी सभ्यतासे सुमेरी सभ्यता काफी ऊँची थी जिससे सारगौन जैसा विजैता भी प्रभावित हुए बिना न रहा। उसने सुमेरी लिपि भी अपना ली तथा उसमें राज्य का नाम-काज होने लगा। वह सुमेरी प्रथाओं भी उसने स्वीकार कर ली। इसी कारण उसका शासन सुमेरी लोगों को विदेशी

बेसा न जान पड़ता था तथा सुमेरी लोग उसके शासन में शांतिपूर्वक रहे। फिर उसने समस्त सुमेरी नगर राज्यों को मिलाकर एक कर दिया।

सारगोन एक महान शासक था, उसके पुत्र का वंश नाम था पता नहीं चलता। किंतु उसके पौत्र नरमसिन का नाम प्रसिद्ध है। वह भी एक खूबन राजा था जिसने सारगोन के विद्याल राज्‍य को कायम रखा। उसने सुमेरी लिपि जो अक्कादियों द्वारा स्वीकार कर ली गई थी शाम आदि अपने साम्राज्य के देशों में भी प्रचलित की।<sup>७</sup>

### (४) उर का तृतीय राजवंश—

किंतु जान पड़ता है सारगोन और नरमसिन के पश्चात् अक्कादी राजवंश अधिक दिन न चला। सुमेरियों के लिये आरिष वह एक विशेष शासन ही था। शासन कमजोर होते ही सुमेर में उसकी प्रतिस्पर्धा लितामी दी। दक्षिण के लोगों ने अक्कादी शासन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया तथा शीघ्र ही उसे हटाकर पुन स्वतंत्रता प्राप्त कर ली। विद्रोह का नेतृत्व उर के लोगों ने ही किया था। अत उर में पुन एक सुमेरी राजवंश की स्थापना हुई। यह उर का तृतीय राजवंश कहलाता है। इस तृतीय राजवंश का संस्थापक उर नम्मू था जिसका नाम उर सेंगुर भी मिलता है। उर नम्मू स्वतंत्र राजा था तथा उसने अपने राज्य का काफी विस्तार किया। उर नम्मू अनेक शमारक समस्त मेसोपोटामिया में बिगरे मिलते हैं। उसने जो दान-भेंट आदि चढ़ाए वह मुख्यत उर के नगर देवता नगर के नाम पर चढ़ाए थी। उर के मुख्य देवता नानारही थे तथा इनकी एक पत्नी भी मानी जाती थी निगसा नाम लितामाल था। एक मंदिर में प्राप्त टूटे शिलालेख से जान पड़ता है कि उर नम्मू पहले एरिच के राजा की अधीनता में था। उर के प्रथम राजवंश के पूर्व एरिच ही एक प्रमुख राज्य था। किंतु उर नम्मू ने उस देश पर अपना अधिकार कर लिया तथा उर में पुन राजधानी स्थापित की। उसने उर का पुनरुद्धार भी किया। राजधानी के चारों ओर रक्षा के लिये उसने पषी स्तों की एक दीवार बनवाई। यह दीवार तो अब नष्ट हो गई है, किंतु उसकी कुछ बड़ी-बड़ी इट्टें मिली हैं जिनमें अनुमान होता है कि दीवार बड़ी मजबूत रही होगी।

उर नम्मू के बाद इस वंश के ४ अन्य राजाओं ने राज्य किया। उ होने भी अरों राज्य का काफी विस्तार किया तथा यह राज्य उत्तर में अगुर देश तक, पूरव में एलाम तक एवं पश्चिम में शाम तक फैले गया। इस प्रकार तृतीय राजवंश के शासन-काल में उर की एक बार फिर उन्नति हुई तथा उसे प्रधानता मिली। उसके बाद उर अपने प्रभुत्व के लब्ध

<sup>७</sup> Sargon and his equally fanous grandson Naramsin ruled effectively over the whole Syria to which they doubtlessly introduced the Sumerian writing that they had learnt and adopted to their Semitic language in Babylonia—Encyclopedia Britannica-Syria

काल में सबसे अधिक समृद्धि की अवस्था को इसी तीसरे राजवंश कालमें पहुँचा। यह काल २३०० अथवा २४०० ई०पू० से २१०० अथवा २१५० ई०पू० तक का समझा जाता है।

किंतु इस राजवंश के शासन काल में सुमेरी सभ्यता को अधिक प्राधायन मिल सका। अफ़ादी भाषा जो दक्षिणी भाग तक फैल गई थी चल्ती रही तथा लिपि प्रायः सुमेरी थी। इस वंश के अन्तिम राजाओं ने तो स्वयं भी अफ़ादी नाम धारण कर लिये थे जिससे कुछ लोग उन्हें सामी वंश का मानते हैं यद्यपि वास्तव में वे सुमेरी ही थे।

इसी वंश का राजा बुरसिन था ( २०२० ई० पू० के लगभग )। उसने उर स्थान पर चन्द्रदेवी का मन्दिर बनवाया जो कच्ची ईंटों का था। चन्द्रमा की पूजा वहाँ एक देवी के रूप में होती थी।

उर के तृतीय राजवंश के ५ राजाओं के बाद पूरव की ओर से एलाम ( फारस का दक्षिण पश्चिमो भाग ) के लोगों ने उर पर आक्रमण कर दिया तथा उर, नम्मू और बुरसिन के वंश का अन्त कर दिया। उर का राजा कैद करके एलाम ले जाया गया तथा वहाँ के मन्दिर और भवन सब नष्ट कर दिये गये। समृद्ध उर पर भारी सक्त् आ पड़ा और नष्ट हो गया। इस ग़र उर के सुमेरी वंशज सदा के लिये अन्त हो गया। सुमेरी राज्य तथा सभ्यता का युग भी इसी के साथ समाप्त हो गया। उर का प्रभुत्व लगभग एक हजार वर्ष के पश्चात् सदा के लिये समाप्त हो गया। यद्यपि इससे बाद भी एक बार सुमेरी लोगों ने प्रभुत्व प्राप्त करने का प्रयत्न किया तथा इसीन और लारसा के सरदारों ने उर पर पुनः कब्जा कर लिया, किंतु यह अधिक समय तक न चला। उर के दिन समाप्त हो चुके थे।

### सुमेरी सभ्यता—

सुमेर प्रदेश के उत्पन्नन में भूगर्भ से जो वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं उनसे एक ऐसे समाज का पता लगता है जो सभ्यता में काफी ऊँचा था, जिसकी सभ्यता नागरिक ढंग की थी, जिसके शिल्पकार भवन निर्माण के उन सिद्धांत को जानते थे जिनमें आज हम परिचित हैं, जिसके फारीगर धातुओं के विविध प्रकार के उपयोगों से परिचित थे तथा जिसके व्यापारी दूर-दूर के देशों से व्यापार करते थे और उनका लेखा भी रखते थे। वहाँ के लोग कृषि काय भी भलीभाँति जानते थे और इस कृषि तथा व्यापार के कारण वहाँ के लोग समृद्ध थे तथा यह समृद्धि उन्हें विलासप्रिय बना चुकी थी। इस सभ्यता की मुख्य मुख्य बातों का हम यहाँ संक्षेप में अवलोकन करेंगे।

### भवन-निर्माण—

सुमेर में ३, ३½ हजार वर्ष ई० पू० में भी भवन प्रायः पक्की ईंटों के बनते थे। ये लोग मेहराब का प्रयोग भी जानते थे। उर की कबरों में एक जो सबसे पुरानी मानी

जाती है ३५०० इ० पू० की अनुमानित की जाती है। इस कबर में महाराव तथा गुम्बज भी बने हुए मिलते हैं। उर के समीप तेल अन्न उबेद स्थान पर एक मन्दिर भी लगभग उसी काल का मिला है। इसके द्वार पर ताँबे की बनी हुई सिंहों की दो मूर्तियाँ रखी की गई थी।

लगायत स्थान पर एक महल का चतूतरा मिला है जो ४० फीट ऊँचा है (भूमि तल से)। अनुमान किया गया है कि यह चतूतरा गुटिया नामक राजा के समय का था जिसका समय २६०० इ० पू० के लगभग का अनुमान किया जाता है।\*

मन्दिरों में प्रायः एक मीनार होती थी। बाद के बाबुली लोग इसे जिगुरत कहते थे। यह मीनार प्रायः कई मजिलों की होती थी और इसमें ऊपर जाने के लिये सीढियाँ लगी होती थीं। ऐसी मीनार का सबसे अच्छा नमूना उरमें ही प्राप्त हुआ है जिसे तृतीय राजवंश के संस्थापक उर नम्मू ने बनवाया था।

उन दिनों सुमेर में यह भी नियम था कि मुख्य मुख्य इमारतों की नींव में ताँबे की छोटी-छोटी मूर्तियाँ रख देते थे। इनके साथ पत्थर की तरतियाँ भी रखी जाती थीं। ये तरतियाँ पकी हुई ईंटों की सन्दूकों में मन्दिरों की दीवारों की नींव में चारों कोनों पर रखी जाती थीं।

### सुमेरी धर्म —

इस काल के सुमेरी नगरों में एक मन्दिर अवश्य होता था—एक मन्दिर स्थानीय देवता के लिये तथा एक उस देवता की पत्नी के लिये। इन्हीं मन्दिरों में बड़े पुजारी तथा छोटे पुजारी आदि भी रहते थे या यों कहना चाहिये कि ये पुजारी ही उस नगर के राजा, राजन्याय तथा व्यापारपति आदि सब कुछ होते थे। इसी कारण इनका बड़ा प्रभाव तथा महत्व होता था। लेखक तथा अन्य पदाधिकारी भी प्रायः इन्हीं पुजारियों में से नियुक्त किये जाते थे।

सुमेर के मुख्य देवता इय, एनलिल तथा अनु ये जो क्रमशः जल, पृथ्वी तथा आकाश के देवता माने जाते थे। ये देवता यहाँ बहुत प्राचीन काल से—जहाँ तक के इतिहास का पता मिला है—माने जाते थे। एनलिल की मायाजा विशेष रूप से एरिच में थी तथा उसकी पत्नी का नाम था तिन-लिल। निगुर स्थान पर उनका मन्दिर भी था। जल देवता इम का दूसरा नाम धकी भी था। इनकी पूजा विशेष रूप से एरिदू में होती थी। इन्हीं में एक पत्नी थी जिमशा नाम दमकिया था। आकाश या स्वर्ग के देवता अनु इन सबमें प्रधान थे। इनकी भी पत्नी थी तिनका नाम अमिती था। बाद में यही देवी इन्तर नाम से सामी भाषियों की देवी बन गयी। सुमेर में सूर्य-देव की भी पूजा

\* *Encyclopedia Britannica* Vol 2 — *We tern Asiatic architecture*

होती थी जिनका नाम चक्कर था। सुमेर पर अक्काद का अधिकार हो जाने के बाद भी सुमेर की धार्मिक व्यवस्था वैसी ही रही।

### सुमेरी भाषा और लिपि—

आज की भाषा सुमेरी मानी जाती है उसका पता पिछली शताब्दी के मध्य में सर हेनरी रॉलिनसन तथा अन्य विद्वानों ने लगाया था जबकि वे अमुर राजा बनीपाल की लायत्रेगी से प्राप्त हुए पक्षी इटों की लिखावट की जाँच कर रहे थे। ये इटें निनवाह नामक नगर के खण्डहरों में श्री लयट को प्राप्त हुए थे और वे उ हैं प्रिटिश म्यूजियम में रखने के लिये ले आये थे। यह भाषा असीरिया की सामी भाषा से बिल्कुल भिन्न है और कालदार लिपि में लिखी है। जान पड़ता है सुमेरी लोगों ने इसी भाग में पहले चित्रलिपि का आविष्कार किया था फिर भी यह कीलदार बन गयी। यह परिवर्तन ३५०० पू० के लगभग ही हो गया होगा। एरिच के एक पुगने राजा लगान कर्गीसी ने अपनी विजय का हाल इटों पर अंकित कराया था ऐसा पता चलता है (२८ वीं शती ई० पू०)। बाद में सामी लोगों ने इसी कीलदार लिपि को स्वीकार कर लिया तथा वह बाबुल अमुर आदि देशों में प्रचलित हो गई।

प्रारम्भ में सुमेरी-भाषा में प्रत्येक विचार के लिए एक चिह्न नियत था और ऐसे हजारों चिह्न होते थे। बाद में बाबुलवालों ने इनमें से बहुत से चिह्न अपने यहाँ ले लिये तथा धीरे धीरे कुछ अन्य परिवर्तन होते रहे।

### तिथि-पत्र—

प्राप्त चिह्नों के आधार पर ज्ञात हुआ कि सुमेर के लोग अपने यहाँ एक पचास अथवा तिथि पत्र भी रखते थे। उर के तृतीय राजवंश के काल (२३००-२१५० ई० पू०) से इस तिथि पत्र का पता चलता है। निधुर में भी इसी का प्रयोग होता था। इस तिथि पत्र के अनुसार महीने की गणना चन्द्रमा के आधार पर की जाती थी।

यूरोपीय विद्वानों का अनुमान है कि ज्योतिष का आदि स्थान सुमेर ही है तथा वे लोग ग्रहों की गति का भी ठीक ठीक पता लगा लेते थे। चन्द्रमा की घूर्णी-चढ़ती का भी वे ठीक-ठीक हिसाब रखते थे तथा चन्द्रग्रहण का भी समय बहुत पहले से हिसाब लगा कर बना देते थे ×

### राजतियम—

सुमेरी लोग किसी व्यवस्था तथा कुछ राजतियमों के अन्तर्गत चलते थे—यह स्पष्ट

१ कीलदार cuneiform

२ चित्र लिपि hieroglyphic

× The method of divination is undoubtedly of sumerian origin and led to an astonishingly accurate knowledge of astronomy—Encyclopaedia Britannica

है क्योंकि ऐसी अवस्थामें ही उनके नगरों की तथा समाज की उन्नति सम्भव थी। भूमि के क्रय-विक्रय के भी कुछ लेखे मिलते हैं। मिट्टी को कुछ पट्टिकाओं पर कुछ राज-निशम भी मुमेरो-भाषा में लिखे गिरे हैं जा २००० ई० पू० के अथवा उससे भी पूर्व के अनुमानित किये गये हैं।

### व्यापार—

इस काल में समुद्री व्यापार कान्ची तेजी से चलता था ऐसा पता लगता है। विदेशों के व्यापारी बहान प्रायः उर तथा अन्य नगरों में आया करते थे। व्यापार की वस्तुओं में तौजा तथा भवन बनाने के पत्थर का भी आयात होता था।

मुमेर में नाम की सीले अथवा मुहरें भी कान्ची सख्या में प्राप्त हुई हैं। इन मुहरों का उपयोग सम्भवतः व्यापार के लिए ही, व्यापार की वस्तुओं पर नाम अंकित करने के लिए होता होगा। ये मुहरें चौगूटी, वर्गाकार तथा वेष्णाकार भी मिलती हैं। बहुत सी मुहरें लगभग ३००० ई० पू० की अनुमानित की गई हैं।

### विरास—

मुमेर में खाद कर निकाली हुई प्रायः सभी कपड़ों में शबों व साथ गाड़ी हुई अथवा अनेक प्रकार की वस्तुएँ मिली हैं। कद रत्नाओं की कब्रों में खाने के आभूषण, पान की बालियाँ, चाकू छुरे आदि भी मिले हैं तथा उनके नाम की मुहरें भी मिली हैं। शय को दफने वाले सड़क के बाहर भोजन की वस्तुएँ तथा पानी के बर्तन मिले हैं। भोजन की वस्तुएँ मिट्टी के बर्तनों में भरकर रखी जाती थीं। खाने पीने की इन वस्तुओं से पता चलता है कि ये लोग मरगोचर जीवन में विश्वास करते थे। ये जानते थे कि मृतान्ना दूसरे लोक में अपनी यात्रा के समय खाने पीने की वस्तुओं को भी अपने साथ ले जानी है। राजाओं की मृत्यु पर मनुष्यों की भी बलि दी जाती थी बाद के काल में मुमेरी राजाओं को उनके जीवन काल में ही देवताओं का अन्तर्दत्त माना जाने लगा था। तथा मृत्यु के बाद उनकी पूजा देवताओं की मानि जाती थी।

### कुछ अन्य वस्तुएँ—

मुमेर की एक घाटी कब्र में जो पत्थर की बनी हुई है उर व ध्वज अर्थात् भँडे के भी अन्वेषण मिले हैं। इस पर एक ओर राजा तथा उसके परिवार के लोगों के चित्र हैं जो कुर्तियों पर बैठे हुए हैं। इसने नीचे की पंक्ति में मुमेरी रथ है। प्रदेश रथ दो गधों द्वारा खींचा जा रहा है तथा प्रदेश में ११ मनुष्य एक रथी तथा दूसरा सारथी बैठे हैं। रथी या वादा हाथ में धरती लिए हुए है तथा कुछ अन्य बस्तुएँ भी प्राप्त हो एक तरङ्ग में रखी हैं। मुमेरी पगति मना भी शयुओं से लड़ता हुआ दिखायी देती है।

कब्रों से मिले शार्याओं से भी यह सिद्ध होता है कि उर मन्त्र की केंचें धारण



की स्त्रियों अपने सिर को विविध प्रकार से सजाती थीं । कुछ फरों से सौंदर्य प्रसाधन की सामग्री, भोजन पर रंग लगाने की सामग्री आदि भी प्राप्त हुए हैं ।

### सुमेरी सभ्यता का भारत से सम्बन्ध—

दीर्घ कालीन उत्खनन-काय के पत्थररूप सुमेर के विभिन्न स्थानों से जो प्राचीन सामग्री प्रचुर मात्रा में प्राप्त हुई है वह निःसंदेह आश्चर्यजनक है तथा यह देख कर चकित रह जाना पड़ता है कि आज से ५,५५२ हजार वर्ष पूर्व म सुमेर के लोगों ने सभ्यता में इतनी उन्नति कर ली थी, भवननिर्माण-कला को सीख लिया था, घातुओं का प्रयोग जान लिया था तथा लिपि-पत्र का एवं लिपि का भी आविष्कार कर लिया था । इसी आधार पर यूरोपीय विद्वानों ने—सि हैं उक्त उत्खनन काय का श्रेय प्राप्त है यह स्थिर किया है कि सभ्यता की सबसे प्राचीन सभ्यता सुमेरी ही है तथा वहीं से सभ्यता का प्रकाश मिस्र, यूनान तथा अन्य देशों में फैला ।

यूरोपीय विद्वानों की दृष्टि में भारत म सभ्यता का प्रकाश बहुत बाद में आया । आज भी अधिकांश विद्वानों की—निर्णय बहुत से भारतीय विद्वान तथा इतिहासकार भी समिलित हैं—यही मान्यता है कि भारत म सभ्यता का प्रसार आय लोगों के द्वारा हुआ और ये आर्य लोग इस्वी सन् से डेढ़-दो हजार वर्ष पूर्व किसी बाहर के देश से आये थे । इस प्रकार भारतीय सभ्यता हजार बारह सौ वर्ष से अधिक की नहीं है । इस शताब्दी के पूर्वार्द्ध में मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा आदि स्थानों के उत्खनन से सि धु सभ्यता का जो उद्घाटन हुआ उसके कारण के यह मानने के लिये तो बाध्य हुए कि इसी सन् से दान तीन हजार वर्ष पूर्व भी—क्योंकि सि धु सभ्यता का यही काल निर्धारित किया गया है—भारत में कोई सभ्यता विद्यमान थी तथा वह एक उच्चकोटि की विकसित नगरी सभ्यता थी । परंतु उनका अनुमान यह है कि यह सि धु सभ्यता या तो द्रविड़ लोगों की है क्योंकि आय लोग उस समय तक भारत में नहीं आये थे या फिर बाहर के आये हुए किहीं लोगों की है । सि धु पाटी तथा सुमेर के उत्खनन से प्राप्त वस्तुओं में जो आश्चर्यजनक साम्य दिखायी देता है उसके कारण कुछ लोगों का यह भी अनुमान है कि शायद सुमेरी लोग ही भारत की सि धु घाटी म आये हों अथवा आयों की कोई टोली यूरोप तथा पश्चिमी एशिया से चलकर भारत आइ ह । परंतु इन अनुमानों के कोई ठोस आधार नहीं हैं । ये अधिकतर कल्पनाओं पर ही आधारित हैं । इसके विपरीत ऐसे प्रमाण प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि सुमेरी सभ्यता पर भारत का प्रभाव ही नहीं था, बल्कि सुमेर में उक्त सभ्यता का प्रसार कराने वाले लोग भारत के ही मूल निवासी थे । ये विभिन्न कारणों से भारत से बाहर गये तथा अपनी विकसित सभ्यता अपने साथ लते गये जिसका इन्होंने उन देशों में प्रसार किया तथा अन्य सभ्यताओं को प्रभावित किया ।

सुमेर के इतिहासमें सबसे पहले जो बात हमें आकर्षित करती है वह है वहाँ के नगरों, वहाँ के राजाओं तथा वहाँ के देवताओं के नामों से भारतीय नामों की साम्यता। सुमेर नाम ही विशुद्ध भारतीय दिख ही देता है। फिर उर, निप्पुर आदि नगर, अनीपाद, मैस नीपात्, अतेमैना आदि राजा तथा अनु, इद्र आदि देवता भारतीय भाषा से ही उद्भूत जान पड़ते हैं। यदि हम भारतीय पुराणों पर दृष्टि डालें तो 'सुमेर' अथवा 'मेरु' का वगन अनेक स्थानों पर मिलता है।\* चापुप मनु के पुराणों में 'उर' तथा 'पुर' के नाम गिनाये गये हैं।† 'निप्पुर' का 'पुर' शब्द तो शुद्ध भारतीय है ही जो ऋग्वेद से लेकर आज तक प्रचलित है। राजाओं में कल्याणपाद का नाम भी पुराणों में है। इसी प्रकार चंद्रवश ने राजा ययाति की पत्नी शर्मिष्ठा के तीन पुत्रों के नाम अनु, द्रुहपु तथा पुरु प्रताये गये हैं। बाद में आर्यों की तीन प्रधान जातियाँ भी इन्हीं नामों से प्रख्यात हुईं। यह भी उल्लेख मिलता है कि द्रुहपु के वंशधर भारत के बाहर श्लेष्ठ देशों में फैले। 'इय' अथवा 'प' नामक देवता ऋग्वेद का 'यद्' अथवा 'प' देवता जान पड़ता है।‡



सुमेर के विश्वामन (विष्णु ?) नामक चित्र

श्री संपूर्णानंद लिखित 'आर्यों व आर्य देश' से

युद्ध अथ दरनाओं में भी साम्य दिखाई देता है। श्री संपूर्णानंद जी ने बताया है—इस देव (यद्) की जो मूर्तियाँ सुमेर में मिलती हैं, उनमें आधा शरीर मनुष्य का

है, आधा मछली का या आगे का भाग मनुष्य का, पीठ मछली की। कुछ लोगों का यह अनुमान है कि यह 'पि-इ ए शन' त्रिष्णु का ही रूपांतर है। यह भी याद रखना चाहिये कि त्रिष्णु सूर्य का नाम है और त्रिष्णु का पहला अवतार आधा मनुष्य का आधा मछली के रूप में हुआ था ( आयौञ्ज आदिदेश—पृष्ठ २२० २१ )

### आचार, विचार तथा विश्वास—

सुमेरी लोगों के बहुत से आचार, विचार तथा विश्वास भी प्राचीन भारत के आचार विचारों तथा विश्वासों से मिलते जुलते पाये जाते हैं। सुमेरी लोगों का विश्वास था कि भूमि का स्वामी तो ईश्वर है किंतु भूमिपर उसका प्रतिनिधित्व राजा ही करता है। यह माना जाता था कि राजाओं को देवी-शक्ति प्राप्त होती है। इसी कारण सुमेर में राजा का बड़ा मान था तथा पश्चात्काल में तो राजाओं को जीवन काल में ही देवतुल्य माना जाता था। यह मान्यता भी भारतीय विश्वासों से अधिक भिन्न नहीं है। राजा को ईश्वर अथवा ईश्वरीय अंश मानने की परम्परा भारत में अति प्राचीन काल से है। मत्स्य-पुराण में कहा गया है कि ब्रह्मणे दण्ड की व्यवस्थाके लिए तथा सभी प्राणधारियों की रक्षा के लिये ही सभी देवताओं के अंशों को लेकर राजा की रचना की है। ऋग्वेद में भी अनेक स्थानों पर राजा का वगन इस रूप में किया गया है।

सुमेर वालों का जल प्रलय सम्बन्धी विश्वास भी भारतीय विश्वास से मिलता जुलता है। पुराणों में जिस प्रकार जल प्रलय का वर्णन है, तथा उसके पश्चात् सृष्टि की पुन उत्पत्ति बताई गई है उसी प्रकार की कथा सुमेर में भी प्रचलित थी। अर्थात् किसी समय प्रलयकर बाढ़ आदि जिससे उनका देश नष्ट हो गया था राज प्रथा पुनः स्वर्ग से उतरी।

ॐ मत्स्य पुराण अध्याय १३, वायु पुराण अध्याय ३४।

१—मत्स्य पुराण अध्याय ४

२—ऋग्वेद—१-११२-१४, १ १०३ ३, ६ २०-१०, ६ ३१ ४ आदि

३—सम्मेलन में पत्रिका २०८८ भी चतुरसैन शास्त्री

४—मत्स्य पुराण अध्याय २३६, १ २

५—मत्स्य पुराण अध्याय १ जल प्रलय की कथा

6 Then came the flood and after the flood kingship again descended from Heaven

of chaldees Leonard Woolley

यहूदियों की धर्म पुस्तक 'पुरानी बाइबल' (अ ल्ड टेस्टामेन्ट) में भी जल प्रलय की कथा बनाई गई है। ऐसा माना जाता है कि बाइबल में इस कथा का आधार सुमेरी लोगों की ही अनुश्रुति थी जिसका उल्लेख सुमेरमें ३००० ०००० से भी पूर्व का मिलता है जबकि पुरानी बाइबिल इस काल में कई सौ वर्ष बाद की रचना मानी जाती है।

सुमेर में अनेक स्थानों पर ऐसे भी चिह्न मिले हैं जिनसे ज्ञात होता है कि मृतकों के दाह-संस्कार की प्रथा भी वहाँ प्रचलित थी यद्यपि अधिकतर मृतकों को गाढ़ा जाता था।<sup>२</sup> सारगौन के समय से पूर्व तो दाह की प्रथा ही अधिक प्रचलित थी।

बहुन-सी कब्रों में ऐसे ताबीज मिले हैं जिनमें मेढक आदि की आकृतियों के अतिरिक्त बंदर की भी आकृतियाँ बनी हुई हैं। विद्वानों का अनुमान है कि बंदर सुमेर का मूल प्राणी नहीं है यह वहाँ भारत अथवा मिस्र से ही आया होगा।<sup>३</sup> इसके अतिरिक्त नदियों के रेत के नीचे दो नग हरे रंग के रत्न प्राप्त हुए हैं जिसका सबसे निश्चय का उत्पत्ति स्थान भारत का नीलिगिरि पर्वत माना जाता है।<sup>४</sup> इन बातों से कम से कम इतना स्पष्ट है कि उन दिनों में भी मैसेपोटामिया के साथ भारत का व्यापार होता था तथा जो देश दूर दूर के देशों से व्यापार कर रहा हो वह असम्भ्य दशा में नहीं हो सकता।

### रथ और घोड़े—

एक अन्य आधार पर भी प्राचीन भारत तथा सुमेर में सम्पर्क सिद्ध होता है। ऊपर बताया गया है कि एक शाही कब्र में उर में भण्डे के जो अवशेष प्राप्त हुए उस पर रथ के भी चित्र बने हुए थे। ये रथ सुमेर की सेना के हैं तथा प्रत्येक रथ में एक सशस्त्र रथी तथा एक सारथी बैग दिखाया गया है। हमसे स्पष्ट है कि सुमेर की सेना में रथों का भी उपयोग होने लगा था।

1 *Ur of Chaldea*—Leonard Wooley p 18

2 *Extensive remains of cremation have been found in all the pre Sargonic periods in the earlier graves of Ur*—*Encyclopedia Britannica*

3 *An important feature is the appearance of the monkey among other animals in the shape of rams and frogs. The monkey was not a native to this country and must have been known by importation from elsewhere.*

*Egypt or India*—*Encyclopedia Britannica* Vol I Babylon.

4 *Digging up the Past*—Leonard Wooley p 107

“सुमेरी लोगों का यह भी विश्वास था कि उनके पूर्वज जो कि पारस की ओर से सुमेर में आये जहाजों में बैठकर आये थे तथा पारस की खाड़ी होकर आये थे। उन्होंने यहाँ आकर जो पहली नक्ती बसाई उसका नाम दिलमन था तथा यह एकी देवता द्वारा बसाई गयी थी। यहाँ एकी देवता सुमेरी सभ्यता का स्थापक माना जाता है। यह एरिदू नगर का जो पृथक् सुमेरी नगर कहा जाता है - न मुर्य देवता था। एरिदू नगर पारस की खाड़ी पर स्थित था। दिलमन भी यहाँ पारस की खाड़ी पर स्थित रहा होगा। इस प्रकार स्वयं सुमेरी लोग ही अपनी सभ्यता के आरम्भ का सम्बन्ध पारस की खाड़ी से तथा ऐसे लोगों से जोड़ते हैं जो जहाजों में बैठकर वहाँ आये थे।”

अंग्रेजी के प्रामाणिक म दर्भ ग्र य एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में भी यह माना गया है कि सुमेर व लोग फगत नदी व पूर्व से आये थे।

द्वितीय व कुछ इतिहासकारों ने भी इस मत का समर्थन किया है। डा० सत्यनारायण दत्त सम्बन्ध म लिखते हैं।

“द्वारा की सबसे प्राचीन सभ्यता अक्काद और सुमेर की थी। वहाँ से प्राप्त मूर्तियों का अध्ययन कर बहुत से विद्वान इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि सुमेरियन लोग सम्भवतः भारत से ही वहाँ गये थे और वहाँ पहुँचने के पहले ही यह मत सुमेरियनों की अनुश्रुतियों का समर्थन करता है।

डा० सत्यनारायण आगे लिखते हैं “सुमेर व बाद चाल्डिया और बेबीलोनियों के उत्कर्ष के समय भी वहाँ के लोगों का भारत में व्यापारिक सम्बन्ध था इसका प्रमाण

1 Dilmun was the first settlement that was made by the God Enki who was the founder of Sumerian Civilization He was the God of the first Sumerian City Eridu situated on what was then the head of Persian Gulf Enki is said to have come from Persian Gulf and to have taught the Sumerians their civilization He presumably also arrived in a ship Thus the Sumerians themselves closely associate the origin of their civilization with Persian Gulf perhaps with men who came in ships —The Growth of Civilization W J Perry p 60

2 The period of their entry into the valleys of Tigris & Euphrates is still beyond the scope of exact historical research but great cities and cults were already in existence before 3500 B C and that is quite clear evidence that they moved into the area from the eastern side of the Euphrates—Encyc Brit

३. हमारा देश—सत्यनारायण पृ० ६६

मिलते हैं। वहाँ के ६ हजार वर्ष पुराने सख्खर में साल की लकड़ी का एक टुकड़ा मिला है जो भारतीय ही हो सकता है। यह भी पता लगता है कि सुमेर और अज्जद के लोग जो वस्त्र काम में लाते थे वह 'सिंधु' कलाता था। यह उस बात का प्रमाण है कि भारतीय वस्त्र उस काल में भी सुमेर और कोल्डिया तक पहुँच चुका था तथा यह वस्त्र वहाँ सिंधु घाटी से ही पहुँचता था।

श्री हाल १ तथा श्री पाकोक २ जैसे यूरोपीय विद्वानों का भी यही मत है कि सुमेरी सभ्यता व जन्मदाता भारत के ही लोग थे। श्री पी० टी० श्री निवास आयगर ने भी इसी मत का समर्थन किया है। 'तमिल साहित्य और सस्कृति' में श्री अवध नन्दन लिखते हैं—'डा० चटर्जी ने इस मतका समर्थन करते हुए लिखा है कि यदि सुमेर की सभ्यता के सम्बन्ध में डा० हाल ने विचार प्रामाणिक माने जाय तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि सभ्यता का आरम्भ सर्व प्रथम भारतमें हुआ और द्रविड़ जातियों के द्वारा हुआ। यहाँ से वह मेसोपोटामिया पहुँची और वहाँ पहुँचकर वेसीलोन की तथा अन्य प्राचीन सस्कृतियों की जन्मदात्री बनी जो वर्तमान सभ्यताओं की जननी मानी जाती है। ३

### सुमेरी आर्य जाति के थे—

एक अन्य वैज्ञानिक तथा विद्वत्सनीय आधार पर भी इस मत का समर्थन होता है कि सुमेरी लोग आर्य-जाति के ही थे। उर में अनुसंधान करने वाले श्री लिपोनार्ड वूली का कथन है।

'हम यह निश्चित रूप से नहीं जानते कि सुमेरियन कौन हैं। परम्परा के अनुसार वे पूर्व से आये। उनकी हड्डियों तथा खाण्डियों का जा अनुसंधान किया गया उससे पता लगता है कि वे मनुष्य-जाति के दूरे यूरोपियन वंश की ही एक शाखा थे। ४ यह 'इण्डो यूरोपियन' आर्य-जाति का ही यूरोपियन विद्वानों द्वारा रखा हुआ नाम है।

इस प्रकार नामों में सादृश्य, आचार विचार तथा विन्यास, यहूदियों की प्राचीन धर्म पुस्तक 'पुरानी बाइबल' के उल्लेख, सुमेरी अनुश्रुतियों एवं परम्पराओं, यूरोपीय अनुसंधानकर्ताओं तथा इतिहासकारों की खोजों तथा हड्डियों और खाण्डियों की वैज्ञानिक जाँच इन सभी प्रमाणों से यही सिद्ध होता है कि सुमेरी सभ्यता का यूरोपीय इतिहास-

1 *Ancient History of Near East* 2 *India in Greece* by Pocock

३ तमिल साहित्य और सस्कृति अवधनन्दन पृ० २६

4 *We do not quite know who the Sumerians are Tradition would make them come from the East The study of their bones and skulls shows that they were a branch of Indo-European stock of the human race.*

*Ur of the Chaldees—Chapter II p 81*

कारों की दृष्टि में सगर की सबसे प्राचीन तथा उच्चकोटि की सभ्यता है—भारत के निवासियों द्वारा ही सुमेर में पहुँचकर स्थापित की गयी थी।

ये भारतीय जन कौन थे तथा वे किस कारण भारत से बाहर गये इस पर 'भारत की प्राचीन सभ्यता' तथा अन्य अध्यायों में विस्तार पूर्वक विचार किया गया है। संक्षेप में यहाँ इतना ही कहा जा सकता है कि सुमेरी सभ्यता से पूर्व ही भारतीय सभ्यता विकास की उच्च सीमा को पहुँच गयी थी। किंतु भारत के कुछ दलों को—जो अन्य लोगों से धार्मिक तथा अन्य प्रकार के मतभेद रखते थे—परस्पर सघर्ष व कारण तथा सघर्ष में पराजय के कारण भारत छोड़कर अन्य देशों में आश्रय लेना पड़ा। यह भी सम्भव है कि कुछ लोग व्यापार तथा अन्य कारणों से भी पश्चिम की ओर के देशों में गये हों। किन्तु यह निश्चित है कि भारत के लोग ही प्राचीन काल में मेसोपोटामिया के दक्षिणी भाग में जाकर बसे थे तथा उन्होंने अपनी इस नस्ती का नाम सुमेर रखा था। उनकी सभ्यता वहाँ ऊँचा मूल निवासियों से काफी ऊँची थी। अतः सभ्यता ही वह वहाँ के लोगों को प्रभावित कर सकी। यह बखरना कि सुमेर के लोगों ने भारतमें आकर अपनी सभ्यता का प्रसार किया अथवा आय लग परिश्रम से चलकर सुमेर होते हुए भारत में आये तथा यहाँ उन्होंने अपनी सभ्यता का प्रसार किया सन्ध्या निर्मूल तथा निराधार है। आगे सिन्धु सभ्यता तथा सुमेरी सभ्यता का वास्तुनात्मक विवेचन किया गया है उससे भी इसी मत की पुष्टि होती है तथा यह उक्त सिद्धांत का एक और सुस्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत करता है।

**सिन्धु घाटी तथा सुमेरी सभ्यताओं में साम्य—**

सिन्धु घाटी के मोहेंजोदड़ो, चण्डेखो, हरप्पा आदि स्थानों से उत्खनन में जो अनेक वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं उनमें तथा सुमेर के अनेक स्थानों से उत्खनन में प्राप्त वस्तुओं में इतना अधिक साम्य दिखाई देता है जो अच्येपकों को सभ्य ही आकर्षित करता है। इसी साम्य के आधार पर इतिहासकारों ने अनेक प्रकार के अनुमान लगाये हैं तथा अनेक निष्कर्ष भी निकाले हैं।

दोनों स्थानों की वस्तुओं में निम्नलिखित बातों में समानता है —

**भवन निर्माण —**

सुमेर में उर, लागामाद्य तथा अन्य स्थानों की खुदाई में पकी ईंटों की इमारतों के अवशेष मिले हैं जिनमें महराव गुम्बज आदि भी थे। इससे प्रमाणित होता है कि वहाँ के सिविलरकार भवन निर्माण कला के सिद्धांतों से परिचित थे तथा घातुओं का प्रयोग भी जानते थे। इसी प्रकार मोहेंजोदड़ो तथा हरप्पा में पकी इमारतों के अवशेष मिले हैं तथा पकी ईंटें भी मिली हैं जिनसे भवन बनाये जाते थे। इतना ही नहीं मोहेंजोदड़ो

की खुदाई में तो पूरे नगर का ढांचा ही प्राप्त हुआ है। एक ऐसे नगर का ढांचा जिसके भवन पक्की ईंटों के थे, नगर में गलियाँ थीं और सड़कें थीं, भवनों में पक्के स्नानागार थे तथा गंदे पानी व निःशय के लिये मोरिया मी थीं, सड़कों पर प्रकाश के स्तम्भ भी गढ़े हुए मिले हैं। इन्हीं आधारों पर सिन्धु सभ्यता नगरी तथा व्यापारी सभ्यता मानी जाती है तथा सुमेरी सभ्यता भी एक नगरी सभ्यता थी।

सुमेर के समान सिन्धु के लोग भी चातुर्भों का प्रयोग जानते थे वे चातुर्भों के औजार तथा अन्य सामान बना सकते थे तथा उन्हें अलंकृत भी करते थे। सिन्धु में एक नतकी की मूर्ति बड़ी कलापूर्ण बनाई जाती है।

सुमेर के मन्दिरों में ऊँची मीनरें भी मिलती हैं जो कद मजिगी हावी थीं तथा जिनमें ऊपर पहुँचने के लिये सीढ़ियाँ बनायीं जाती थीं। माहेंबोदहो में भी ऐसी कद मजिगी इमारतें प्राप्त हुई हैं जिनमें ऊपर जाने के लिये सीढ़ियाँ बनी हाती थीं। इस प्रकार दोनों ही स्थानों में ऊँची मजिल की इमारतें होती थीं और उनमें पहुँचने के लिये सीढ़ियाँ बनायीं जाती थीं।

सर की रक्षा के लिये उसके चारों ओर एक मबनूत दीवार बनाई गई थी। इसी प्रकार दरवा में भी एक मबनूत रक्षा-प्राचीर तथा किल्लेबादी के विद्य मिलने हैं।

### ‘ चतुरों में सम्मानता —

सुमेर में बहुत सी चतुरें भी प्राप्त हुई हैं जिनमें मृतकों को गाढ़ा जाता था, किन्तु वहाँ ऐसे भी विद्य बड़े परिमाण में प्राप्त हुए हैं जिनसे ज्ञात होता है कि दाह की प्रथा भी वहाँ बड़े पैमाने पर प्रचलित थी। इसी प्रकार सिन्धु घाटी में भी मृतकों को भूमि में गाढ़ना तथा अग्नि द्वारा दाह करना दोनों प्रथाएँ प्रचलित थीं क्योंकि दोनों बातों के विद्य मिलते हैं। सिन्धु की खुदाई में कद स्थानों पर दृष्टियाँ मिली हैं तथा कलाओं में सभी एक भाग और बली हुई दृष्टियाँ प्राप्त हुई हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि सिन्धु सभ्यता ने प्रौढ़ काल में चतुरों को जलाने की प्रथा प्रचलित हो गई थी। अनुमान है कि दोनों स्थानों पर पहले मृतकों को गाढ़ने की ही प्रथा रही होगी किन्तु बाद में दाह-समारंभ का प्रयोग हुआ। श्रुत्ये (१० ८-१० १३) से भी प्रकट होता है कि भारत में प्रारम्भिक श्रुत्येक काल में दोनों प्रकार की प्रथाएँ विद्यमान थीं।

सुमेर में कब्रों में गाढ़े गये शवों के साथ बहुत सी अन्य वस्तुएँ भी प्राप्त हुई हैं। मृगियों के शवों के साथ मिट्टी के थोड़े से बान गाढ़े जाते थे तथा अमीरों के शवों के साथ सोने तथा अन्य चातुर्भों के दृष्टिगार आभूषण आदि भी गाढ़े जाते थे। दरवा में भी एक ऐसी कद मजिगी है जिनमें शव का ढांचा एक लकड़ियों के सलूक में रखा हुआ मिला तथा सलूक के चार चारों ओर मिट्टी के बहुत से बान भी मिले।



सुमेर की कस्बों की सामग्री से यह भी ज्ञात होता है कि उर म उच्च वर्ग की स्त्रियाँ अपने सिर का पीता से तथा वस्त्रादि से सजाती थी। इसी प्रकार सिन्धु-सभ्यता में स्त्रियों के बाल बहुत से पीता से बने रहते थे, स्त्रियों के शिरोवस्त्र कभी कभी पखे के आकार के हाते थे।<sup>1</sup>

### पुजारी राजा —

सुमेरी नगरों के मंदिरों में पुजारी लोग रहते थे तथा ये पुजारी ही नगरों के शासक समझे जाते थे। इस प्रकार वहाँ पुजारी राजाओं की प्रथा प्रचलित थी। इसी प्रकार हरप्पा के लोग भी पुजारी राजाओं द्वारा शासित होते थे।<sup>2</sup>

### मुहर—

सबसे अधिक समानता दोनों स्थानों की मुहरों में दिखाई देती है जो राजाओं अथवा अधिकारियों के नाम किसी वस्तु पर अंकित करने के लिए उपयोग में लाई जाती थी। सुमेर में ये मुहरें चमड़ी के वर्गाकार तथा चेलनाकार सभी प्रकार की प्राप्त हुई हैं। इसी प्रकार सिन्धु घाटी में छोटी बड़ी मुहरों की एक बड़ी संख्या उपलब्ध हुई है जिन पर गेड़े, साड़ आदि की अद्भुत आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं। इनके लिए बहुत कुछ उनकी तरह हैं जो प्राचीन एलाम, सुमेर, निनोम्या ओर मिस्र के हैं।<sup>x</sup> मोहजोदड़ों में ऐसी मोहर हाथी दाँत तथा अन्य वस्तुओं की बनी हुई पायी गयी है तथा वे काफी कलापूर्ण भी हैं। बैल, हाथी, घोड़े आदि की उभरी हुई आकृतियाँ भी उन पर बनी हुई हैं। ये आकृतियाँ प्रायः वैसी ही हैं जैसी सुमेर की प्रारम्भिक काल की मुहरों पर जो विश्व में प्राप्त हुई पायी जाती हैं।

### देवी मूर्तियाँ—

मोहजोदड़ों तथा हरप्पा में असंख्य देवियों की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। इसी प्रकार की मूर्तियाँ बड़चिस्तान, पश्चिमी एशिया, एजियन सागर के आसपास एलम, एशिया माइनर, मेसोपोटामिया, सीरिया, फिलिस्तीन, क्रीट, साइप्रस, बाल्कन, मिस्र आदि अनेक देशों में प्राप्त हुई हैं। विद्वानों का मत है कि ये मूर्तियाँ मातृ देवी अथवा प्रकृति

1 प्राचीन भारतीय वेशभूषा डा० मोतीचंद पृष्ठ २

2 *The Harappans were governed by a priest king from an impressive towering citadel below which lay the main town with its blocks of houses shops and granaries—Press Information Bureau Government of India Feature Storey—August 29 1954*

x प्राचीन भारत का इतिहास—भगवतशरण उपाध्याय।

देवी की हैं जो प्राचीन काल में अनेक देशों में पूजित थीं। सुमेर की सुदाइ में भी ऐसी देवियों की प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। इस दृष्टि से भी सिंधु घाटी तथा सुमेर आदि स्थानों की सभ्यताओं में समानता दिखायी देती है।

### लिपि—

एक आश्चर्यजनक समानता इस बात में भी है कि सिंधु घाटी तथा सुमेर दोनों स्थानों में प्राप्त वस्तुओं पर कुछ लिखावट भी मिलती है। सिंधु-घाटी में प्राप्त टप्पों, मुद्रों और पट्टियों पर पशु चित्रों की तस्वीरों के अतिरिक्त कुछ अक्षर भी लिखे दिखायी देते हैं यद्यपि उनको सकेत लिपि अथवा चिह्न लिपि कहा जाता है। अधिकतर लिखावट साफ अक्षरों में लिखी दिखायी देती है। कुछ वगण चारों से चारों का लिये जान पड़ते हैं और कुछ चारों से दायें को। ये वगण क्रम ओर से क्रम ओर को लिये गये हैं इसका निगम नहीं हो सका है, क्योंकि सिंधु घाटी के ये लेख अभी तक पढ़े नहीं जा सके हैं। कई विद्वानों ने इन्हें नटों का प्रयत्न किया, परन्तु वे किसी निश्चय पर नहीं पहुँच सके। पादर हेरस तथा कुछ अन्य विद्वान इस लिपि तथा भाषा को द्रविड़ बतलाते हैं। प्रो० लेगटन आदि इसे ब्राह्मी की पूर्ववर्ती भाषा लिपि तथा भाषा बताते हैं। मोहेजोन्दा तथा हरप्पा की लिखावट की जाँच करने वाले डा० ग्लेजर का अनुमान है कि ये अक्षर शायद चारों से चारों का लिये जाते थे। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि एक पत्र दाहिनी ओर से बाईं ओर को लिखी जाने के बाद दूसरी पत्र बाईं ओर से दाईं ओर को लिखी जाती थी। तीसरी पत्र फिर दाहिनी ओर से दाईं ओर को और चौथी पत्र फिर बाईं ओर से दाहिनी ओर का लिखी जाती थी। प्रो० लैमडन तथा प्रिटिश म्यूजियम के अधिकारी श्री सिडनी स्मिथ तथा गेड का भी यही अनुमान है किन्तु कुछ विद्वान डा० हटर के अनुमान को गलत बतलाते हैं तथा मानते हैं कि अक्षर दाईं ओर से दाहिनी ओर को लिखे गये हैं किन्तु अभी ये सब अनुमान ही हैं।

फिर भी दोनों स्थानों की लिखावट में अनेक समानताओं के आधार पर यह निश्चय निहाला जाता स्वाभाविक है कि सिंधु सभ्यता तथा सुमेरी सभ्यता में कुछ निकट का सम्बन्ध अवश्य था। यह सम्बन्ध यापार जनित भी हो सकता है तथा एक स्थान के लोगों का दूसरे स्थान पर जा बसने के कारण भी हो सकता है। इन दोनों देशों में यापार प्राचीन काल से चलता था यह तो अनेक प्रमाणों से स्पष्ट है। मरुभूमि को तथा हरप्पा में प्राप्त मुद्रों पर जो लिखावट है वैसे ही अक्षरों की लिखावट मूसा, किंग तथा अन्य सुमेरी स्थानों में प्राप्त मोहरों पर मिलती है तथा सुमेरी मूर्तों पर अनेक आकृतियाँ भी सिंधु घाटी की मोहरों की आकृतियों के समान ही मिलती हैं। इससे भी अनुमान होता है कि सिंधु में इन देशों का यापार सब चलता था।

सुमेर की कमरों की सामग्री से यह भी ज्ञात होता है कि उर में उच्च वर्ग की स्त्रियों अपने सिर को पीतल से तथा बध्नादि से सजाती थी। इसी प्रकार सिंधु सभ्यता में स्त्रियों के बाल बहुत से पीतलों से बने रहते थे, स्त्रियों के शिरोवस्त्र कभी कभी पत्ते के आकार के हाते थे।<sup>१</sup>

### पुजारी राजा—

सुमेरी नगरों के मंदिरों में पुजारी लोग रहते थे तथा ये पुजारी ही नगरों के शासक समझे जाते थे। इस प्रकार वहाँ पुजारी राजाओं की प्रथा प्रचलित थी। इसी प्रकार हरप्पा व लोग भी पुजारी राजाओं द्वारा शासित होते थे।<sup>२</sup>

### मुहर—

सबसे अधिक समाप्ता दोनों स्थानों की मुहरों में दिखाई देती है जो राजाओं अथवा अधिकारियों के नाम किसी वस्तु पर अंकित करने के लिए उपयोग में लाई जाती थीं। सुमेर में ये मुहरें चौगूटी वर्गाकार तथा चेलनाकार सभी प्रकार की प्राप्त हुई हैं। इसी प्रकार सिंधु-वाणी में छोटी बड़ी मुहरों की एक बड़ी संख्या उपलब्ध हुई है जिन पर गड़े, साइ आदि की अद्भुत आकृतियाँ उत्कीर्ण हैं। इनके रेश बहुत कुछ उनकी तरह हैं जो प्राचीन एलाम, सुमेर, निनोम्या और मिस्र में हैं।<sup>३</sup> मोहेजोदड़ों में ऐसी मोहर हाथी दाँत तथा अन्य वस्तुओं की बनी हुई पायी गयी है तथा वे काफी कलापूर्ण भी हैं। बल, हाथी, घोड़े आदि की उभरी हुई आकृतियाँ भी उन पर बनी हुई हैं। ये आकृतियाँ प्रायः वैसी ही हैं जैसी सुमेर की प्रारम्भिक काल की मुहरों पर जो विश्व में प्राप्त हुई पायी जाती हैं।

### देवी मूर्तियाँ—

मोहेजोदड़ो तथा हरप्पा में असंख्य देवियों की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। इसी प्रकार की मूर्तियाँ बरूचिस्ताण, पश्चिमी एशिया, एजियन सागर के आसपास एलम, एशिया माइनर, मेसापोटामिया, सीरिया, विलिस्तीन, फ्रीट, साइप्रस, बालकन, मिस्र आदि अनेक देशों में प्राप्त हुई हैं। विद्वानों का मत है कि ये मूर्तियाँ मानव देवी अथवा प्रकृति

<sup>१</sup> प्राचीन भारतीय वेद्यभूषा - डा० मोतीचंद पृष्ठ २

<sup>२</sup> *The Harappans were governed by a priest king from an impressive towering citadel below which lay the main tower with its blocks of houses shops and granaries—Press Information Bureau Government of India Feature Storey—August 29 1954*

× प्राचीन भारत का इतिहास—भगवतचरण उपाध्याय।

देवी की है जो प्राचीन काल में अनेक देशों में पूजित थी। सुमेर की सुदाइ में भी एसी देवियों की प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। इस दृष्टि से भी सिंधु घाटी तथा सुमेर आदि स्थानों की सभ्यताओं में समानता दिग्यायी देती है।

### लिपि—

एक आश्चर्यजनक समानता इस बात में भी है कि सिंधु घाटी तथा सुमेर दोनों स्थानों में प्राप्त वस्तुओं पर कुछ लिखावट भी मिलती है। सिंधु-घाटी में प्राप्त टपों, मुद्रों और पेटियों पर पशु चित्रों की तस्वीरों के अतिरिक्त कुछ अक्षर भी लिखे दिग्यायी देते हैं यद्यपि उनको सकेत लिपि अथवा चिह्न लिपि कहा जाता है। अधिकतर लिखावट माफ अक्षरों में लिखी दिग्यायी देती है। कुछ गण दायें से बायें को लिखे जाते पड़ते हैं और कुछ बायें से दायें को। ये वग किस आर से किस ओर को लिखे गये हैं इसका निगम नहीं हो सका है, क्योंकि सिंधु घाटी के ये लेख अभी तक पढ़े नहीं जा सके हैं। कई विद्वानों ने इन्हें पढ़ने का प्रयत्न किया, परन्तु ये किसी निश्चय पर नहीं पहुँच सके। पादर हेरास तथा कुछ अन्य विद्वान इस लिपि तथा भाषा को द्रविड़ बतलाते हैं। प्रो० लेगन आदि इसे त्राही की पूर्ववर्ती आय लिपि तथा भाषा बताते हैं। माहेजोन्दा तथा हरप्पा की लिखावट की जर्च करने वाले डा० हटर का अनुमान है कि ये अक्षर शायद दायें से बायें का लिखे जाते थे। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि एक पक्ष दाहिनी ओर से बाईं ओर को लिखी जाने के बाद दूसरा पक्ष बाईं ओर से दाईं ओर को लिखी जाती थी। तीसरी पक्ष फिर दाहिनी ओर से बाईं ओर को और चौथी पक्ष फिर बाईं ओर से दाहिनी ओर को लिखी जाती थी। प्रो० लमडन तथा ब्रिटिश म्यूजियम के अधिकारी श्री सिडनी स्मिथ तथा गेड का भी यही अनुमान है किन्तु कुछ विद्वान डा० हटर का अनुमान को गलत बताते हैं तथा मानते हैं कि अक्षर बाईं ओर से दाहिनी ओर को लिखे गये हैं किन्तु अभी ये सब अनुमान ही हैं।

फिर भी दोनों स्थानों की लिखावट में अनेक समानताओं के आधार पर यह निगमन निहाला जाता है कि सिंधु सभ्यता तथा सुमेरी सभ्यता में कुछ निष्पत्ति का सम्बन्ध अपर्यय था। यह सम्बन्ध यादव जनित भी हो सकता है तथा एक स्थान के लोगों का दूसरे स्थान पर जा बसना के कारण भी हो सकता है। इन दोनों देशों में आधार प्राचीन काल से चलता था यह तो अनेक प्रमाणों से स्पष्ट है। महेंद्रोड़ो तथा हरप्पा में प्राप्त मुद्रों पर जो लिखावट है वैसे ही अशरों की लिखावट गुला, किश तथा अन्य सुमेरी स्थानों में प्राप्त मोहरों पर मिलती है तथा सुमेरी मुद्रों पर अनेक आकृतिवा भी सिंधु घाटी की मोहरों की आकृतियों का समान ही मिलती है। इससे भी अनुमान होता है कि सिंधु से इन देशों का संपर्क स्थापित हुआ था।

कुछ लोगों ने अनेक समानताओं के आधार पर यह अनुमान लगाया है कि सिंधु सभ्यता के निर्माता लोग सुमेर से ही भारत में आये थे तथा वे सुमेरी जाति से ही उत्पन्न हुए थे। किंतु यह मत प्रायः नहीं है जैसा कि सुमेरी परम्पराओं तथा अन्य अनेक प्रमाणों से पूर्व में सिद्ध किया गया है। वास्तविक स्थिति इसके विपरीत ही सिद्ध होती है।

श्री भगवत शरण उपाध्याय का मत है कि हमें इस बात को न भूलना चाहिये कि सुमेर और सिंधु सभ्यताओं की समानता सैन्धव जाति के सुमेर जनित होने के विरुद्ध प्रमाण उपस्थित करती है और नालियों सम्बन्धी जो समानताएँ हैं वे निरस्य देह सुमेर के निचले स्तरों की हैं और सिंधु सभ्यता के ऊपरले स्तरों से उपलब्ध हुई हैं। जिससे सुमेर की प्राचीन सभ्यता सिंधु की पश्चात्कालीन सभ्यता को समकालीन ठहराती है। इससे सुमेरी सभ्यता के सैन्धव सभ्यता से पश्चात्कालिक होने के कारण सिंधु सभ्यता के निवासियों के सुमेर कालीन होने की बात कट जाती है।<sup>१</sup>

इसी प्रकार जो मुहरें मिली हैं वे सिन्धु घाटी की सुदाइ की उपरली तहों में मिली हैं। किंतु उन पर बनी हुई आकृतियाँ उन मुहरों पर बनी हुई आकृतियों के समान हैं जो किश स्थान पर प्राप्त हुई। सुमेर की सबसे प्राचीन काल की मुहरों पर बनी हुई हैं। इसका तात्पर्य यही है कि सिंधु घाटी की ऊपरली तहों में प्राप्त वस्तुएँ तथा सुमेर में सभ्यता से निचली तहों में प्राप्त वस्तुएँ सुमेर घाटी की वस्तुओं से अधिक प्राचीन हैं। इस प्रकार सिंधु घाटी की सभ्यता सुमेरी सभ्यता से अधिक प्राचीन होती है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि भारत के ही लोगों ने सुमेर में पहुँच कर वहाँ की सभ्यता को जन्म दिया था तथा उसे विकसित किया था।

यूरोपीय विद्वानों ने सुमेरी उत्खनन में प्राप्त वस्तुओं का काल ३५०० ई० पू० तक निर्धारित किया है तथा सिंधु-सभ्यता का काल ३००० ई० पू० से १५०० ई० पू० तक का माना है। उनका विचार है कि १५०० ई० पू० के लगभग यह सभ्यता नष्ट कर दी गयी थी। किन्तु यह अनुमान भी इसी आधार पर किया गया है कि वे सुमेरी सभ्यता को ही सबसे प्राचीन मानते हैं और जब उस सभ्यता का आरम्भ काल ४ हजार या ३॥ हजार वर्ष पूर्व है तो सिंधु सभ्यता का काल उसके पीछे का होना चाहिये किन्तु वास्तव में सिंधु घाटी की सभ्यता कम से कम उसकी निचली तहों की सभ्यता सुमेर की सभ्यता से अधिक प्राचीन है। सिंधु घाटी के उत्खनन में प्राप्त वस्तुएँ सान स्तरों में उपलब्ध हुई हैं तथा प्रत्येक स्तर एक विशेष काल की सभ्यता का द्योतक है। विद्वान लोग प्रत्येक स्तर की सभ्यता का जीवन ५०० वर्ष मानते हैं। एक सभ्यता के जीवन सफे लिये यह

५०० वर्ष का काल बहुत थोड़ा है फिर भी इस दृष्टि से भी उक्त सात स्तरों की सम्पत्ताओं में सबसे विठली सम्पत्ता  $५०० \times ७ = ३५००$  वर्ष अर्थात् १५०० इ० पू० की है (जबकि सिंधु सम्पत्ता नष्ट हो गई) यह ३५०० वर्ष पुरानी अथवा लगभग ५००० वर्ष ६०५० की अथवा यों कहा जा सकता है कि आज से ७००० वर्ष पूर्वकी सिद्ध होती है।

इस मत का समर्थन वह यूरोपीय विद्वानों ने तथा सिंधु-सम्पत्ता का उद्घाटन करने में प्रमुख भाग लेने वाले सर जान मार्शल ने भी किया है। सर जान मार्शल भी इस सम्पत्ता की प्राचीनता तथा इसकी महानता का उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि मोटे जोड़ों तथा हरष्या दोनों स्थानों में एक बात तो स्पष्टतया प्रकट होती है और जिसने समग्र घ में कोई भ्रम नहीं हो सकता—वह यह है कि इन दोनों स्थानों में जो सम्पत्ता हमारे सम्मुख आयी है वह कोई प्रारम्भिक सम्पत्ता नहीं है अपितु ऐसी है जो सभी युगों की प्राचीन हो चुकी थी, भारत भूमि पर सुदृढ़ हो चुकी थी और उसके पीछे मानव की शताब्दियों की कृतियाँ हैं। इस प्रकार अब से यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इरान, मेसोपोटामिया और मिश्र की भाँति भारतवर्ष भी उन सबसे प्रमुख देशों में से है जहाँ सम्पत्ता का जन्म और विकास हुआ।

श्री गार्डन चाइल्ड तथा हाल महोदय तो इस सिंधु-सम्पत्ता का विकास-क्षेत्र बहुत दूर तक बतलाते हैं और वे इस सम्पत्ताको ही सुमेरियन सम्पत्ता की जन्मदात्री मानते हैं।

इस प्रकार सिंधु सम्पत्ता एवं सुमेरी सम्पत्ता के तुलनात्मक विवेचन से सिंधु-सम्पत्ता ही सुमेरी सम्पत्ता से अधिक प्राचीन सिद्ध होती है। अतः स्पष्ट ही सुमेरी सम्पत्ता सिंधु सम्पत्ता से प्रभावित हुई। इससे यह भी अनुमान किया जा सकता है कि सिंधु घाटी के लोगों ने ही सुमेर में पहुँच कर अपनी सम्पत्ता का प्रसार किया जिसके अवशेष अब लगभग ५ हजार वर्ष पश्चात् प्राप्त हुए हैं।

-----

## अध्याय ३

### खाल्दिया तथा वेबीलोनिया की प्राचीन सभ्यताएँ

मेसोपोटामिया में सुमेरी सभ्यता के पश्चात् जो दो अन्य सभ्यताएँ प्रसिद्ध हैं वे हैं खाल्दियाइ तथा वेबीलोनियाइ । संक्षेप में इन्हें खाल्दी तथा बाबुली सभ्यताएँ कहा जा सकता है ।

मेसोपोटामिया का मध्यपूर्वी तथा दक्षिणी भाग प्राचीन काल में 'कार दुनियाइ' कहलाता था । बाद में इसी भाग में अर्थात् मेसोपोटामिया के मध्य में स्थित बेबीलोन नगर ने प्रधानता प्राप्त की जिसका विवरण हम आगे पढ़ेंगे । इस समय से यह समस्त भाग वेबीलोनिया कहलाने लगा । बेबीलोनिया को ही पुराने वादग्रन्थ में 'ईडन' कहा गया है । यहूदी परम्परा के अनुसार ईश्वर का प्राग अथवा स्वर्ग दक्षिणी वेबीलोनिया अथवा ईडन में ही था । इसी भाग में आदिम मनुष्य का जन्म भी हुआ माना जाता है ।

मेसोपोटामिया के दक्षिणी भाग में—जो सुमेर कहलाता था तथा जहाँ सुमेरी लोगों की चरित्या थीं कुछ समय पश्चात् एक नई जाति आकर बसी । यह कन्दू या खल्लू कहलाती थी । यह अनुमान किया जाता है कि ये लोग मूलतः अरब से आये थे जो सामी जातियों का मूल के द्र माना जाता है और फारस की खाड़ी में होते हुए दक्षिण फारस के मुहानोंपर जहाँ उर नामका नगर बसा हुआ था बस गये । उस समय दक्षिण और फारस नदियाँ अलग-अलग मुहानों से फारस की खाड़ी में गिरती थीं । इन्हीं मुहानों के लग्ने क्षेत्र में—जो उड़ा उपजाऊ था—ये लाग आकर बसे । कुछ यूरोपीय इतिहासकार एच० जे० वेल्स आदि ) इन्हे सामी तथा कुछ सुमेरी एव सामी तत्वों का मिश्रण मानते हैं । लोक० तिलक उन्हे तूरानी जातिना मानते थे । हाल और अपिनाशच द्र दास द्रविड मानते हैं । बाद के ७ वीं शताब्दी ई० पू० क एक उल्लेख में इन्हें अरबों से भिन्न माना गया है ।

खल्लू लोगों के उस जाने के कारण—मेसोपोटामिया का यह सबसे दक्षिणी भाग खाल्दिया कहलाने लगा । यह वास्तव में एक जिला ही था तथा उसका 'खाल्दिया' नाम शेष मेसोपोटामिया में कुछ गह्रित दृष्टि से देखा जाता था । वेबीलोनिया और खाल्दिया बहुत समय तक अलग-अलग प्रदेश भी गिने जाते थे । परन्तु बाद में यूनानी लोगों ने



सेलीसीय साम्राज्य  
 २६० ई. पू.

\*मनविद-एररम आर एन० ए० १०० गामरवी से





अग्नी त्परवाही के कारण—जो उनकी एक स्वाभाविक विशेषता रही है—के बल खाल्दी लोगों की बस्ती को ही नहीं बल्कि समस्त दक्षिणी भाग का खाल्दिया कहना शुरू कर दिया। धीरे-धीरे मध्य भाग अर्थात् बेबीलोनिया भी खाल्दिया कहा जाने लगा। खाल्दिया नाम पुरानी साइबल में भी प्रायः आया है तथा अनुमानतः वह बेबीलोनिया का पर्वत यथाची ही जान पड़ता है। खाल्दिया की पुरानी राजधानी बिट्याकिन थी। राज्या और परगल के मुहाने जबकि व अलग-अलग धाराओं में पारस की खाड़ी में गिरती थी, इसी भाग में थे। यह मैदानी प्रदेश उक्त दाना नदियों द्वारा ही लायी गयी मिट्टी से बना था। अतः यह अत्यधिक उपजाऊ था।

खाल्दी लोग जब इस मैदानी प्रदेश में आये तब वहाँ सुमेरी लोग सबसे पहले से बसे हुए थे। सुमेरी लोग से भूमि छीनकर ही इन लोगों ने अग्नी बस्तियाँ बनाई। किन्तु सुमेरी लोगों की सभ्यता इन लोगों की सभ्यता से बहुत ऊँची थी। अतः वे उससे प्रभावित हुए बिना न रहे। खाल्दी लोगों की सभ्यता सामी सभ्यता थी, परन्तु सुमेरी लोगों की सभ्यता सामी सभ्यता से भिन्न थी। उन दिनों सुमेर इसी अ-सामी अथवा विदेशी सभ्यता का कन्द्र बना हुआ था। इस विदेशी सभ्यता ने खाल्दी लोगों का हतना प्रभावित किया कि उन्होंने शीघ्र ही उस सभ्यता का अपना लिया और थोड़े से दिनों में उसे आत्मसात कर लिया।<sup>1</sup> पश्चात् जब खाल्दी लोगों ने बेबीलोनिया के लोगों पर भी अपना प्रभुत्व जमा लिया तथा जब बेबीलोनिया और खाल्दिया के लाग इतने मिल चुके गये कि खाल्दिया शब्द बेबीलोनिया का ही पर्यायवाची बन गया, तब समस्त बेबीलोनिया अथवा बाबुल प्रदेश में सुमेरी सभ्यता का ही विस्तार हो गया। इस प्रकार खाल्दिया शब्द को पहले मेसोपोटामिया के केवल एक दक्षिणी काने का नाम था समस्त दक्षिणी तथा मध्य मेसोपोटामिया अथवा बेबीलोनिया के लिये प्रयुक्त होने लगा। ८<sup>थी</sup> शताब्दी ई० पूर्व तक समस्त बेबीलोनिया का खाल्दिया नाम से ही पुकारा जाता था। यद्यपि खाल्दी और बाबुली लोगों में जातीय भिन्नता थी किन्तु यह भिन्नता धीरे धीरे कम होती गई क्योंकि जातिर दोनो ही जातियाँ सामी जाति की ही दो शाखाएँ थीं। इस प्रकार धीरे धीरे खाल्दिया तथा बेबीलोनिया पर्यायवाची शब्द ही बन गये और खाल्दी तथा बाबुली लोगों में जातिगत भिन्नता भी प्रायः नष्ट हो गई।

सुमेरी सभ्यता के प्रभाव से प्रदेश खाल्दी जलो में एक मुख्य देवता माना जाता था तथा उस देवता का पुजारी ही उस स्थान का शासक भी होता था अथवा स्थानीय शासक ही पुजारी होता था। उर नगर में तन्नार अथवा चन्द्रदेव की पूजा होती थी।

<sup>1</sup> It seems extremely probable that Chaldeans were so strongly influenced by the foreign civilisation as to adopt it eventually as their own  
Encyclopaedia Britannica

### बाबुल में बाबुली राजवंश की स्थापना—

हम देग चुने हैं कि सुमेर में अक्कादी राजवंश को हटाने के पश्चात् पुन एक सुमेरी राजवंश की स्थापना हुई थी जो उर का तृतीय राजवंश कहलाता था तथा इस राजवंश ने अपने राज्य का विस्तार बहुत बढ़ाकर उत्तर में अमुर देश तक पूरब में एलाम तक तथा पश्चिम में शाम तक कर लिया था। परन्तु इस वंश की ५ पीढ़ियों के पश्चात् एलम के लोगों ने इस देश पर आक्रमण करके उर के तृतीय वंश को तथा इस प्रकार बेबीलोनिया के सुमेरी राजवंश को सदा के लिये समाप्त कर दिया था।

उर के तृतीय राजवंश का अंत वास्तव में पूरब और पश्चिम की दो शक्तियों के सम्मिलित प्रयत्न से हुआ। बाबुल तथा सुमेर के पूरब में एलाम था जो ईरान का एक प्रांत समझा जाता था। पश्चिम में 'अमोर' का नाम के लोग बसे हुए थे। 'अमोर' का अर्थ बाबुली भाषा में 'पश्चिम' होता था। ये लोग बेबीलोनिया के पश्चिम में बसे होने का कारण अमोर कहलाते थे। २३०० ई० पू० के लगभग इन लोगों के वहाँ फरात नदी के पश्चिम में बसे होने का पता चलता है। ये लोग वहाँ छ'ट छोटे काम-धंधे करते थे। इन लोगों ने पहले तो अक्काद प्रांत पर हमला करके इसी नाम का स्थान पर पंजा कर लिया और फिर एलाम के लोगों को साथ लेकर उर पर आक्रमण कर दिया और वहाँ के राजा को हराकर वहाँ अपना अधिकार कर लिया। उर का राजा भी कैद कर लिया गया। उर की समस्त भूमि उजाड़ दी गयी, मंदिर नष्ट कर दिये गये तथा नगर खण्डहर बना दिये गये। राजधानी उर को इस युद्ध में इतनी हानि पहुँची कि वह फिर न उठ सका।

इस प्रकार उर के तृतीय राजवंश के उन्मूलन के पश्चात् बाबुल में अमोर लोगों ने अपना राज्य स्थापित किया। ये अमोर लोग बाबुली ही समझ जाते थे और इस प्रकार बाबुल में प्रथम बार एक बाबुली राजवंश की स्थापना हुई। इसका काल २२०० अथवा २१५० ई० पू० से १७४० ई० पू० तक अर्थात् लगभग चार सौ वर्ष समझा जाता है।

### उर द्वारा पुनरुत्थान का प्रयत्न—

उर के पराभव-काल का आसपास ही प्रकृति ने भी उर पर कोर किया। पहले फरात नदी अथवा उसकी कोई शाखा उर नगर के पास से बहती थी जिसमें फारस की खाड़ी होकर जहाज उर नगर तक आ जाते थे और इस प्रकार वहाँ का व्यापार रूढ़ चलता था। किन्तु बाद में नदी ने अपनी धारा बदल दी। इससे जहाजी व्यापार बंद हो गया और उर का महत्व घट गया। उर छोटे छोटे फरात नदी से १० मील दूर हो गया और इसी कारण उसकी अव्यवस्था और भी शीघ्रता से हुई।

उर के नष्ट होने के कुछ काल बाद सुमेर के लोगों ने एक बार फिर सिर उठाया । किंतु इस बार इस विद्रोह के नेता उर के लोग नहीं, बल्कि उसके दो करद शायी— इसीन और लारसा के लोग थे । सुमेर पर पहले इसीन के राजाओं ने आधिपत्य जमा लिया और फिर लारसा के लोगों ने । इसीन राजाओं के समय में सुमेर की राजधानी इसीन ही बन गई थी । अतः उर का महत्त्व और भी घट गया था । इसीन के राजा ने बुरसिन के बनाये हुए चंद्रदेव के मन्दिर का— जिसे एलाम के लोगों ने आक्रमण के समय नष्ट कर दिया था— पुनरुद्धार कराया । इसी प्रकार लारसा के राजाओं ने भी बहुत से भवन, मन्दिर, पुजारियों के घर आदि बनाये । निनगाल स्थान पर जो खुदाई की गई उसमें उस काल की बहुत सी वस्तुएँ मिली हैं । वान नाम की एक देवी की मूर्ति भी प्राप्त हुई है जो काले पत्थर से खोदकर बनायी गई है । यह देवी एक सिंहासन पर बैठी बत्ताई गई है तथा उस सिंहासन को इस उठाये हुए है । इसी प्रकार और भी कई मूर्तियाँ उस काल की प्राप्त हुई हैं ।

इस प्रकार इसीन और लारसा के सुमेरी वंश के राजाओं ने एक बार पुनः अपना गत गौरव प्राप्त करने का प्रयत्न किया तथा उसमें कुछ सफलता भी प्राप्त की किंतु यह सफलता अधिक काल तक न रही और थोड़े दिन के पश्चात् इन दोनों राजवंशों का भी प्रभुत्व समाप्त हो गया ।

### हम्मूराबी और बाबुल नगर का उत्थान—

इसीन और लारसा के राजवंशों के बाद फिर कुछ समय तक सुमेर तथा बेबीलोनिया में अन्धकार फैली रही तथा छोटे छोटे राज्यों में आरसी भगड़ चलते रहे । अंत में हम्मूराबी नाम के एक वीर व्यक्ति ने जो बाबुल या बेबीलोन नामक नगरका निवासी था इस देश पर प्रभुत्व प्राप्त किया । उसने बाबुल नगर तथा आसपास के देश पर अपना अधिकार जमा लिया और शीघ्र ही अरने को राजा के पिन कर दिया । इस प्रकार इस भू-भाग पर पुनः बाबुली राजवंश की स्थापना हुई । हम्मूराबी यत्र प अनोर वंश का ही था परन्तु यह बाबुली ही कहलाता है और इतिहास में बाबुली वंश का ही माना जाता है ।

हम्मूराबी बेबीलोनिया का एक बड़ा प्रसिद्ध शासक हुआ है । उसका काल २ हजार ६०० के लगभग माना जाता है । उसने पारस की खाड़ी से लेकर भूमध्य सागर तक का समस्त प्रदेश जीत लिया । उसने फ्रात नदी के पानी का अधिक से अधिक उपयोग कृषि-उपकरण के हेतु करने के उद्देश्य से नदियों से नहरें निकालवाई । अकाल आदि की रोक के लिये उसने एक बड़ा अनाज भण्डार भी स्थापित किया । उसने कई मन्दिर

और महत्व भी बनवाये। उसने समस्त साम्राज्य के लिये एक दण्ड विधान भी बनवाया जो सभ्यता का सबसे प्रथम दण्ड विधान माना जाता है।

हम्मूराबी ने अपने विस्तृत राज्य की राजधानी बेबीलोन नगर में स्थापित की, जहाँ का वह निवासी था। इस कारण बेबीलोन अथवा बाबुल नगर का महत्व बहुत बढ़ गया। वैसे भी यह नगर मेसोपोटामिया के मध्य में स्थित होने के कारण महत्व प्राप्त कर रहा था। एक बड़े राज्य की राजधानी बन जाने के कारण उसका महत्व और अधिक बढ़ गया, धार्मिक दृष्टि से भी उसका महत्व बढ़ने से था, क्योंकि वहाँ के मरुतक देवता की आस-पास के क्षेत्र में अच्छी माँवता थी। इन्हीं जिनो बाबुल का जिला भी बना। भौगोलिक स्थिति भी उसका साथ दे रही थी। पूर्व काल में फगत नदी किश नामक नगर के पास से बहती थी। अतः वहाँ इस क्षेत्र का वेद था किन्तु तीसरी सदी ई.पू. में फगत नदी किश से हट गयी और बाबुल नगर के पास आ गई। इन सभी कारणों से बाबुल नगर का महत्व अत्यधिक बढ़ गया और वह पश्चिमी एशिया का सबसे अधिक महत्वपूर्ण नगर बन गया। बाबुल नगर का महत्व अब इतना अधिक बढ़ गया कि वह समस्त भू-भाग ही जो अभी तक सैलुस नाम से प्रसिद्ध था बेबीलोनिया कहलाने लगा। यूनानियों द्वारा इस भाग को मेसोपोटामिया नाम देने के बाद भी यह भू-भाग प्रायः अब तक बेबीलोनिया भी कहलाता है। वास्तव में बाबुल नगर के महत्व प्राप्त करने के बाद से ही इस भाग का नाम बेबीलोनिया माना जाना चाहिये।

हम्मूराबी का नाम उसकी दण्ड संहिता के कारण इतिहास में विशेष प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि यह संहिता सुमेरी कानूनों का आधार पर ही बनाई गई थी। यह संहिता सन् १६०२ में गूसा नामक स्थान (एलाम प्रांत की राजधानी) की खुदाई में प्राप्त हुई थी।

यह दण्ड विधान प्रायः सत्र प्रकार से पूर्ण समझा जाता है। इसमें भूमि तथा अन्य प्रकार की जायदाद खरीदने, बनाने, पट्टे पर देने, दान में देने आदि के सम्बन्ध में नियम दिये गये हैं। विधान के अनुसार पति को तलाक का अधिकार था तथा पति की कृपता पर पत्नी उस पर अभियोग चला सकती थी। दासियों से उत्पन्न बच्चे स्वतन्त्र नागरिक माने जाते थे तथा वे पिता की जायदाद में हक प्राप्त कर सकते थे।

एक मंदिर में एक ऐसा टूटा हुआ शिलालेख भी प्राप्त हुआ है जिसमें हम्मूराबी की विजयों का वर्णन है। इस पत्थर को हम्मूराबी ने अपनी विजय के स्मारक के रूप में गढ़वाया था। परंतु जान पड़ता है कि उस काल में स्थायित्व लाने वालों ने इस शिलालेखी शासन के विरुद्ध भी विद्रोह किया और हम्मूराबी के उस विजय-स्मारक को तोड़ फोड़ डाला। किन्तु अनुमान होता है कि साल भर के बाद ही बाबुल की दीवारें उर नगर में पुनः आसीं, मंदिर और शहर को लूट और फिर नगर में आग लगा दी। यह घटना १८८५ ई. पू. के लगभग की मानी जाती है।

हमूरावी के वंश का राज्य केवल ५० वर्ष तक रहा, परंतु इस समय में बाबुल का—  
बाबुल नगर तथा राज्य का—महत्त्व बहुत बढ़ा। इस समयमें माहिल्यकी भी बहुत उन्नति  
हुई। इस समय में वेनीलोनिया का राज्य पश्चिम में भूमध्य सागर तक फैल गया था।

### कामी राजवश —

हमूरावी के उत्तराधिसारी उसके समान वीर तथा नीति कुशल न हुए, जन  
उनके समय में राज्य कमजोर हो गया। आस पास के राज्य बेबीलोन पर आक्रमण करने  
लगे। शाम ने सत्ती अपना गिताइ जाति के लोगों ने भी बेबीलोन पर आक्रमण शुरू  
किये और उन्होंने शीघ्र ही हमूरावी के राजवंश का अंत कर दिया। किंतु वे अपना  
अभियान न जमा सके। बेबीलोनिया में अथर्वस्था फैल गई और कुछ समय तक इसी  
प्रकार अस्थिति रही। अंत में कासी जाति के लोगों ने वहाँ अपना प्रभुत्व जमा लिया।

ये कासी जाति के लोग कौन थे और कहाँ से आये थे, इस सम्बन्ध में विविध मत  
हैं। यूरोपीय इतिहासकारों के अनुसार ये लोग प्रारम्भ में एलाम प्रांत के पहाड़ों में बसे  
हुए थे तथा बाबुल की सेना में ये लोग बड़ी संख्या में भर्ती हो गये थे। इस प्रकार ये  
लोग रण विद्या में कुशल थे। बेबीलोनिया में अव्यवस्था फैली देखकर इन्हें अवसर  
मिला। इन लोगों ने उक्त प्रदेश को शीघ्र ही अपने अधिनार में कर लिया। फिर  
उन्होंने अपने में से ही एक योग्य व्यक्ति को सुन्विया चुन लिया और उसे बाबुल के  
सिंहासन पर बिना किसी राजा बना दिया। इस प्रकार बेबीलोनिया में कासी राजवंश का  
राज्य स्थापित हुआ।

हिंदी के लेखक स्वर्गीय चतुरसेन शास्त्री का विचार था कि 'बैशी' घोड़े का  
गाम है। इन लोगों के पास घोड़े थे इसी कारण इनका नाम 'बैशी' पड़ा। बैशी का  
ही अग्रदूर रूप कासी है। स्व० जयशंकर प्रसाद का मत था कि ये लोग "कौशिक"  
जाति के लोग थे जो मूलतः भारतके निवासी थे और भारतमें ही वे अन्य देशों में गये।  
ये कौशिक लोग इन्द्र के उपासक थे जैसा कि विश्वामित्र के बनावे हुए ऋग्वेद के अनेक  
मंत्रों से स्पष्ट है। इन्हीं लोगों ने सान्ध्य में पढ़ेंचकर वहाँ इन्द्र पूजा का प्रचार  
किया। अधिक सम्भव यह ज्ञान पड़ता है कि ये लोग मूलतः भारत में काशीनगर अध्या

के कुछ ऐतिहासिकों का अनुमान है कि इन्द्र पूजा वेदिकता के लोगों से सीरी  
गई। कौशिक लोग इन्द्र पूजा के प्रचारक थे। इन कौशिकों को वे कुशाट के साथ  
सम्बद्ध बताते हैं। कुशाट लोगों को वे कुछ विदेशियों से तृगनी इन्द्र मानते  
हैं। कौशिक लोग भारत से ही अन्य देशों में गये यह वे लोग भी मानते हैं तब इन्द्र  
पूजा वेदिकता से भारत में आकर भारतीय कौशिकों के द्वारा ही वेदिकता में गई।  
यह कल्पना अधिक संगत है।—गंगा केन्द्र दायवश मुद्र—अथर्वश प्रमाण।

आस-वास के प्रदेश के निवासी होंगे तथा किसी कारण वे वेबीलोनिया के आस पास जा बसे। उन्होंने वहाँ पहुँचकर अपनी जो मुर्य बस्ती बसाई उसका नाम भी अपनी मूर्य नगरी के नाम पर 'काशी' रखा और इसी कारण वे लोग भी 'काशी' अथवा यूरोपीय लेखकों के शब्दों में 'काश्गाइत' बने गये।

इस काशी या काशी राजवंश के लोगों ने वेबीलोनिया में दीर्घ काल तक अर्थात् लगभग ६ शताब्दियों तक—१७५० ई० पू० से ११६० ई० पू० तक राज्य किया, किंतु इनका कोई विस्तृत इतिहास उपलब्ध नहीं होता। इसका मुख्य कारण यह है कि इन लोगों ने वेबीलोनिया में अपनी कोई नयी इमारतें नहीं बनवायीं न कोई लेखादि छोड़े। ये लोग प्रायः पुरानी इमारतों की ही मरम्मत करके उन्हीं से काम चलाते रहे। फलस्वरूप इनके कोई स्मारक प्राप्त न होने से इनके वंश के राजाओं का भी हाल नहीं मिलता। जो कुछ अवशेष इनके वंश के प्राप्त हुए हैं उनसे ऐसा अनुमान होता है कि धीरे-धीरे ये लोग अपनी पुरानी सभ्यता से दूर होते गये। उन्होंने सामी भाषा अपना ली और सामी नाम भी अङ्गीकार कर लिये। वे अपने आसपास के 'असुर' आदि वंशों के राजाओं से वैवाहिक सम्बन्ध भी करने लगे और इस प्रकार धीरे-धीरे ये लोग वेबीलोनिया के सामी जातिके लोगों से घुल मिल गये और सामी बन गये।

इसी वंश का राजा कुरी गुल्लु था जिसका नाम उसके बनवाये हुए एक भवन की अनेक ईंटों पर खुदा हुआ मिला है। यह १४०० ई० पू० के लगभग बाबुल के सिंहासन पर बैठा था। उसने दक्षिणी क्षेत्र की ओर कुछ विशेष ध्यान दिया। उसने उर के सुमेरी काल के भवनों की तथा मंदिरों की मरम्मत कराई। उसकी बनवायी हुई एक महलव भी समित अवस्था में मिली है जिससे उस समय की भवन-निर्माण-कला पर प्रकाश पड़ता है।

### असुर राजवंश—

वेबीलोनिया में तिन दिनों काशी राजवंश ने अपना राज्य स्थापित किया उन्हीं दिनों वेबीलोनिया के उत्तर में एक दूसरी जाति शक्ति प्राप्त कर रही थी। यह जाति 'असुर कहलाती थी तथा उनका देश असुर या अस्सुर कहलाता था जिसे बाद में यूनानियों ने 'असोरिया' बना दिया। यह असुर देश इस समय तक बाबुल राज्य का ही एक प्रान्त मात्र था। अतः उसका कोई विशेष महत्त्व न था। परन्तु १६ वीं १८ वीं शताब्दी ई० पू० में इस प्रांत की असुर जाति ने महत्त्व प्राप्त करना प्रारम्भ किया। उनके एक बलवान और महत्त्वाकांक्षी पत्तिने—जिसका नाम शमशी अदाद था—वेबीलोनिया राज्य के विघ्न विद्रोह का भण्डा उठाया और अपने असुर अनुयायियों की सहायता से शीघ्र ही स्वतंत्रता प्राप्त कर ली। धीरे-धीरे उसने अपनी शक्ति बहुत बढ़ा ली और

फिर प्रायः समस्त बाबुल राज्य का अपने अधिकार में कर लिया। इस प्रकार बेबीलोनिया में अमुर राजवंश की स्थापना हुई। इस अमुर राजवंश ने फिर किस प्रकार अपनी शक्ति बढ़ाई, बेबीलोनिया पर किस प्रकार अधिकार किया तथा किस प्रकार अपनी एक नई सभ्यता का प्रसार किया यह एक स्वतंत्र अध्याय का विषय होने के कारण अगले अध्याय में वर्णित किया गया है। यहाँ इतना ही लिखना पर्याप्त है कि बेबीलोनिया प्रदेश पर काशी राजवंश ने पश्चात् अमुरों का राज्य हुआ तथा कई शताब्दियों तक रहा।

### नवीन बाबुल राज्य —

अमुर जाति व राजाओं ने बहुत लम्बे काल तक समस्त बेबीलोनिया को अपने अधिकार में रखा। किन्तु ७ वीं शती ई० पू० में फिर एक बार राज्य-परिवर्तन हुआ। ई० पू० ६०५ में नेबोपोलासर नामक एक बाबुली सरदार के नेतृत्व में बाबुली तथा शक मिद आदि जातियों के लोगों ने मिलकर अमुर राज्य पर आक्रमण कर दिया। इन दिनों अमुर राज्य पूर्व जसा तेजस्वी न रह गया था, बल्कि कमजोर एवं टूटा-फूटा स्थिति में था। अमुर राजा इस संगठित विरोध का सामना न कर सका तथा सभ्यता में पराजित हो गया। आक्रमणकारियों ने अमुर राज्य की राजधानी निनवेह पर भी अपना अधिकार कर लिया और इस प्रकार बेबीलोनिया में ही नहीं असीरिया में भी अमुर राज्य का अन्त कर दिया।

विजेताओं ने अब विद्यालय अमुर राज्य के टुकड़े करके आपस में रिसा चोट लिया। बेबीलोनिया पर विद्रोह व मुद्रा पैसा नेबोपोलासर का अधिकार हुआ। असीरिया अथवा अमुर देश पर पड़ोसी मिद या मिदिया प्रांतने अधिकार जमा लिया। पश्चिम के निचले भाग पर जिसने फरात की घाटी भी शामिल थी—बेबीलोनिया का ही अधिकार हुआ। इस प्रकार फिर एक बार बेबीलोनिया में बाबुली जाति के लोगों का अधिकार हो गया तथा पुराने बाबुली साम्राज्य के स्थान पर जिसका अन्त १६०० ई० पू० हो गया था फिर एक नये बाबुली साम्राज्य का उदय हुआ।

नया बालसरगालीय वंश का माना जाता है। अतः वास्तव में यह बेबीलोनिया में खान्द्री राजवंश की स्थापना थी। किन्तु इस समय बेबीलोनिया तथा खाल्दिपा में विरोध अन्त नहीं रह गया था। अतः यह बाबुली राजवंश ही समझा जाता है। इस समय में बाबुल राज्य की पुनः अच्छी उन्नति हुई। अमुर राज्य के समय में जो बाबुल नगर परगता परत कर दिया गया था उसका इस नये खाल्दीय वंश ने पुनः उद्धार किया। बहुत-सी पुरानी इमारतों की मरम्मत कराई गई तथा अनेक नई-नई इमारतें भी बनवाई गईं। बाबुल में मेहरावदार इमारतों का शारभ कुठ ऐलकों के मंत्राणुगार इसी समय में हुआ।



६०० ई० पू० से कुछ समय पूर्व बेबीलोन में नेबू चाडनेजार ( ६०४ ई० पू० ) नाम का प्रसिद्ध राजा गद्दी पर बैठा था। यह नवीन बाबुल राज्य के संस्थापक नेबू पोलामर का पुत्र था। मेसोपोटामिया के समस्त राजाओं में सबसे अधिक इमारतें बनवाने वाला यही राजा है। समस्त राज्य में उसकी इमारतों के अवशेष मिले हैं। उर में भी उसने अनेक इमारतों की मरम्मत कराई थी तथा पुनर्निर्माण कराया। इसके शासन-काल में बेबीलोनिया ने एक बार पुनः अपना पूरा गौरव बहुत कुछ प्राप्त कर लिया। इसके काल में बेबीलोनिया का राज्य समस्त शामपर पिल की सीमा तक दृढ़तापूर्वक स्थापित हो गया। फिनीशिया के टायर शहर पर भी उसने लम्बा घेरा डाला तथा ५८६ ई० पू० में जेरुसलम पर भी अधिकार कर लिया। वहाँ के मंदिर जलाये गये तथा अमरत्य नागरिक कैद किये गये। इस प्रकार नेबू चाड नेआर ने एक बार पुनः अपने देश बेबीलोन को एक महान् शक्तिशाली राष्ट्र बना लिया।

#### आरामनी, यूनानी तथा पल्लवी राज्य—

बेबीलोनिया में उक्त नवीन बाबुली राज्य थोड़े ही दिन चला। शीघ्र ही कुछ विदेशी शक्तियों ने मिलकर उस राज्य की समाप्ति कर दी। इन दिनों इरान या पारस में आखामनी वंश का राज्य स्थापित हो चुका था। उसके कई राजा बड़े शक्तिशाली हुए तथा उन्होंने अपना एक विशाल साम्राज्य स्थापित कर लिया। इसी वंश के एक राजा कुरुष ( साइरस ) ने एक बड़ी सेना लेकर बेबीलोनिया पर आक्रमण कर दिया। बाबुली सेनाएँ उसने आगे न टहर सकीं। बाबुल के राजा को कैद कर लिया गया तथा समस्त बेबीलोनिया पर पारस के शाह कुरुष का अधिकार हो गया। बाबुल एक बार पुनः विदेशियों के हाथ में चला गया। शाह कुरुष ने बेबीलोनिया की प्राचीन इमारतों को जो वहाँ की सभ्यता की द्योतक थीं, ढूँढ़-ढूँढ़ कर नष्ट किया।

पारसी साम्राज्य का अंत यूनानियों ने सिर्फ दूर महान् जय नेतृत्व में किया। तथा बेबीलोनिया भी यूनानियों के अधिकार में चला गया। यूनानियों के पश्चात् एक अन्य विदेशी जाति प्रायियों अथवा पल्लवों का अधिकार बेबीलोनिया पर हुआ। इन समस्त विदेशी जातियों की सभ्यताएँ अलग अलग थीं। उक्त विजयों के कारण सुमेरी बाबुली तथा असुर भयान् मेसोपोटामिया की सभी सभ्यताओं की समाप्ति हो गई तथा कुछ दिन बाद विस्मय भी होने लगी केवल पुरानी परम्पराएँ ही जाति रहीं। बेबीलोनिया की प्राचीन भूमि नद नद सभ्यताओं की भूमि बनी जिन सभ्यताओं के विलुप्त विवरण यहाँ अनावश्यक हैं।

#### बाबुली सभ्यता—भवन निर्माण —

बेबीलोन अर्थात् बाबुल नगर में जर्मन पुरातत्वविदों ने भूमि की खुदाई का जो कार्य किया उसमें बहुत से मकानों के खण्डहर प्राप्त हुए। अनुमान था कि उस समय के

मकान बहुत सीधे-साधे और कच्चे होते होंगे तथा उनमें ३-४ कमरे होते होंगे। किन्तु इसके विपरीत गुदाइ म प्राप्त अवशेषों से यह शक्त हुआ कि दजरत इब्राहिम के समय में भी—निनका काल १४००, १५०० इ० पू० का अनुमान किया जाता है तथा उससे भी पूर्व ( क्योंकि उक्त मकानों का निर्माण काल २१०० तथा १८८५ इ० पू० के बीच का अनुमान किया जाता है ) वहाँ के लोग ऐसे मकानों में रहते थे जिनकी दीवारें नीचे की ओर तो पक्की इटों की बनाई जाती थी, किन्तु ऊपर कच्ची इटों की रहती थी और इस भेद को छिपाने के लिए उन दीवारों पर पलस्तर कर लिया जाता था तथा उसके ऊपर सफेद पुताई करदी जाती थी। मकान प्रायः दो मंजिले होते थे और उनमें १३-१४ कमरे होते थे। मकानों के नीचे में खुला हवा आँगन भी रहता था, जिससे सब कमरों में हवा और रोशनी पहुँच सकती थी। मकानों में मारिया भी रहती थी। मकानों के एक कमरे में एक किनारे पर झूँगे की इकहरी तह का बनाया हुआ एक चूला बना दिया जाता था और इस चूले पर पीछे की दीवार से लगा हुआ वेदी जैसा एक ऊँचा स्थान होता था जो इटों का बना होता था। इस वेदी के ऊपर अथवा चमल में, दीवार में गुंटा हुआ एक ताब बना होता था। इसमें सम्भवतः देवता का चित्र अथवा उसकी मिट्टी की मूर्ति रखी जाती थी। परन्तु यह वेदी कुछ मकानों में ही होती थी सब में नहीं।

मकानों के पर्श के नीचे ही पक्की इटों का एक तल्लर बना रहता था जिसमें उस परिवार के लोग मरने पर गाड़ दिये जाते थे। बाबुल म यह विश्वास था कि परिवार के लोग मृत्यु के पश्चात् भी घर ही में रहते हैं। अतः यहाँ मकान के नीचे तल्लर में गाड़ देते थे तथा ऊपर के मकान में परिवार के जीवित लोग निवास करते थे।

स्थापत्य-कला की दृष्टि से दक्षिण परात की घाटियों के लोग भिन्न आदि के लोगों से कुछ भिन्नता रखते थे। मिस्र में पत्थर का अधिक प्रयोग किया जाता था किन्तु बेबीलोनिया के लोग इट का ही प्रयोग अधिक करते थे। बेबीलोनिया में स्थापत्य कला के मुख्य नमूने वहाँ के मंदिर हैं।

### बाबुली धर्म —

बाबुली धर्म पुराने टग के विचारों पर आधारित माना जाता है। इस धर्मका मुख्य अंग द्रुष्ट आत्माओं, भूत प्रेतों की स्थिति को मानना और उन पर विश्वास करना था। ये लोग जानते थे कि ये आत्माएँ ही घीमारो, दुष्टनायों, मृत्यु तथा सब प्रकार की मानवी आकृतिपूर्ण लाती हैं। उन्हें दूर करने के लिये वे जादू टाने का प्रयोग करते थे और मन्त्रे ताबीज बाँधते थे।

यह माना जाता है कि बेबीलोनिया के धर्म पर सुमेरी धर्म का विशेष प्रभाव था अथवा एक प्रकार से यह सुमेरी धर्म ही था। बेबीलोनिया के जो सबसे पुराने

अवशेष प्राप्त हुए हैं उनमें एनलिन अथवा बेल एक मुख्य देवता जान पड़ता है। बमद में वह नीचे के लोक अथवा लोक का देवता माना जाने लगा। उसकी पत्नी का नाम वेलेट था। इसी प्रकार समुद्र अथवा जल का देवता 'ईय' माना जाता था जो प्रारम्भ में शायद ईरान की खाड़ी का देवता था।<sup>1</sup>

वेवीलोनिया में हम्मूराबी के राज्य की स्थापना के बाद वहाँ के धर्म में भी थोड़ा परिवर्तन हुआ। हम्मूर वी वेवीलोन नगर का निवासी था तथा उसी नगर को उसने अपने राज्य की राजधानी बनाया। वह वेवीलोन के नगर देवता मरडुक का उपासक था और अपनी प्रत्येक विजय का श्रेय उसी अपने मरडुक देवता को ही दिया है। इससे वेवीलोनिया में मरडुक देवता की मायता बहुत बढ़ी। कुछ यूरोपिय विद्वानों के अनुसार यह मरडुक देवता एकी का पुत्र था जो सुमेर तथा बाबुल में जल का देवता माना जाता था।<sup>2</sup> श्री गोल्ड के मतानुसार यह मरडुक वास्तव में सूर्य देवता था जो पर्वतों और नदियों का शासक माना जाता था।<sup>3</sup> अय लोगों के मतानुसार बाबुल में सूर्य के प्रकाश का देवता 'शक्स' माना जाता था। यह सुख, स्वास्थ्य और समृद्धि का दाता समझा जाता था।

वेवीलोनिया में मंदिरों में जो देवताओं की उपासना होती थी उसने मुख्य अग मजन-कीतन थे। देवता की प्रशंसा में लम्बी लंबी स्तुतियाँ गाई जाती थीं जो सुमेरी भाषा में होती थीं। पश्चात्काल में इन सुमेरी स्तुतियों के साथ अक्कादी भाषा में उनका अनुवाद भी गाया जाता था जिससे सब साधारण लोग उन स्तुतियों का अर्थ समझ सकें।

### बाबुली साहित्य —

असुर राज्य की राजधानी निनेवेह की खुदाई में भिट्टी की ईंटों पर खोदकर लिखी हुई पुस्तकों का जो एक समूह प्राप्त हुआ जिसे पुस्तकालय ही कहा जाता है। उसमें दो बाबुली प्राचीन पुराण ग्रंथों का भी कुछ भाग मिले। एक ग्रंथ में 'सृष्टि की उत्पत्ति की कथा' दी गई है। इसमें बताया गया है कि मरडुक देवता ने जिस प्रकार एक भयंकर राक्षस को— जो प्राचीन काल के अधकार का प्रतीक माना जाता है—पराजित किया और इस प्रकार विश्व में शांति और व्यवस्था स्थापित की। मरडुक ने उस राक्षस

1 *A Concise History of Religion* F. J. Gould

2 *From the period of first Babylonian dynasty 2169 1870 hither to unimportant local god of Babylon Marduk son of Enki the water God became prominent and since it became capital of Sumer and Akkad and remained so until the end of their civilization he was the principal deity* *Encyclopædia Britannica*

3 *A Concise History of Religion*-F, J Gould

के शरीर को चीर कर दो टुकड़े कर डाले। आगे शरीर से उसने आसमान बनाया और उसमें तारे और चन्द्रमा जड़कर उसे सुन्दर बनाया तथा दूगरे भागमें यह भूमि बनायी। आगे कहा गया है कि हम प्रकार आकाश और भूमि बना ने के बाद मरदुक ने भूमि पर मनुष्य की सृष्टि की जिससे कि मनुष्यों द्वारा देवताओं की पूजा-अर्चना सप्त चलती रहे। दूसरे पुगण ग्रन्थमें उस 'प्रलय' की कथा वर्णित की गयी है जिसे परमेश्वरने पानी मनुष्यों को दण्ड देने के लिये भूमि पर भेजा था। इसमें बनाया गया है कि ६ दिन और ६ रात तक निरन्तर भयंकर जल-वर्षण होता रहा और जल ने समस्त भू-मण्डल को ढक लिया। भूमि ने समस्त निवासो उस जलमें डूब गये। केवल 'नूह' और उसने परिवार के साथ तथा विश्वेश्वर ही बच रहे जोकि एक नाव में बैठकर एक सुरक्षित स्थान पर पहुँच गये। बेबीलोनिया की यह पौराणिक जल-वर्षण-कथा लगभग वैसी ही है जैसी कि यहूदियों की 'पुरानी बाइबल' (ओल्ड टेस्टामेंट जेनेसिस) में दी गयी है।

सभ्यता की अन्य बातें —

ऐसा अनुमान है कि पृथ्वी लोग ज्योतिष विद्या पर विशेष श्रद्धा रखते थे तथा उन विद्यामें उनकी गति भी थी। ग्रहों का तथा ग्रहण का प्रभाव मनुष्यों पर पड़ना है ऐसा भी ये लोग मानते थे। सूर्य की गति का भी ये हिसाब लगा लेते थे तथा सूर्य और चन्द्रमा के ग्रहण के काल का भी हिसाब लगाकर ठीक ठीक बता देते थे।<sup>१</sup> बाबुल में चन्द्रमास और वर्ष का ही प्रचलन था। सात दिवने चार सप्ताहों का एक मास होता था। ये सात दिन सूर्य, चन्द्र तथा अन्य पाँच बाबुली ग्रहों के नाम पर रखे जाते थे। कुछ यूरोपीय विद्वान मानते हैं कि ज्योतिष में सिद्ध, वक्र, वृद्धि, आदि जो राशियाँ मानी जाती हैं उनका मूल बेबीलोनिया ही है और वहीं से सभ्यता ज्योतिष-विद्या सीखी।

कुछ यूरोपीय विद्वानों का यह भी अनुमान है कि सिंगाई तथा इन्डोनिशिया विद्या का आरम्भ सबसे पहले बेबीलोनिया में ही हुआ। दृग्मू राशियों आदि के सभ्य में यहाँ नहरों का एक जाल-सा बिछा हुआ था जहाँ माना जाता है तथा इन नहरों की रचना बड़े स्वरक्षित ढंग से की गयी थी। इनमें तीन मुख्य नहरें थीं जिनके द्वारा पानी नदी का पानी बेबीलोन के बीच से होता हुआ तत्रत्या नदी तक ल जाया जाता था।

कुछ लेखकों के अनुसार दृग्मू राशियों के सभ्य में लगभग २००० ई० पू० में बेबीलोनिया में कुशल चिरिगक तथा शल्य चिकित्सा भी थी।<sup>२</sup>

यद्यपि भी कुछ सुन्दर नमूने हम काल के प्राप्त हुए हैं। उर की गुम्बद में एक स्थान पर हाथी दाँत के लगभग १०० टुकड़े प्राप्त हुए। जब इन टुकड़ों को दन्तपूर्वक

1 History of Man and Hut'on We'setr p ७० ७१

2 " " " " p 81

द्रम से जमाया गया तो उनसे एक सु दर श्रु गारदान बन गया । उस पर चारों ओर नाचती हुई लड़कियों की शकलें उभारकर बनायी गयी थीं । यह श्रु गारदान सम्भवतः मेसोपोटामिया में नहीं बना होगा बल्कि सिडोन या टायर के फिनीशियन कारीगरों का बनाया हुआ होगा, क्योंकि हाथी दाँतके काम के लिये उन दिनों सिडोन, टायर आदि के फिनीशियन कारीगर ही अधिक प्रसिद्ध थे ।

बाबुली लोग यापार में भी कुशल थे । ऐसा पता लगता है कि बाबुल का व्यापार पूरन में भारत वष तक, पश्चिम में मिश्र तथा भूमध्यसागर के किनारों तक चलता था ।

पश्चात्तन्त काल में—राजा सिनाकिरब के काल में वेबीलोनिया में वैकिंग के कार्य का भी प्रारम्भ हुआ माना जाता है ।

### बाबुली सभ्यता का भारत से सम्बन्ध —

भारत तथा वेबीलोनिया का सम्बन्ध इतना प्रत्यक्ष तथा स्पष्ट तो नहीं दिखायी देता जितना भारत और सुमेर का दिखाई देता है । जैसा कि पूर्व अध्यायमें बताया गया भारत का सुमेर से प्रत्यक्ष सम्बन्ध दिखायी देता है तथा यह जान पड़ता है कि भारत के लोगों ने ही सुमेर में पहुँचकर भारतीय सभ्यता का प्रसार किया था । वेबीलोनिया पर भारत का प्रभाव अप्रत्यक्ष था अर्थात् भारतीय सभ्यताका प्रभाव सुमेरी सभ्यता पर पड़ा और सुमेरी सभ्यता का प्रभाव बाबुली सभ्यता पर । पूर्व में यह बताया जा चुका है कि बाबुली देवता प्रायः सुमेरियों के ही देवता थे और बाबुली मंदिरों में सुमेरी भाषा के गीत गाकर देवता की स्तुति की जाती थी । बाबुली लोगों ने जिस तिथि पत्र को स्वीकार किया वह भी वास्तव में सुमेरी ही था । सुमेर में प्राप्त हुए मोहरों जैसी मुहरें भी बाबुल में अनेक स्थानों पर प्राप्त हुई हैं ।

बाबुली लोग सामी जाति के थे जिस जाति का वेद-स्थल अरब माना जाता है । इसी कारण बाबुली लोगों की भाषा तथा सस्कृति भी सुमेरी भाषा और सस्कृतिसे भिन्न थी । किन्तु सुमेरी सस्कृति बाबुली सस्कृति से अधिक उच्च होने के कारण बाबुली सस्कृति पर काफी प्रभाव डाल सकी । इस प्रकार भारत का सम्बन्ध बाबुली सभ्यता से अप्रत्यक्ष रूप से था ।

वेबीलोनिया ने प्राचीन वंश को विद्वान लोग एक भारतीय वंश ही मानते हैं—यह पूर्व में बताया जा चुका है ।

वेबीलोनिया का भारत के साथ मुख्य सम्बन्ध यापारिक था । चावेरु ज्ञातक आदि पश्चात् सार्विक प्रथों में इस प्राचीन व्यापार का उल्लेख मिलता है । उक्त ज्ञातक में भारत से बाबुल देश को मयूरपक्ष जाने का उल्लेख मिलता है । बाबुल की प्राचीन भाषा में एक शब्द 'सि घु' भी था जिसके सम्बन्ध में विद्वानों का अनुमान है कि 'विघु' शब्द

तथा बाद का यूनानी भाषा का शब्द 'सिडोन' शब्द सिंधु देश के बने बफास के बपड़े के लिये ही थे। १ 'सिंधु' का अर्थ था 'सिंधु देश की उपज'। जेम्स केनेडी के अनुसार २ सातवीं तथा छठवीं शताब्दी में ई० पू० में भारतीय द्रविड़ लोगों का एक उपनिवेश वेबीलोनिया में भी था। सातवीं अठवीं शताब्दी ई० पू० में ही नहीं बरिफ पता चलता है कि ई० पू० ३००० से भी पूर्व भारत का तथा भारत के द्रविड़ों का वेबीलोनिया से व्यापार चलता था और इसी के पल्लव रूप अनेक द्रविड़ शब्द पश्चिमी भाषाओं में प्रचलित हो गये। विद्वानों का विचार है कि वेबीलोन तक ही नहीं, भारत के द्रविड़ों का व्यापार यूनान तथा फिलिस्तीन आदि देशों तक भी चलता था। यूनानी लोग चावल और काली मिर्च द्रविड़ों से ही लते थे। डा० अल्तेकर का विचार है कि चावल के लिये ग्रीक भाषा में 'अगजा' और लैटिन भाषा में 'अरीजा' शब्द की उत्पत्ति तमिल शब्द 'आसि' से हुई है, जिसका अर्थ चावल होता है। इसी से बाद में अंग्रेजी शब्द 'साइस' की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार यूरपीय भाषाओं का 'पप्पर' (pepper) शब्द द्रविड़ शब्द 'पिप्पति' से उत्पन्न हुआ है।

'तमिल साहित्य तथा सभ्यता' के लेखक का मत है कि फिलिस्तीन के साथ दक्षिण भारत का व्यापारिक सम्बन्ध कम से कम तीन हजार वर्ष पुराना है। एक हजार ई० पू० में टायर (फिनीशिया) का राजा हिरम तथा हीयू (यहूदी) राजा डेविड ने (जो मोल्दीमन का पिता था) जहाजों का एक बेड़ा तैयार किया था। यह बेड़ा पश्चिम में एक नगर खाना होकर मालाबार तट पर मुजरिम के बन्दरगाह में पहुँचता था और भारत से चीनी शर्भी दान, नार और मोर पक्षियों का लेक प्राप्त जाता था। मोल्दीमन ने भी जिसका समय ईसा से ६५० वर्ष पूर्व माना जाता है अपने उपयोग के लिये उक्त बस्तुएँ भारत से प्राप्त की थी ऐसा पता लगता है।<sup>३</sup>

उक्त वर्णनों से ज्ञात होता है कि भारत के द्रविड़ लोग प्राचीन काल में नौकायन तथा समुद्री व्यापार में कुशल तथा अप्रसन्न थे। बाहर जायावाली बस्तुओं में सामान की लकड़ी भी होती थी। तमिल साहित्य में समुद्र तथा समुद्री व्यापार का काफी उल्लेख मिलता है।

सातवर्ष यह कि भारत तथा बाबुल अथवा फिलिस्तीन देश का व्यापारिक सम्बन्ध इससे कम से कम ३-३। हजार वर्ष पूर्व पुराना है तथा उस समय दोनों देशों में काफी व्यापार चलता था।

१ प्राचीन भारतीय वेद-शां—डा० मोदीचन्द्र पृष्ठ ३

२ खरनल भवन राजल ऐतिहासिक गोवापत्री १६५६ में प्रकाशित लेख।  
Early commerce of Babylon with India १००-६०० B. C.

३ तमिल साहित्य और सभ्यता—अ. व. प. प. प. पृष्ठ २०४-५

## घोड़ा भारत से ही बाबुल पहुँचा—

हम देख चुके हैं कि प्राचीन सुमेर में भारतीय रथ तो बनने लगा था किन्तु घोड़ा वहाँ बहुत बाद में पहुँचा तथा वह भारत से ही पहुँचा। सुमेर से ही घोड़ा बेबीलोनिया में पहुँचा। यूरोपीय लेखकों का अनुमान है कि १७०० ई० पू० के लगभग घोड़ा बेबीलोनिया में और वहाँ से मिस्र तथा यनान आदि देशों में पहुँचा, जहाँ कई शताब्दियों तक उसका उपयोग युद्ध में तथा युद्ध के रथों में होता रहा। इससे पूर्व वह बाबुली लोगों को अज्ञात था तथा उसी प्रकार बारहवें राजवंश के मिस्री लोगों को भी अज्ञात था। दूसरी ओर आर्यों को (ईरान में) वह अत्यंत प्राचीन काठ से परिचित था। अतः यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि ये लोग ही घोड़े को अपने साथ पश्चिमी एशिया से लाये। जिस देश में अथवा दिशा से यह घोड़ा पश्चिमी एशिया में पहुँचा उसका संकेत इस बात से मिलता है कि बाबुल से लोग बिना शब्दों को मिलाकर 'घोड़ा' शब्द लिखते थे, उनका वास्तविक अर्थ होता था 'पूरब का गधा'।

ऐसा अनुमान होता है कि घोड़ा पश्चिमी एशिया में पारस से पहुँचा तथा पारस के आर्य लोग ही उसे वहाँ ले गये। पारस अथवा ईरान में निश्चय ही यह भारत से गया होगा। पूर्व में बताया गया है कि भारत में ही आर्यों की कुछ जातियाँ पारस्परिक संघर्ष के कारण अपना देश छोड़कर इरान में चली गई थीं। ये लोग अपने साथ घोड़े भी ले गये होंगे तथा जब इनमें से कुछ लोग पश्चिम की ओर बढ़े तब अपने साथ घोड़ों को भी ले गये और इस प्रकार भारत से ही घोड़ा पश्चिमी एशिया में तथा यूरोप में पहुँचा।

## मना शब्द—

पूरब के गधे के समान ही 'मना' शब्द का प्रयोग भी बेबीलोनिया में भारत से ही पहुँचा जान पड़ता है। ऋग्वेद में 'मना' शब्द आया है। यह 'हिरण्यया' शब्द के साथ मिलता है, जिसका सम्बंध सोने की तौल के साथ शात होता है। बेबीलोनिया तथा असीरिया के इतिहास में 'मना' शब्द का प्रयोग अनेक स्थलों पर मिलता है। यह शब्द ग्रीक और लैटिन भाषाओं में भी पहुँच गया है। ग्रीक भाषा में मना और लैटिन में 'मिना'। कुछ विद्वानों ने अनुमान लगाया है कि यह शब्द मूलतः सार्वभौमिक है और वहाँ से भारत में आया है तथा आर्य भाषाओं में उसका प्रचार हुआ।<sup>X</sup> उनका अनुमान है कि यह शब्द या तो मोहेजोदहों की सुमेरी भाषा से आया अथवा आर्य लोग कोलिया से सीधे ही भारत में इस तौल को अपने साथ ले आये।

§ *Encyclopedia Britannica* Vol 17 Persia

X वेदों में केल्डियन और पारसी शब्द डा० हेमचंद्र जोशी, सगम दि० १७२-१९५२

परन्तु जैसा कि पूर्वमें अनेक स्थलों पर बताया गया है अनेक यूरोपीय तथा भारतीय विद्वान भारत की प्राचीन सभ्यता सम्बन्धी अनेक बातों को विपरीत दृष्टिकोण से देखते हैं तथा उसी विपरीत विचार धारा का ही परिणाम यह कल्पना भी है।

श्री अविनाशचन्द्र दास का विचार है कि 'मना' प्राचीन भारत में एक सन्ने के सिक्के का नाम था तथा सम्भवतः भारत ने पणि लोग इस सिक्के को भारत से ब्रुल देश में ले गये और इस प्रकार इसका वहाँ प्रचार हुआ। वहीं से आगे चलकर यह सिक्का यूनान आदि देशों में पहुँचा। श्री दास का यह भी कथन है कि यह सोचना एक भूल है कि मना बेबीलोनिया का सिक्का था तथा उसे वहाँ से द्रविड़ लोग भारत में लाये तथा सप्त सिंधु में इसका प्रचार किया।<sup>२</sup>

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि मग़रि बेबीलोनिया की सामी जाति भारतीय आर्य जाति से भिन्न थी, बेबीलोनिया की सामी भाषा तथा सामी सस्कृति भी भारतीय आर्य भाषा तथा आर्य सस्कृति से भिन्न थी, फिर भी सुमेर में प्रचलित आर्य सभ्यता का बेबीलोन की सामी सभ्यता पर काफी प्रभाव पड़ा। साथ ही बेबीलोनिया आदि देशों के साथ भारत का व्यापारिक सम्बन्ध बहुत प्राचीनकाल से था।





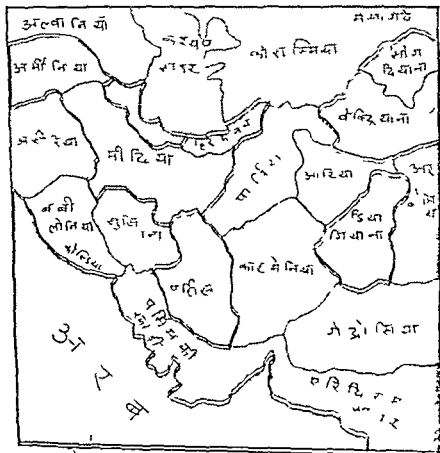
## अध्याय ४

### असोरिया अथवा असुर देश की सभ्यता

यद्यपि कालक्रम ने अनुसार सुमेरी सभ्यता के पश्चात् मिस्र की सभ्यता सबसे अधिक प्राचीन मानी जाती है, किन्तु भौगोलिक तथा ऐतिहासिक क्रम की दृष्टि से बाबुल तथा असुर देश, ( बेबीलोनिया तथा असीरिया ) तथा उनकी सभ्यतायें ऐसी मिली जुली हैं कि उन्हें एक ही क्रम में ले लेना उचित जान पड़ता है।

मेसोपोटामिया और बेबीलोनिया का उत्तरी भाग जो श्याम ( सीरिया ) के रेगिस्तान तक फैला हुआ है और रेगिस्तान जैसा ही सूखा है 'असीरिया' कहलाता है। परन्तु 'असीरिया' नाम उतना प्राचीन नहीं है जितना कि उक्त देश प्राचीन है। इस देश का प्राचीन नाम क्या था तथा उससे प्राचीन निवासी कौन थे इसका ठीक ठीक पता नहीं लगता। एक मत के अनुसार असुर देश के सबसे प्राचीन निवासी 'सुमारई' ज्ञानि के ये जो ज्ञाति बाद में मेसोपोटामिया के कई भागों में असुर के उत्तर पहाड़ी भागों में तथा जागरोश पर्वत श्रेणियों की घाटियों में बस गई। इसके बाद अगादे के सारनौग के समय से कुछ पू्व अर्थात् २७०० ई० पू० के लगभग इस दजला नदी की घाटी में एक ऐसी जाति आकर बसी जो अपने को 'असुर' कहती थी। इ होने अपनी प्रारम्भिक बस्ती का नाम भी असुर रखा और जब उन लोगों ने एक बड़े भू भाग पर अधिकार कर लिया तब उनका समस्त देश भी 'असुर' देश कहलाने लगा। बाद में 'यूनानियों' ने इस असुर देशका नाम 'असीरिया' रख दिया और तब से यूरोपीय लेखक उसे इसी नाम से पुकारते हैं।

'असीरिया' एक प्लेटो अथवा ऊँचा भू भाग है। इसकी मुख्य तथा सबसे प्राचीन बस्ती 'असुर' कहलानी थी। आजकल टिगरिस ( दजला ) नदी के दाहिने किनारे पर 'किल्ह नोरघाट' नाम का एक छोटा सा गाँव है जहाँ के पड़ोस में एक प्राचीन नगर के खण्डहर मिले हैं। अनुमान किया जाता है कि यही प्राचीन असुर नगर था। इसी को भिगाद्दकर 'अशुर' 'ओगर' आदि नाम रख दिये गये थे। प्राचीन काल में यहाँ भी बाबुली अथवा स्वल्दी नगरों के समान पुजारी राजाओं का राज्य था अर्थात् नगर के



अस्तौ दिवा तथा  
पश्चिम एशिया के  
उत्तर २२  
(आधीन)

न तत्रि-एवम् आ० ए० २१० १२० से



शासक ही मंदिर के पुजारी भी होते थे। किंतु असुरों को इस भूमि में बहुत समय तक प्रधानता न मिली, क्योंकि अक्रान् के राजाओं का शासन सुदृढ़ था फिर भी वे असुर लोग अपनी सभ्यता तथा कला का विकास स्वतंत्र रूप से करते रहे।

ऐसा पता चलता है कि असीरिया की यह भूमि प्रारम्भ में अपनी प्रधान भूमि बेबीलोनिया का ही एक भाग समझी जाती जाती थी तथा उसी के द्वारा शासित होती थी। सम्भवतः बेबीलोनिया का एक विशेष अधिकारी असीरिया के प्रबंध के लिये नियुक्त किया जाता था। बाद में असीरिया ने राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त कर ली। यहाँ के कुछ मंदिरों के खण्डहरों में ऐसी इंटें मिली हैं जिन पर 'इशमी दागान' और उसका पुत्र 'शम्भ रमन' के नाम खुदे हुए मिले हैं। बाद के एक राजा ने भी उक्त नामों का उल्लेख किया है जिससे अनुमान होता है कि उक्त दोनों राजा १८०० ई०पू० के लगभग हुए। बाद में जब बाबुल राज्य कमजोर होने लगा तो असुर राजाओं को अपनी शक्ति बढ़ाने का अवसर मिला तथा असुर देश का नाम प्रकाश में आने लगा। असुरों ने दजला नदी की घाटी में अपनी जो बस्ती बसाई थी वह भी शीघ्रता से बढ़ती गई। धीरे-धीरे आसपासकी बहुत सी भूमि पर भी उ होने अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया और अपना एक छोटा सा स्वतंत्र राज्य ही बना लिया। इनकी बढ़ती हुई शक्ति देखकर आस पास के लोग इनसे भयभीत होने लगे। १६०० ई०पू० के लगभग जब दक्षिणी राज्य बेबीलोनिया काफी कमजोर हो गया था, असुरों ने दक्षिण की भूमि पर भी अधिकार करना शुरू कर दिया और धीरे-धीरे उनका राज्य एक साम्राज्य के रूप में बलने लगा। फिर बढ़ते बढ़ते वह साम्राज्य इतना बड़ा हो गया कि उसका विस्तार ३६० मील लम्बाई और १७५ मील से ३०० मील की चौड़ाई में हो गया तथा कुल भूमि का क्षेत्रफल ७५००० वर्गमील हो गया। इस समय असुर साम्राज्य का विस्तार पारस की खाड़ी से लगाकर बक्ष्य सागर (कैस्पियन सी) भूमध्यसागर तथा नील नदी तक हो गया था। इतिहास में प्रथम बार मेसोपोटामिया से मित्र तक एक शासन स्थापित हुआ।

### इतिहास—

जब एक ओर बेबीलोनिया राज्यकी शक्ति घट रही थी तथा दूसरी ओर असीरिया की शक्ति बढ़ रही थी तो दोनों में अधिक समय तक सन्तुलन होना भी असम्भव था। यद्यपि ऐसा जान पड़ता है कि असुर लोग धीरे-धीरे भाषा, संस्कृति, आचार व्यवहार आदि में बाबुली लोगों से मिल-जुल गये थे तथा बाबुली लोगों की भाँति वे भी साम्राज्य के माने जाने लगे थे किंतु राजनीतिक प्रतिस्पर्धा के कारण दोनों में मैत्र बना रहना कठिन था। दोनों में लड़के का आरम्भ सम्भवतः सीमा के प्रांत पर हुआ, किंतु प्रांत

पड़ना है बिना अधिक लड़ाई भगड़े के दोनों ने आपस में सधि करली। दोनों देशों में पहिली सधि हाने का उल्लेख १४५० ई० पू० में मिलता है जबकि असुर और बार दुनियाश (बबीलोन) के राजाओं ने सीना सम्म घी एक सधि करके उसे पालन करने का वचन दिया। इस सधि में यह स्पष्ट है कि लगभग १४०० ई० पू० असुर देश ने स्वतंत्र प्रभुसत्ता प्राप्त करली थी। इससे पहले असुर देश का जो उल्लेख मिलता है वह मिस्र न सम्म में है। मिस्र के राजा घुतमेस तृतीय ने मेग्निट्टो का युद्ध जीतकर फरात नदी तक के इलाक पर अपना अधिकार कर लिया था (१५/४ ई० पू०)। उसे मेट देने वाले देशों में असुर का भी नाम है। किन्तु उस समय तक असुर एक स्वतंत्र राज्य नहीं बना था, क्योंकि वर्धा के शासक का उल्लेख एक सामांत के रूप में किया गया है।

इसके थोड़े दिन बाद ही स्थिति बदल गई जान पड़ती है, जैसा कि १४५० ई० पू० की उक्त सीमा सधि से स्पष्ट होता है। बेबीलोनिया और असीरियाके राजाओं में १४०० ई० पू० में फिर एक सधि हुई। इस समय तक असुर देश एक पूरा स्वतंत्र राज्य बन गया था तथा दोनों देशोंमें गहरी मित्रता हो गयी। यहा तक कि बेबीलोनिया के राजा बरना बरियाश ने, जो काशीवश का था असीरिया के राजा की लड़की से विवाह भी कर लिया। किन्तु यह विवाह बेबीलोनिया के लिये हितकर सिद्ध नहीं हुआ, क्योंकि इसके कारण बेबीलोनिया के मामलों में असीरिया का सैनिक हस्तक्षेप आरम्भ हो गया। कारण यह हुआ कि बरना बरियाश की मृत्यु के बाद जब उसका पुत्र—जो असुर स्त्री से उत्पन्न हुआ था—बेबीलोन की गद्दी पर घटा तो राजवश के अर्थात् काशी जति के गर्विले लोगों ने विद्रोह कर दिया—प्रत्यक्षत इसी कारण कि वह एक असुर स्त्री का पुत्र था—और अपने नये राजा की हत्या करके अपनी पसन्द के एक दूसरे व्यक्ति को गद्दी पर बिठा दिया। असीरिया का उस समय का राजा—जिसका नाम असुर उवल्लिन था—अपने रिश्तेदारों के साथ हुए इस दुर्घटनको सहन न कर सका। उसने अपने भानजे की हत्या का बदला लेने के लिये बेबीलोन पर चढ़ाई कर दी, विद्रोहियों को हराया और बरना बरियाश के दूसरे पुत्र को गद्दी पर बिठाया। इस प्रकार बेबीलोनिया के मामलों में असीरिया का हस्तक्षेप आरम्भ हो गया।

असीरिया का बल ज्यों-ज्यों बढ़ता गया त्यों-त्यों आस पास के देशों पर आक्रमण करके वह जहाँ पर अधिकार करता गया। इन दिनों खत्तियों का साम्राज्य नडा बलवान था तथा मिस्र आदि देशों से बरानर उसके युद्ध होते रहते थे। असीरिया के साथ भी खत्तियों का सघन आरम्भ हुआ और दीर्घ काल तक चला। अन्त में ७०० ई० पू० के लगभग इन सघनों के फलस्वरूप खत्ती या लिच्छाई साम्राज्यका अन्त हो गया।

असीरिया के इतिहास में १३०० ई० पू० का काल महत्वपूर्ण है। इसी समय के लगभग एक अमुर राजा द्वारा बेबीलोनिया पर एक बड़ी विजय प्राप्त करने का उल्लेख मिलता है। यह राजा तुकुली निनेष था जो शात्मान सेर प्रथम का पुत्र था। इस विजय का पता ७०० ई० पू० के एक उत्खनन से चलता है। निनेषेह तथा अ व स्थानों में प्राप्त हुए अवशेषों से ज्ञात होता है कि ७०० ई० पू० के लगभग अमुर राजा सिनाकिरवने बेबीलोनिया पर आक्रमण किया था तथा पूर्ण विजय प्राप्त की थी। उसने बबुल नगर को भी लूटा था। इसी लूट में उसे असीरिया के ६०० वष के पुत्र व राजा तुकुली निनेष के नाम की अगुठो (मुहर) भी प्राप्त हुई जिससे उक्त ऐतिहासिक विजय का पता लगा अर्थात् उक्त मुहर से ज्ञात होता था कि १३०० ई० पू० के लगभग शात्मान सेर प्रथम के पुत्र तुकुली निनेष ने बेबीलोनिया पर एक महत्वपूर्ण विजय प्राप्त की थी। यह मुहर निनेषेह में ही रही होगी कि तु यह किसी प्रकार बाबुल बागों के द्वय लग गई और ये उमे अवन गई ल गये। व द में जब ७०० ई० पू० के लगभग सिनाकिरव ने पुन बाबुल पर आक्रमण किया और नगर को लूटा तब उसे उक्त मुहर भी प्राप्त हुई और वह उसे असीरिया के लिये गौरवपूर्ण होने के कारण अपने साथ निनेषेह ले आया। इस बात का उल्लेख सिनाकिरव ने बड़े गर्व के साथ अपनी विजय गाथा में किया है।

तुकुली निनेष के पिता शात्माने सेर ने ही कनाह नामक एक नगर बसाया था जो अमुर और निनेषेह के बाद इस राज्य का तीसरा बड़ा शहर हुआ तथा इसी वंश के कई राजाओं की राजधानी भी रहा।

#### प्रथम अमुर साम्राज्य—

तिगरिख तारीख के अनुसार अमुर के समीप एक चट्टान पर एक राजा की मूर्ति बनी हुई है जिस पर लिखा है—'महान ईश्वर अमुर, शमश और रमन की कृपा से मैं तुकुली पले शीरा, अमुर देश के राजा ने जो पश्चिम के महासागर से नैरी की भूमि तक का विजेता है, तीसरी बार तैरी की भूमि पर आक्रमण किया'। यह इस प्रदेश के उत्तरी भाग में अमुरों की विजय का सर्वम पुराना स्मारक है और एक ऐसे गाथा का है जो उस देश का शासन में एक महान शक्ति था। इस तुकुली पले शीरा का दूसरा नाम तिगरिख विजेता प्रथम भी है। यह कारखी शताब्दी के अन्त ( ११००-११०० ई० पू० ) तक रहा। इसने पलात नदी के बाग तिला, लामों को भी हराया था तथा इस युद्ध में तिगरिख नाम (जो ही हपरा हिलाइत) भारी हार में मारे गये थे। इसने बेबीलोन से भी युद्ध किए परन्तु इन युद्धों में उस सफलता नहीं मिली। तिगरिख विजेता का राज अमुरों का प्रथम अगुठो पुगना साम्राज्य कहलाता है।

इसकी शक्ति ११०० ई० पू० में उत्तरी तिगरिख घाटी का देश (असीरिया) पूर्ण अधिकार हो गया था। एक के बाद एक सभी राजा योग्य और पलात हुए। ये राजा समस्त

किसी नये राजवंश के थे। १० वीं शताब्दी ई० पू० के मध्य की एक मूर्ति खुदाई प्राप्त हुई है। यह मूर्ति तुकुन्नी निनेय द्वितीय की है जो इस नये राजवंश का तीसरा राजा था। इसने अपनी मूर्ति तिगलाय फिलेसर प्रथम के समीप में ही स्थापित करायी। उसका पुत्र असुर्ना—जिरपाल और अधिक शक्तिशाली हुआ। इससे अपने युद्ध में तथा विजयों द्वारा असुर देश को पुराने वैभव पर ही नहीं पहुँचाया, बल्कि उसे और भी अधिक बढ़ाया। इसका काल ६ वीं शताब्दी (८८४-८६० ई० पू०) समझा जाता है। इसके एक शिलालेख में नैरी भूमि पर किये गये आक्रमण का उल्लेख है। इससे शक्य होता है कि असुर्ना—जिरपाल ने शत्रुओं के सुदृढ़ दुर्ग को जीत कर समस्त रक्षकों को बर्तल कराया और फिर उनके सिरों का एक ऊँचा स्तूप बनवाया। उस नगर के एक राजकुमार को पकड़कर वह अपने घर अरदेग में लाया, वहाँ जिंदा ही उसकी खाँसी उतरवाई और उस राल को नगर की दीवार पर टँगवा दिया। युद्ध में बंदी बनाये गये सैनिकों तथा अन्य लोगों के हाथ, पैर, नाक कान कटवाना और फिर उनके ढेर लगवाना इस असुर राजा का विशेष शौक था। इसी प्रकार उनकी आँखें निकलवाना तथा लड़कियों को जीवित जलाना उसे विशेष प्रिय था।<sup>१</sup>

### असुर्ना—

जिरपाल ने एक अच्छा कार्य यह किया कि युद्धों के बीच में उसे जो समय मिलता उसमें उसने कलाह नगर को फिर से बसाया। इस शहर की स्थापना पूर्व में शालमनसैर प्रथम ने की थी परन्तु बाद में यह नगर अवनति को प्राप्त हो गया तथा उजड़ने लग गया। असुर्ना जिरपाल ने उसकी फिर से मरम्मत कराई तथा नगर को अनेक प्रकार से सजाया। उसने वहाँ अपनी दूसरी राजधानी भी बनाई। इस प्रकार कलाह नगर उस समय में फिर से उन्नति को प्राप्त होगया। नगर में कई नई इमारतें भी बनीं। इसके लिए उसे एक उपाय करना पड़ा। पहले वह जिन युद्धविदियों का मरना देता था तथा उनमें कटे हुए हाथ पैर के ढेर लगवाता था अब वह उन विदियों को इमारतें बनाने के काम लगाने लगा। इन्हीं विदियों से उसने कलाह की मरम्मत कराई तथा अनेक महल भी बनवाये। उसने महलों में लगी हुई लकड़ी पर नफाशी का अच्छा काम कराया, दीवारों पर चित्रकारी करायी तथा अनेक मूर्तियों से भी महलों को सजाया। उसने फर्श पर चोरों की जो मूर्तियाँ महलों में स्थापित करायी वे कला के उत्कृष्ट नमूनों में गिन जाती हैं।

१ नैरी—सम्भवतः सीरिया अथवा शाम का कोई भाग था जहाँ कोई असुर राजा इससे पूर्व न पहुँचा था।

असुरा-जिरपाल के पुत्र शालमाने सेर द्वितीय ने ८६० से ८०४ ई० पू० तक अर्थात् लगभग ३६ वर्ष तक राज्य किया। उसके राज्य में असुर देश पूरा वैभव तथा उन्नति पर रहा। इस समय असुर साम्राज्य का विस्तार तिगमिस नदी के उदगम से लेव नान देश तक तथा समुद्र तक हो गया था। उसने यहूदियों के देश 'इज्जगार्ल' पर भी आक्रमण किया तथा महान 'असुर' की कृपा से उसपर विजय प्राप्त की। उसने भी कन्हा नगर में कुछ नद इमारतें बनवाई तथा पुरानी इमारतों की मरम्मत कराई।

शालमाने सेर द्वितीय के पुत्र असुरा-जिरपालका दूसरा पुत्र शम्भी रमन राजा हुआ और फिर शम्भी रमन का पुत्र रमन निरारी तृतीय राजा हुआ। इसने भी शांति पर हमला किया तथा सफलता प्राप्त करने पर अपने दादा के समान कीर्ति अर्जित की। इस रमन निरारी का विवाह शम्भू रमत नामकी एक राजकुमारी से हुआ। यूनानी लोग इस राजकुमारी को 'सेमिरेमिस' कहते हैं। इस राजकुमारी के सम्बन्ध में अनेक दंत-कथायें प्रचलित हैं। असुर माया में शम्भू रमत का अर्थ फारसी (एक चिड़िया) होता है। अब यह कथा प्रचलित हुई कि यह राजकुमारी अपने अन्त समय में फारसी बन गई।

असुर देश में फारसी एक बड़ी पवित्र चिड़िया मानी जाती है क्योंकि यह देवी इस्तर की प्रिय चिड़िया समझी जाती है। शम्भू रमत के फारसी बन जाने के कारण उसकी भी पूजा एक देवी के समान होने लगी। एक अन्य कथा यह भी प्रचलित है कि यह रानी शम्भू रमत अथवा सेमिरेमिस ने ८०० ई० पू० के लगभग एक बड़ी समुद्री सेना लेकर भारत पर आक्रमण किया था, उसके देशों में चार हजार सशस्त्र नौकाएँ थीं किन्तु सिन्धु के घाटों ने उसका इस्तर मुकाबिला किया और सब की सब नौकाएँ नष्ट कर दीं।

यूनानी इतिहासकार ऐरियन के कथनानुसार सिन्धु नदी सब भारत पर आक्रमण करने आ रहा था तब यहूदियों ने उसे भारत पर आक्रमण करने की सलाह देते हुए बताया था कि किस प्रकार सेमिरेमिस की विशाल सेना में से केवल २० सैनिक भी भेज कर पावे थे और किस प्रकार सेमिरेमिस रानी बड़ी कठिनाई में अरानी जात बचा सकी थी।

इसके बाद के राजाओं में सारथोन द्वितीय अधिक प्रसिद्ध हुआ है। उसने आस पास के कई देश जीते। उसने पड़ोसी इज्जगार्ल के राजा पर—जिसने विद्रोह कर लिया था—भ्रमण किया और ७२० ई० पू० में उसकी राजधानी समरिसा पर अधिकार कर लिया। उसने बेबीलोन के सान्दी राजा पर भी विजय प्राप्त की। कुछ वर्ष पूर्व ६६१ ई० में प्राचीनी पुरातत्व शास्त्रियों के एक दल को कन्हा नगर की खुदाई में एक पत्थर की बड़ी ईंट पर लिखा हुआ एक लम्बा लेख प्राप्त हुआ जिसमें इस सारथोन



द्वितीय की विजय यात्रा का लम्बा वर्णन था—किस प्रकार उसने आस पास के अनेक देशों को—जिनमें स कुछ थोड़े समय पूर्व ही असुर साम्राज्य से स्वतंत्र हो गये थे—विक्रम करके पुनः अपने अधिकार में किया, किस प्रकार अनेक स्थानों पर उसे नजरें, भेंटें प्राप्त हुईं । किस प्रकार उसने अनेक नगरों को लूटा तथा अग्नि के समर्पण किया तथा किस प्रकार अपार सम्पत्ति उसने हाथ लगी ।

यह साग्वीन द्वितीय 'असुर देश का गौरव' कहलाता है क्योंकि अफ़ाद के राजा सारगौन के समान ही उसने भी अनेक सफलताएँ प्राप्त कीं । किन्तु किसी व्यक्ति ने—अनुमानतः उसकी ही प्रजापति से किसी मनुष्य ने उसकी हत्या कर दी और इस प्रकार उसके बढ़ने हुए प्रभान का अंत दिया ।

साग्वीन का पुत्र सिनाकिरिव ( सिन आकी-रिव ) अब गद्दी पर बैठा । यह अपने पिता से भी अधिक बलवान तथा वीर हुआ तथा असुर राजाओं में सबसे अधिक प्रसिद्ध है । यह ७०४ ई० पू० से ६८९ ई० पू० तक रहा । इसने निनवाह में—जो कि बहुत समय से उपेक्षित पड़ा था—पुनः राजधानी स्थापित की । उसने वहाँ कई महल बनवाये और पुरानी दमारतों की मरम्मत कराई । इसने बेबीलोन और एलाम की सम्मिलित सेनाओं से कई युद्ध किये । जागरोस पहाड़ियों में बसी हुई युद्धप्रिय तथा बलवान काशी जाति से भी इसने युद्ध किये । मिद जाति के लोगों को भी इसने पराजित किया ।

इसके बाद के राजाओं में असुर बानीपाल अधिक प्रसिद्ध हुआ । इसका काल ६६८ ई० पू० से ६२६ ई० पू० तक का सम्झा जाता है । उसने अपने पड़ोसी एलाम पर हमला किया और विजय प्राप्त की । इस युद्ध में उसने बड़ी क्रूरता दिखाई । गाव के गाव और नगर के नगर जहाँ जहाँ वह गया, नष्ट कर दिये गये, मकान गिराये गए लूटे गये और फिर उनमें आग लगा दी गई । शत्रुपथ के पकड़े गये योद्धाओं को क्रूरतापूर्वक मार डाला गया । एलाम की राजधानी सुषा भी—जो एक पवित्र नगरी गिनी जाती थी और जहाँ एलाम वालों का प्रधान मंदिर था—लूट पाट से न बची । वहाँ के मंदिर अपवित्र किये गये, मुख्य देवता शुशनाक तथा अय देवी देवताओं की मूर्तियाँ असीरिया में ले जाई गई तथा मंदिर खण्डहर कर दिये गये । चरता की सीमा वहाँ तक पहुँची कि एक राजा की मूर्ति के होठ और हाथ इसलिये काट डाले गये कि उसने हाथों में असीरिया से युद्ध करने के लिये एक धनुष-बाण दिया हुआ था । ये कृत्य करने के पश्चात् असुर बानीपाल ने बड़े गर्व से लिखा—मैंने पानी पीने के सब कुर्य सुखा दिये, एलाम का जिला मैंने नष्ट भष्ट कर दिया, दासता, अकाल और विनाश मैंने शत्रुओं के जिम्मे दिये । एलाम के हजारों नागरिकों को जिन्होंने युद्ध में कुछ भी भाग लिया था वह पकड़ कर असीरिया में ले गया ।

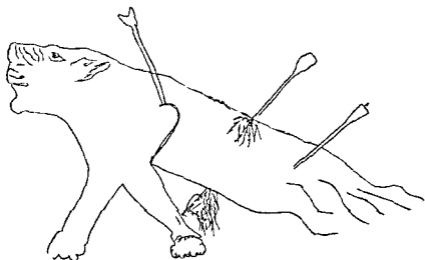
इस प्रकार एलाम राज्य तथा उसकी सुप्रसिद्ध एवं समृद्ध राजधानी सुसा नगरी का अन्त हो गया। देशों की सूची के आगे से उसका नाम मिट गया, एलाम का राजा जगन्नों में भाग गया। उसने साथ खालिदिया के पव राजा का एक नाती भी था, जिसका नाम नेबू वेल् जिक्की था। अमुर बनीपाल के दून इन दोनों का पकड़ने का प्रयत्न कर रहे थे। नेबू पकड़े जाने का परिणाम जानता था। अतः उसने अग्न हथियार ले चलनेवाले नौकर से कहा कि अपनी तलवार से तू मुझे मार डाल। किन्तु नौकर ने भी ऐसी ही इच्छा प्रकट की। अतः नेबू और नौकर दोनों ने एक दूसरे के शरीर में तलवार मोंक कर एक दूसरे की हत्या कर दी। एलाम के राजाने उन दोनों की लाशें अमुर बनीपाल के दूतों को सौंप दी। शायद इस आशा में कि उसका इस कर्म से शायद अमुर बनीपाल उसमें प्रसन्न हो जायगा। अमुर बनीपाल की क्रूरता यहाँ तक बढ़ी हुई थी कि उसने राजकुमार की लाश को दफनाया नहीं बरिक् उसका सिर काटकर एक पड़े से टंगवा लिया। असीरिया में बनी हुई परत की ऐसी मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं जिनमें बताया गया है कि अमुर बनीपाल अग्न शशी मटल के जग में बहुत से लोगों के साथ टावन उड़ा रहा है परन्तु उसकी निगाह एक पड़े पर टगी हुई एक भीमस वास्तु—बड़े हुए सिर—पर लगी हुई है। यह सिर खालिदिया के राजकुमार नेबू वेल् जिक्की का ही मान पड़ता है और राजा अमुर बनीपाल अग्न शत्रु के इस प्रकार अस्मानित देगहर चित्तमें प्रथम ही रहा है तथा टावन का आनन्द बढ़ा रहा है।

### अमुर राज्य का अन्त—

अमुर बनीपाल के शासन-काल में अमुर राज्य का चेहरा चरम सीमा पर पहुँचा। परन्तु इस राज्य का अन्त भी अधिक दूर नहीं था। अमुरों का अन्तिम नरदन राजा यह अमुर बनीपाल ही हुआ तथा उसकी छत्रमें बड़ी विदेशता भी क्रूरता। उसने अग्न राज्य काल की समस्त सुदृढ़ मुख्य पटनाओं को परतों में लिखों के रूप में गुरुवाया। युद्ध, धेरे, सधियाँ, युद्ध के दहन सभी परतों पर गुरे हुए मिलते हैं। इतिहास की दृष्टि में ये वास्तु बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें सबसे सुदूर लिख राजा का भेट में प्राप्त होने वाले जनवरी के तथा सिंहास के दृश्यों के हैं।

अमुर बनीपाल की मृत्यु के बाद अमुर राज्य की अस्तित्व नदी संप्रगति में हुई। सम्भव है इस अव्यवस्था का प्रारम्भ उसके जीवन काल में ही हो गया था जिसका मुख्य कारण उसकी क्रूरता ही थी। उसकी मृत्यु होते ही परतक्रम एकाएक अन्त गया। अभी तक अमुर राज्य अग्न पदाभिषेक पर अश्वनाकारी बात हुआ था परन्तु अब अश्वनाकारी के देश अमुर राज्य पर उठते अश्वनाकारी के लगे। जिस ने अग्नियों की दे मध्य में इतिहास प्राप्त कर ली। जिस या मिथिया राज्य का अमुर राज्य के अन्त में था

तथा कुछ समय से अपनी शक्ति बढ़ा रहा था अपनी पिल्लरी हुई वस्तियों में एकता स्थापित कर अधिक शक्तिशाली बन गया तथा उसने असुर देश पर इतने प्रबल आक्रमण शुरू किये कि वे असुर राज्य के अन्धे एक बड़ा सकट ही बन गये। किन्तु गिरते हुए



असुरों की शिवशला का एक नमूना—( श्री रागोजिन कृत असीरिया में साभार )  
असुरों में भी इतनी शक्ति अभी बाकी थी कि अपने एक छोटे पड़ोसी का कुछ समय तक सामना कर सके। कई बार मिद लोगों को हराकर असुर राज्य से बाहर भगा दिया गया। किन्तु फिर भी मिद लोग बार बार असुर राज्य पर आक्रमण करते रहे। स० ई० ८६० पू० में मिदिया के राजा ने जिसका नाम उबाथतारा बताया जाता है तथा जो म्बरतिश का पुत्र था—वेबीलोन की सेनाओं को भी अपने साथ मिलाकर असुर राज्य पर पुनः प्रबल आक्रमण किया तथा असुर राजधानी निनवाह को घेर लिया। कई मयकर युद्ध हुए तथा मयकर विनाश भी हुआ। दो वर्ष तक यह घेरा पड़ा रहा तथा युद्ध चलता रहा। परन्तु आगे अधिक दिन तक निनवाह न ठहर सका। असुर राजा सारोकोस ने जब देखा कि शत्रु सेनायें राजधानी में घस आइ हैं तथा अपनी पराजय हो चुकी है तो उसने अपने शाही महल में आग लगा दी और स्वयं भी उसी में जलकर मरम हो गया। असुर राजधानी महान निनवाह नष्ट हो गई और उसके साथ ही असुर साम्राज्य का भी अन्त हो गया। यह विनाश इतना पूरा था कि असुर राज्य फिर कभी फिर न उठा सका। दो शताब्दी बाद से लोग यह भी भूलने लगे कि यहाँ निनवाह नाम का कोई पुराना प्रसिद्ध नगर था। असुर लोग अपनी क्षूरताओं से तथा अपनी ही मूर्खताओं से विनाश को प्राप्त हुए, ऐसा इतिहासकारों का मत है। इस प्रकार

सातवीं शताब्दी ई० पू० का अन्त होते होते महान् असुर साम्राज्य का भी अन्त हो गया तथा इतिहास के पृष्ठों से उसका नाम सदा के लिये मिट गया ।

### असुर जाति की सभ्यता—

मेसोपोटामिया के उत्तरी भाग में असुरों का साम्राज्य ५-६ शताब्दियों तक रहा तथा यह एक शक्तिशाली साम्राज्य था, जिससे आस पास के लोग भयभीत रहते थे । असुरों की अपनी एक अलग सभ्यता भी जा बाबुल वालों से कई बातों में समानता रखते हुए भी कई बातों में भिन्नता रखती थी । उनमें कुछ अच्छी बातें थीं और कुछ बुरी भी ।

### क्रूरता—

असुर राजाओं की जो एक विशेषता सबसे अधिक स्पष्ट दिखाई देती है वह है उनकी क्रूरता तथा निन्द्यता । वे जिस देश पर आक्रमण करत उस देश पर मानो घोर सशक्त ही उपस्थित हो जाता । युद्ध में भी वे लोग नदी निम्नता दिखाते । युद्ध में मारे गये सैनिकों के अतिरिक्त वे जिन सैनिकों को जीवित पकड़ पाते उनकी नदी दुर्गति करते । प्रायः उनके शिरों का घाट कर स्तूप बनवाते, अथवा उनके हाथ, पैर नाक, कान कटवाकर अलग अलग ढेर लगवाते । उन्हें कई करके अपने देश को ले जाना और उनसे मेहनत मजदूरी कराना तो इनकी अनुकम्पा थी ही । सैनिकों के अतिरिक्त नागरिकों को भी वे बड़ी क्रूरता से लूटते और मारते और उनके घरों को जगते । जीते हुए नगरोंको वे पृथक् पृथक् भ्रष्ट कर डालते थे । यहाँ तक कि शत्रुओं के देव मंदिरों को भी नष्ट भ्रष्ट कर डालते तथा मूर्तियों को अवमानित करते अथवा तोड़-फोड़ डालते थे ।

असुर राजाओं ने अपनी इन विजयों तथा क्रूरताओं का उल्लेख प्रायः अपने सिंगर लेखों में भी किया है । ऐसे ही एक शिलालेख में कहा गया है —युद्ध तथा भयकर हत्याकाण्डके साथ मैंने आक्रमण करके नगरको लूट लिया । तीन हजार यादवाओं को मैंने तलवार से घाट उतारा, बहुतों को जीवित पकड़ लिया । इनमें से कुछ के मैन हाथ-पैर कटवाये, दूसरों के नाक कान कटवाये और बहुतों की आँखें निकलवा लीं । नगरको मैंने सुदृशका ढेर दिया और फिर उसे आग लगाकर विनष्ट कर दिया ।

इस देग चुके हैं कि अमुनी—शिरपाल ने मेरी म यहाँ पर जो को काल करके उन सबके शिर कटवाये और उन शिरों का एक स्तूप सा बनाया गया यहाँ पर राजकुमार की जीवित अवस्था में ही गल उतार कर मातृवृत्तिक प्रशसन के लिये उसे एक दीवार पर टंगवा दिया । युद्ध के दोष नाक काट कटवाकर उनसे ढेर लगवाने में उसे अन्त आता था । अग्निम यशवान राजा असुर यानीराज ने तो क्रूरता को चरम सीमा तक

पहुँचा दिया था। उसने न जाने कितने नगरों और गाँवों को उजाड़ा और उनमें आग लगाई। इसी ने एक खल्दी राजकुमार का सिर काटकर दावत में अरबों सामने टगनाया और दावत के बीच उसे सब लोगों को दिग्ग दिग्गजर आनन्द प्राप्त किया। इसी राजा की क्रूरता का एक और उदाहरण यहाँ ने इतिहास में मिलता है। एक बड़ा शक्तिशाली अरब सरदार, जिसका नाम वाइतेह था तथा जिसका राज्य अमुर राज्य की सीमा से मिला हुआ था, अमुर बानीपाल द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया। अमुर राजा ने कृपापूर्वक उसकी जान ता बरछ दी किन्तु नय प्रकार से उसे दुःखी तथा अपमानित करने में कोई कसर न छोड़ी। उसने बंदी अरब सरदार व लड़के को अपने सामने बुलवाया और सरदार व सामने ही लड़के का सिर खुल अपने हाथ से उड़ा दिया। इसके बाद राजधानी तिनसाह से लौटने पर उसने विजय के उपलक्ष्य में एक धार्मिक उत्सव का आयोजन बड़ी धूम धाम से किया। इस अवसर पर जो जुलूस निकाला गया उसमें अमुर बानीपाल भी आज्ञा से उसका रथ खींचने व लिये एतद्म के अंतिम तीन राजाओं तथा उस अरब सरदार को जोता गया। ये राजा तथा सरदार लोग उसका रथ सड़कों पर खींचते हुए देव मंदिर तक लाये जहाँ अमुर राजा ने रथ से उतरकर समस्त सेवा के सामने अपने हाथ उठाकर अपने ईश्वर 'अमुर महान' को धन्यवाद समर्पित किया।

इन अमुर राजाओं की एक विशेषता यह भी कि वे लोग अपने समस्त क्रूर कृत्य अपने ईश्वर 'अमुर' के नाम पर ही करने थे। अरब सरदार व लड़के का सिर 'महान ईश्वर अमुर तथा उनकी पत्नी की आज्ञा से' ही घटसे उड़ाया गया था। ऐसे ही अन्य लोगों में कहा गया है—'अमुर' और येल की आज्ञा से और अपने रथक देवताओं की आज्ञा से मैंने उन्हें (राज्यों की) बुगल डाला अथवा उनकी जीभें चाकर निकलवाली अथवा उन्हें जीवित ही एक गहरे गड्ढे अथवा खाद में फेंक दिया अथवा उन्हें कुत्तों, गिद्धों आदि से खाने के लिये छोड़ दिया।

### राजचिन्ह—

अमुरों का राजचिन्ह था एक मानवी मूर्ति जिसके आधे निचले भाग में चिड़िया की पूँछ की तरह व पल लगे होते थे और जो मूर्ति गोलाइ में घाई जाती थी। कभी कभी मानवी मूर्ति व स्थान में बसल चिड़िया की पूँछ व साथ पत्तों का घेरा होता था जो सम्पन्न रथ का प्रतीक था। भूमि की उदग शक्ति की देवी इतर थी और उसकी प्रिय चिड़िया थी फारन। अमुरों की मुख्य देवी इतर ही थी। उसके दो चड़े मंदिर तिनसाह और अरपला मथ जो असीरिया व सबसे प्रमुख मंदिरों में थे। इस देवी के दो रूप थे—अरपला में उसकी पृष्ठा युद्ध तथा वीरता की देवी तथा विजयदात्री के

प में होती थी और निनराह में उसकी पूजा प्रेम तथा प्रसन्नता की देवी के रूप में होती थी।

**धर्म—**

ऐसा माना जाता है कि असुरों का काढ़ अलग धर्म नहीं था। उन्होंने अपना धर्म अपनी पड़ाही सामी जाति—असुर लोग स्वयं भी समष्टिक अथवा सामी जाति के माने जाते हैं—वेरीलोन बालों में लिया किंतु उन्होंने उस धर्ममें एक बड़ा परिवर्तन किया। उन्होंने चातुली लोगों के अनेक देवी देवताओं को तो खरीकार किया, किंतु इन सबके ऊपर अपने एक देवता को ठिठाया। अपने नम देवता को वे लोग 'असुर' कहते थे। इसी देवता के नाम पर उन्होंने दण्डा नदी की घाटी में नराह हुए अपनी पत्नी का भी नाम 'असुर' रखा। यही उनका मुख्य नगर था तथा इसी को उन्होंने अपनी राजधानी बनाया। उनका राज्य बढो पर उनके अधिकांश में जा भूमि जाइ जइ भी 'असुर' भूमि कहलाय जिषम उरुग वाइमि में भी हुआ है। बाद में यूनानियों ने इस भूमि का नाम 'असीरिया' कर दिया।

असुर लोग अपने मुख्य देव को जिसे वे 'असुर' कहते थे बहुत मानते थे। असुर राजाओं ने भू-दे पर इसी देवता का चिह्न रहता था। अपनी समस्त विजयों, उपलब्धियों तथा देश-प्राप्ति का श्रेय वे असुर को ही देने थे। उनके विजय के श्रेय प्रायः इस प्रकार प्रारम्भ होते थे—मरे स्वामी महान असुर ने शत्रुओं को पराजित किया, शत्रु लोग मेरे पास आये और चरणों को चूमा इत्यादि। उनके समस्त शिल्पियों में बड़ा अनेक देवताओं का स्मरण किया गया है—उपग्रन्थ असुर का ही नाम आता है। असुर देश के एक बलवान राजा तिगलाय किलेखर प्रथम ने जो एक महान विजिता भी था अपनी विजय-गाथा का उल्लेख इस प्रकार किया है—महान ईश्वर असुर जो समस्त देवताओं में प्रमुग है, जो राजदंड तथा छत्र देता है तथा राजा को स्थापित करता है, जेल जो समस्त देवताओं का पिता है तथा देशों का मालिक है, बुद्धिमान छिन जो ताबों का मालिक है, महान रमन जो शत्रुओं के दशमें बाद भेजता है, बलवान निनेव जो शत्रुओं और कुर्बानियों का नाश करता है, देवी इश्वर जो (देवी देवताओं में) प्रथम जग्मा है और जिषने तिगलाय किलेखर को महानता प्रदान की है। इत्यादि। इस प्रकार समस्त देवी देवताओं में प्रथम नाम 'असुर' का ही रहता था जो सर्वोच्च देवता था।

**कानून—**

प्राचीन नगर असुर के सड़कियों में कुछ गण पूर भेजे तीन सड़कियाँ प्राप्त हुई जिन पर कानून की ६० के लगभग पारायें खुली हुई थीं। ये कानून की पारायें उस कानून समर (दण्ड-सहित) से उद्यत की गई थीं जो असुर देशमें १३ वीं शताब्दी ६० पू० में

प्रचलित था। इससे यह प्रकट होता है कि असुरों के कानून उन पूजा को प्राप्त नहीं हुए थे जो उससे कई शताब्दी पूर्व बेबीलोन में हम्मू रावी के कानून प्राप्त कर चुके थे। असीरिया में यद्यपि हम्मू रावी के कानूनों का अध्ययन किया जाता था, परंतु असुर राजाओं ने अपने कानून स्वतंत्र रूपसे बनाये। इसी कारण वे बाबुली कानूनों के समान पूरा नहीं थे।

असुरों के कानूनों में विवाह, विवाह विच्छेद, सम्पत्ति के उत्तराधिकार आदि अनेक विषयों का समावेश किया गया है। ऋण के कारण ऋणदाता को यह अधिकार दिया गया था कि वह ऋण ग्रहीता अथवा उसके क्रिमी बच्चे को प्रतिभूति (जमानत) के रूपमें अपने यहाँ रख सकता था। याय प्राय स्थानीय अधिकारियों के द्वारा किया जाता था तथा राजा समस्त याय का स्रोत समझा जाता था, किंतु असीरिया के कानूनमें लोगों को याय का परिशोध व्यक्तिगत रूपसे भी कर लेने का अधिकार था। परिवारके पिता को परिवारके सन्तानोंके विशुद्ध सब प्रसार का अनुशासन-कार्य करने का अधिकार प्राप्त था—चाहे वह बाय कइसे कड़ा ही क्यों न हो। असुर कानूनमें क्रूरता पूर्ण दण्डकी भी व्यवस्था थी तथा दूसरे के शरीरको घायल तथा शत विन्त करने की आज्ञा थी। मनुष्यको जलमें डुबाकर अपराधी अथवा निरपराधी होने की जाँच करने की विधि भी बाबुल तथा असुर राज्यों में प्रचलित थी। कथित अपराधी को किसी भारी द्रुम नदी में फेंक दिया जाता था—यदि वह डूब जाता तो समझा जाता था कि वह अपराधी था और उसे अपराध का दण्ड मिल गया। तथा यदि वह किसी प्रकार तैर कर या उतराता हुआ किनारे पर आ जाता था तो समझा जाता था कि वह निरपराध है तथा उसे छोड़ दिया जाता था। अन्य ही ये कानून सभ्यता की पिछड़ी हुई अवस्था को प्रकट करते हैं। कानून के मामले में बेबीलोनिया देश असीरिया से आगे था।

### साहित्य—

बाबुल का अंतिम राजा नेबू चाड नेजार तथा असुरों का अंतिम बड़ा राजा असुर बानीपाल पुस्तकों के बड़े शौकिन थे और उन्होंने साहित्य तथा इतिहास की पुस्तकों का एक बड़ा संग्रह अपने यहाँ इकट्ठा कर लिया था। ये पुस्तकें कागज पर छपी हुई अथवा लिपी हुई नहीं थीं बल्कि मिट्टी की पट्टियों अथवा इटों पर लिखी जाती थी और फिर उन्हें पका लिया जाता था। इसका पता तब लगा जब असीरिया के कई पुराने शहरों की खुदाई होने पर उनके खण्डहरों में बहुत सी इटें ऐसी मिलीं जिन पर अक्षरों की लिखावट थी। तभी यह ज्ञान हुआ कि ये इटें अथवा पट्टियाँ पुस्तकों के पन्ने हैं जिन्हें क्रम से जमाने पर पुस्तकें बन जाती हैं। इन पुराने शहरों पर यद्यपि कई आक्रमण हुए, कई द्वार उधेँ नाश भ्रष्ट किया गया परंतु ये आक्रांता लोग उन पट्टियों को व्यर्थ समझकर—सम्भवतः उनकी लिखावट उनकी समझमें न आने के कारण ऐसी ही छोड़

गये तथा उनका उद्धार रिउनी शताब्दी के अंत में आधुनिक यूरोपीय पुरातत्वविदों द्वारा किया गया। तभी यह प्रकट हुआ कि ये अमुर लोग मारख तथा मूर्तिपूजा के तो प्रेमी थे ही, इन्हें अतिरिक्त साहित्य, इतिहास, कानून, रसायन आदि विषयों के भी प्रेमी थे तथा उनका एक भांशर रहते थे।

असीरिया के खण्डहरों की खोज में राजा अमुर बानीपाल के समय के दो पुस्तकालयों के अवशेष प्राप्त हुए हैं। इन्हें 'पुस्तकालय' नाम इसलिये दिया गया है कि इनमें अनेक पुस्तकें रखी गई थीं जो सभी मिट्टी की पट्टियों पर लिखी गई थीं। इन्हें तख्तियों अथवा पट्टेपर विभिन्न नियम लिख जाते थे और फिर उन पट्टियों का बंधन बंधन बंधन म रख लिया जाता था। ज्ञान होना है कि इस प्रकार पट्टियों पर पुस्तकें लिखना बानी समय पूर्व प्रचलित हो गया था कि तु इन पुस्तकों का संग्रह एक पुस्तकालय के रूप में रखने का कार्य अमुर बानीपाल ने ही प्रारम्भ किया। उसके समय के जो दो पुस्तकालय मिले हैं उनमें से एक एक मन्दिर में था तथा दूसरा स्वयं राजा के महल में था। इससे उसका साहित्य प्रेम स्पष्ट होता है।

### मूर्तिपूजा -

अमुर सभ्यता का सर्वाङ्गपूर्ण रूप उसकी मूर्तिपूजा में दिखाई देता है। अमुर राजाओं ने अनेक मन्दिर महल बनवाये तथा उन्हें पत्थर की मनुष्य तथा पशुओं की अनेक प्रकार की मूर्तियों से सजाया। प्राचीन सभ्यता की यात्रा करने वाले इतिहासकारों तथा पुस्तकालयकारों को जब अमुनी खिस्तल के मन्दीरों का पता लगा तो वे उनकी मान्यता, उनकी कलायुक्त सजावट, वैशाल्य तथा पवित्रता में राजाओं की रुचि, उनका सैनिक साम्रज्य तथा अन्य अनेक वस्तुओं को देखकर आश्चर्यचकित रह गये। यह देखकर कि उन प्राचीन समय के अमुर राजाओं ने इन बातों में किन्हीं उत्प्रेरक ली थी। इन सब वस्तुओं में कलात्मक मौल्य की दृष्टि से सबसे अधिक आश्चर्य की वस्तु इन राजाओं के समय की प्रकार शिल्पकला है जिसमें राजा द्वारा किए गये शिखर इत्यादि के दृश्य पथर में अंकित किये गये हैं। शिखर के शिखर खड़े हुए शिखरी कुत्तों की मूर्तियाँ बड़ी सुन्दर हैं। ये कुत्ते शिखर सजीव तथा भौंकते हुए से बचप पड़ते हैं। बचप पड़ता है अमुर राजा कुत्तों के बड़े प्रेमी थे। अतः उन्होंने कुत्तों की मूर्तियाँ विशेष रूप से बनाई अथवा शिल्पकारों ने ऐसी मूर्तियाँ बनाकर उन्हें भेंट कीं। इस प्रकार पुर के शिखर की भी अनेक प्रकार मूर्तियाँ हैं और उनमें विभिन्न शिल्पियों में कुत्तों को बड़े सुन्दर रूप से अंकित किया गया है। इनमें से एक मूर्तियों की लक्षणों में बचप के सुन्दर नस्लों के रूप में शिल्प किया है। शिखर में बचप एक प्रकार की लक्ष्मी के रूप में की मूर्ति भी बड़ी सुन्दर है। इसमें शिल्पकारों ने कि बचप के रूप में लक्ष्मी



की पीठ टूट गई है पिछला भाग निष्क्रिय हो गया है। वह अपने अगले पजों से कष्ट-पूर्वक उठने का तथा अपने शन को चुनौती देती हुई अंतिम दहाड़ मारने का प्रयत्न कर रही है। कला और सौंदर्य का यह एक उत्कृष्ट नमूना है। प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण करने वाले कारीगरों द्वारा ही ऐसी कला का सृजन हो सकता है। इससे यह भी प्रकट होता है कि असुर राजा कलाकारों तथा शिल्पकारों को शिखर में अपने साथ ले जाते होंगे।

असुर राज्य में भवनों का निर्माण का आरम्भ देवताओं के मंदिर से हुआ। ये मंदिर सभी देवताओं की आराधना के हेतु बनाये गये थे। निनवाह नगर के मार्गों तथा गलियों में चिन्नी सड़कें तथा पद्म बंदी होने के चिह्न मिले हैं। इस शहर की चहारदीवारी में आठ पाटक (प्रवेश द्वार) थे जिनका नाम मुख्य देवताओं के नाम पर रखा गया था। प्रत्येक प्रवेश द्वार पर दोनों ओर दो बेलों की पत्थर की बड़ी मुद्रा मूर्तियाँ बनी हुई थीं। ये बड़े बड़े ऊँचे तथा पत्थर से बनाये गये थे—मानों वे उन पाटकों की पूजा करने में सज्ज प्रसन्न समर्थ हों।

सारागौरव द्वितीय ने महल के जो अवशेष मिले हैं उनसे भी शत हाता है कि महल में प्रत्येक छोटी से छोटी बात में सुदरता का ध्यान रखा गया था। महल में प्रत्येक वस्तु में ही अद्भुत कारीगरी गिलायी देती है। महल की बाहरी दीवारों पर विशालकाय बेलों के २४ जोड़े पत्थरों से उभारकर बनाये गये हैं जिनकी सुदरता दर्शनीय है। महल के विशालकाय कमरों के आदर की दीवारों लगभग दो मील की लम्बाई में सुदर शिल्प-कारि से सज्जित हैं।

इस प्रकार असुर राज्य में शिल्प, स्थापत्य, चित्रकला आदि कलाओं की अच्छी उन्नति हुई तथा इसी कारण उनकी सम्यक्ता—उनमें क्रूरता आदि कुछ दुर्गुणों के रहते हुए भी अत्यंत समशालीन देशों से काफी ऊँची समझी जाती है।

### असुर राज्य का भारत से सम्बन्ध—

असुर राज्य में 'असुर' शब्द की प्रधानता स्पष्ट है। ये लोग अपने को 'असुर' कहलाने में गौरव का अनुभव करते थे तथा अनेक राजाओं के नामों में भी प्रायः 'असुर' शब्द जोड़ते थे यथा असुर-उत्कृष्ट, असुरना जिरपाल, असुर वानपाल आदि। उनका सय प्रधान इन्द्र तो 'असुर' था ही तथा युद्धों में सेना के आगे 'असुर' का भण्डा रहता था। इन्होंने अपनी सबसे पहली बस्ती का नाम भी 'असुर' रखा था तथा राज्य बढ़ जाने पर भी 'असुर' में ही अपनी राजधानी रखी। इसी कारण उनसे विशाल राज्य का नाम भी 'असुर' ही प्रसिद्ध हुआ। बाद में यूनानियों ने अपनी शैली के अनुसार 'असुर' को 'असुरिया' बना दिया।

प्रश्न यह है कि यह अमुर शब्द कहीं से आया? अमुर देश के अतिरिक्त दो ही अन्य देश ऐसे हैं जहाँ के प्राचीन साहित्य में 'अमुर' शब्द मिला है। ये हैं 'भारत' तथा 'इरान'। भारत के सबसे प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद में वा सत्तार का सबसे प्राचीन ग्रंथ माना जाता है 'अमुर' शब्द अनेक स्थानों पर आया है और प्रारम्भ में उसका अर्थ वज्रान, पराक्रमी आदि होता था, बाद में यह अर्थ बदल गया। विद्वानों का मत है कि ऋग्वेद में प्रारम्भ में 'अमुर' शब्द का प्रयोग आयों के देवता अथवा इन्द्र के अर्थ में ही होता था।<sup>१</sup>

इसी प्रकार 'अमुर' शब्द देवों के लिये प्रयुक्त होता था, परन्तु जब आयों की दा मुक्त जातियों—देवों और अमुरों में सघन अधिक बढ़ा तब यह शब्द देवों व शत्रुओं व लिये प्रयुक्त किया जाने लगा। यह भी समझित है कि इरान में प्राचीन लोगों में—जिन्हें सभी विद्वान आयों की एक शाखा मानते हैं 'अमुर' शब्द अ-उ अर्थ में प्रयुक्त किया जाता था, यहाँ तक कि वे अस्त सौंघ देवता अथवा इन्द्र को भी 'अमुर मद्र' (अमुर मद्र) व नाम से पुकारते थे। ईरानी आयों को समस्त यूरोपीय तथा भारतीय विद्वान भारतीय आयों व माई वधु मानते हैं। इस बात में अशक्य मतभेद है कि ये दो विभाग आयों के किस प्रकार हुए। जैसा कि पूर में अनेक बार बताया गया है तर्क पूरा अनुमान यही है कि भारत में आयों की दा शाखाओं में अनेक कारणों से मतभेद उत्पन्न हुए। एक शाखा अनेको 'देव' कहती थी तथा दूसरी 'अमुर'। यह मतभेद इतना बढ़ा कि शीघ्र ही यह 'देवानुर सम्राज' में परिवर्तित हो गया तथा यह देवानुर सम्राज दीर्घकाल तक चलता रहा जैसा कि भारत के अनेक प्राचीन ग्रंथों से प्रकट होता है। इस सम्राज के पत्नरत्न आयों के अनेक दल जो अतुरोवासक व भारत से बाहर जाने के लिये बाध्य हुए तथा इराण में जाकर बस गये और यहाँ उन्होंने अनेक पुरानी उपासना पद्धति को जारी रखा तथा अपने इन्द्र को व 'अमुर' कहते रहे। इही आयों की कुछ शाखायें—सामयन नामें भी आरम्भमें कुछ मतभेद का ग्राह्ये उत्पन्न हो गये हों—ईरानमें और

१ एक विद्वान का मत यह है कि ऋग्वेद में 'अमुर' शब्द १०५ बार आया है। हमें में ६० बार तो उसका प्रयोग वज्रान, प्रायमान, पराक्रमी तथा ऐसे ही अनेक अर्थों में किया गया है। केवल १५ बार उसका अर्थ होता है—देवों के शत्रु। इससे यह प्रकट होता है कि 'अमुर' शब्द का प्रयोग प्रारम्भ में जिस अर्थ में किया जाता था यह बाद में सामयन देवों और अमुरों में अंतर तथा शत्रुता बढ़ जाने के कारण बन गया तथा यह इस अर्थ में देवों के शत्रुओं व लिये प्रयुक्त किया जाने लगा।

१ An alternative designation for deity is *Isgueda* is *Asura*—I refer to the *Britannica* vol 23 and *Asura*.

अधिक पश्चिम की ओर उठी तथा वहाँ बस गई । ईरान के पश्चिमोत्तर में बसे हुए मित लोगों को—जिनका देश मिदिया कहलाता है तथा जिन्होंने अमुर राज्य को नष्ट करने में योग दिया सभी यूरोपीय विद्वान् इरानी आर्यों की ही एक शाखा मानते हैं । इसी प्रकार लु एशिया व मित्रा आदि स्थानों में बसे हुए लोगों को भी—जिनका लेख नोगन कोड में प्राप्त हुआ—इतिहासकारों ने अशुद्धि रूपसे आर्य जाति का स्वीकार किया है । उन्होंने यह मान लिया है कि भारत के आर्य—उनके कुछ दल—द्वितीय सहस्राब्दी अथवा तृतीय सहस्राब्दी ई०पू० में भारत से चलकर मेसोपोटामिया तथा चाम ( सीरिया ) तक पहुँचे तथा इहाँ लोगों ने खुर्ी और मितजी को अपना वे स्थल बनाया था । उक्त यह भी अनुमान है कि इन लोगों में ईरान के लोग भी शामिल हुए होंगे ।<sup>2</sup>

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारत में अथवा इरान से आर्यों की कुछ जातियाँ पश्चिम की ओर गईं और भिन्न भिन्न स्थानों पर बस गईं । इन्हीं में से एक या अधिक दल उन लोगों के रहे होंगे जिन्होंने 'अमुर' राज्य की स्थापना की । असीरिया की राज करनेवाले विद्वानों का कथन है—जैसा कि इस अध्याय में आरम्भ में बताया गया है कि २७०० ई०पू० के लगभग दजला नदी की उत्तरी घाटी में एक ऐसी जाति आकर बसी थी जो अपने को 'अमुर' कहती थी तथा जिन्होंने अपनी प्रारम्भिक बस्ता का नाम भी 'अमुर' रखा । इसमें भी स्पष्ट है कि अमुर लोग मूलतः, असीरिया के निवासी नहीं थे बल्कि किसी दूसरे स्थान से आकर वहाँ बसे थे । यह स्थान भारत अथवा ईरान ही हो सकता है जहाँ से वे लोग वहाँ पहुँचे ।

इतिहास के अनेक विद्वानों ने भी—जो लोग आर्यों का मूल स्थान मध्य एशिया मानते हैं यह स्वीकार किया है कि भारत अथवा ईरान से ही अमुर लोग असीरिया में जाकर बसे थे । श्री राहुल साहय्यायन का मत है कि जो प्राक हिंदी-यूरोपीय जाति नव पाषाण युग में—ईसा पूर्व तीसरी या चौथी सहस्राब्दी में एशिया से चलकर यूरोप में पहुँची थी, उन्हीं के बाद में दो विभाग हो गये थे जो आर्य और शक कहलाए । फिर इन दोनों जातियों में भी सख्य हुआ जिसके परिणामस्वरूप आर्यों का एक भाग

1 It is to be supposed that in the course of their wandering in India the earliest Indians or at least a part of them touched Mesopotamia and Syria where Khurra Mitanni Kingdom was their centre in the 2nd and even in the 3rd millennium B C—Encyclopedia Britannica Vol XI Histories

2 The Iranians may have also taken part in immigration of Aryan stock in the Near Asia Encyclopedia Britannica Vol XI Aryans in Syria and Mesopotamia

कारिगन सागर के पश्चिम में कारेगश पर्यंतमाला में दाता हुआ लघु एशिया (या तुर्की) और उत्तरी इरान की तरफ बढ़ता हुआ असीरिया व गमन देश की सीमा पर पहुँचा था । १ परन्तु उन्होंने यह स्पष्ट नहीं किया कि यही इतिहास प्रसिद्ध अमुर् जाति बनी । श्री जयचन्द निगामकार का मत है कि इसरी सन् से लगभग तीन हजार वर्ष पूर बाहर से जो आर्य लोग भारत में आये थे तथा जो अपने को 'ऐल' कहते व उन्हीं की एक शाखा गाम्भार देश में पश्चिम और उत्तर की तरफ दिग्भ्रम और उनके पार के प्रदेशों में चली गयी थी । २ आचार्य नरेन्द्र देव का भी मत है कि सत'स'तु प्रवेश से निकले गये इन अमुरों के निष्कासन का कारण धार्मिक मनभेद तथा आचार भेद ही प्रतीत होता है । पश्चिम की ओर जाकर व वहाँ की तुर्कानो जाति में मिल गये । यहाँ तक कि उनसे रक्त सम्बन्ध भी कर लिया । ३ तत्पश्चात् भारतीय विद्वान भी यह स्वीकार करते हैं कि आर्यों की एक शाखा पश्चिम की ओर गई तथा इरान और असीरिया तक पहुँची थी ।

इस मत का समर्थन पुराणों में भी मिलता है । पुराणों में भी 'देवामुर सप्तम' का उल्लेख है (यथा मत्स्य पुराण अध्याय १४६ तथा १७५) तथा त्रिमुगमुग्, तारसामुर आदि अनेक 'अमुर' यीरो व नाम गिनाये गये हैं । पुराणों में देव, अमुर, मनुष्य, गन्धर्व आदि सभी जातियों की उत्पत्ति दश प्रजावर्त से बताई गई है और इस प्रकार अमुरोंकी भी देवों का भाद बंधु बताया गया है । पुराणों में ऐसे सप्त मी षड् स्थानों पर मिलते हैं जिनमें विदित होता है कि प्राचीनकाल में भारत की बहुत-सी जातियाँ विदेशों में चली गई थी तथा वे यही षड् गद्द । मत्स्य पुराण २ में कहा गया है कि नारदजी की बातें सुनकर उन लोगों (दश प्रजावर्त नामक पुत्रों) ने विभिन्न दिशाओं की ओर प्रस्थान किया और जिस प्रकार नारदजी समुद्र में मिले ज्ञान व परब्रह्म पित्र नहीं लौटती, वे आज तक उन अरन अरने स्थानों से नहीं लौट । आज कहा गया है कि दश प्रजावर्त ने अरन अरन नामक पुत्रों व इस प्रकार अरदन हो ज्ञान पर रात्र नामक पुत्रों को उत्तर किया और इन विद्वान् पुत्रों ने भी अरने बड़े भाइयों व मग से दाया की और उनकी भी अरने षड् भाइयों की सी ही गति हुई अर्थात् वे भी वापिस नहीं लौट । आज उन्हीं पुत्रों व अध्याय ६८ में बताया गया है कि दुर्योधन व दश व सौ पुत्रों ने भी इसी प्रकार दाया की और वे सब के सब षड् गद्दों व असीरार हुए ।

१ मत्स्य पुराण का इतिहास — पृष्ठ ५५२-५५६

२ भारत भूमि और उसके निवासियों — पृष्ठ २४०-२४२

३ श्रुतेशानाम पृष्ठ ६१-६२

असुर लोग भी ऐसे ही लोगों में जान पड़ते हैं जो भारत से अथवा ईरान से पश्चिम की ओर गये और जिस प्रकार नदियाँ समुद्र में मिल जाने के पश्चात् फिर नहीं लौटतीं वैसे भारत नहीं लौटे बल्कि वहाँ के लोगों में घुल मिल गये। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि भारत से जो आर्य जातियाँ पश्चिम के देशों में गई वे या तो उन देशों के साथ युद्धों में मारी गई या फिर उन्हीं देशों में बस कर उन लोगों में घुल मिल गई और अपना अस्तित्व खो बैठीं।

असीरिया के असुर लोग यूरोपीय इतिहासकारों के कथनानुसार सामी जाति के थे तथा सामी भाषा बोलते थे। इसका कारण यह हो सकता है कि दीर्घ काल तक अपने भाई बंधुओं के अलग हो जाने तथा एक सुदूर देशमें जा बसने के कारण उन्होंने धीरे धीरे वहाँ की भाषा तथा सभ्यता को अपना लिया हो तथा इस प्रकार वे सामी बन गये हों। उनके नामों—असुर बानीपाल, असुर उर्वल्लत आदि में आर्य तथा सामी दोनों ही भाषाओं की झलक मिलती है। किन्तु सामी बन जाने पर भी उन्होंने अपना प्राचीन 'असुर' नाम न छोड़ा तथा 'असुर' को ही अपना ईश्वर मानते रहे।

श्री भगवत्शरण उपाध्याय का मत है कि असुरों से लड़नेवाले मध्य एशिया के हत्ती मितानी आदि थे जो सम्भवतः द्रुह्यु राजाओं के वंशधर थे। सम्भव है असुर भी बाद में आने वाले आर्यों के ही एक दल हों और भूमि के लिये उनमें परस्पर समय समय पर युद्ध होता रहा हो। इस प्रकार अधिक सम्भव यही जान पड़ता है कि जब देवों तथा असुरों—आर्यों की ही दो शाखाओं में मतभेद अधिक बढ़ गया तथा दोनों में 'संग्राम' अथवा युद्ध होने लगे और पराजय असुरों की होने लगी तब ये असुर भारत छोड़ने के लिये बाध्य हुए हों और वे पहले गांधार होते हुए ईरान पहुँचे तथा फिर किसी कारण से वहाँ से भी आगे बढ़ गये और ईरान के पश्चिम की ओर के देशों में जा बसे। सम्भवतः इन्हीं लोगों की कोई टोली जागरोस पर्वत श्रेणी के नीचे बस गई और ये लोग अपने को आर्यों की अपेक्षा 'असुर' कहलाना अधिक पसंद करने लगें। ये लोग उन लोगों से भिन्न थे जो इससे बहुत काल पूर्व भारत से लकर सुमेर में पहुँचे थे तथा जिन्होंने वहाँ पर अपनी बस्तियाँ स्थापित कर सुमेरी सभ्यता का विस्तार किया था।

देव तथा असुरों में भारत में खप किन कारणों से उदा इस विषय पर भारतीय सभ्यता वाले अध्याय में अधिक विचार किया गया है। संक्षेप में ऐसा जान पड़ता है कि

- १ वासु पुराण अध्याय ६५—सृष्टि विस्तार वर्णन,
- २ मत्स्य पुराण आदि संग ५ वा अध्याय २-११
- ३ प्राचीन भारत का इतिहास—भगवत्शरण उपाध्याय,

प्रारम्भ में आर्य लोगों में 'अमुर' शब्द अच्छे अर्थों में प्रयुक्त होता था तथा इन्द्रादि देवताओं को भी अमुर कहा जाता था, किन्तु बाद में यह अर्थ बदल गया और इसी परिवर्तन पर कुछ मतभेद भी हुआ। एक तल 'अमुर' शब्द हेतु अर्थमें प्रयुक्त करने लगा, दूसरा उसे पुराने अच्छे अर्थ में ही प्रयुक्त करता रहा तथा उसी नाम पर गव करता रहा। मतभेद के अन्वय कारण भी रहे होंगे यथा आध्यात्मिकता को अधिक महत्त्व दिया जाय अथवा भौतिक ऐश्वर्य को, उपासना विधि में किन किन बातों को महत्त्व दिया जाय, किस को प्रधान देवता माना जाय आदि। यह सफल रहता गया और अन्त में अमुर उपासकों को पराजित हाना पड़ा तथा अरना देश भारत छोड़ने के लिये बाध्य हाना पड़ा।

ये लोग भारत से इरान पहुँचे तथा फिर इरानसे भी आगे बढ़ गये। रहने अमुर देशकी स्थाना की जिसने कालान्तर में एक साम्राज्यका रूप ग्रहण किया जैसा कि भारत से बाहर गई हुई अन्य जातियों ने भी किया।

---

## इजिप्त अथवा मिस्र की प्राचीन सभ्यता

आज अफ्रीका महाद्वीप के उत्तर पूव में विशाल नील नदी की घाटी में बसा हुआ मिस्र देश सभ्यता के अति प्राचीन देशों में है तथा उसकी सभ्यता भी अति प्राचीन है। भौगोलिक दृष्टि से इस देशके दो भाग किये जाते हैं—दक्षिणी मिस्र जो उपजाऊ भूमि का एक पतला हिस्सा है तथा जो लगभग ५०० मील है किंतु चौड़ाईमें औसत केवल ८ मील है और उत्तरी मिस्र जो नील नदी के मुहानों का चौड़ा भाग है। नील नदी तीन मुहानों से भूमध्यसागर में मिलती है तथा इन मुहानों पर डेल्टा बनानी है। नील नदी वास्तव में सभ्यताकी सबसे बड़ी नदी है, क्योंकि उसकी दोनों धाराओं—स्वेत नील और नीली नील—की सम्मिलित लम्बाई ४००० मील से भी अधिक है। इसी नील नदी की कृपा से मिस्र का देश सभ्यता में सबसे अधिक उपजाऊ समझा जाता है। यहाँ की भूमि वष में तीन फसलें दे सकती है।

मिस्र एक ऐसा देश माना जाता है जहाँ सभ्यता बहुत अधिक प्राचीन काल में विकास की उच्च स्थिति पर पहुँच चुकी थी। जहाँ कुछ विद्वान उर तथा अन्य स्थानों की खुदाई में प्राप्त प्राचीन सामग्रियों के आधार पर मेसोपोटामियाँ (सुमेर तथा बेबीलोन) की सभ्यता की आदि भूमि मानते हैं वहाँ कुछ विद्वान ऐसे भी हैं जो यह मानते हैं कि सबसे पहले सभ्यता का आरम्भ मिस्र में हुआ। उनका कथन है कि मिस्र की सभ्यता मेसोपोटामियाँ की सभ्यता से भी अधिक पुरानी है तथा मेसोपोटामियाँ के लोगों ने बहुत सी बातें मिस्रसे ही सीखी थीं। ऐस इतिहासकारोंमें श्री डब्ल्यू जे० पैरी मुख्य हैं। उन्होंने जोगदार शब्दों में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि सभ्यता की आदि सभ्यता मिस्र की ही है। वही सभ्यता की अन्य सभ्यताओं का धर्म स्थल है अर्थात् वहाँ से सभ्यता एक ओर जाकर पश्चिम में यूनान और रोम होती हुई समस्त यूरोप में फैली वहाँ दूसरी ओर मेसोपोटामियाँ, इरान, भारत, हि देशिया आदि होती हुई अमेरिका तक पहुँची।

श्री पैरी का कथन है कि कृषि का आरम्भ सबसे पहले मिस्रमें ही हुआ क्योंकि नील नदी में प्रति वर्ष ग्रीष्म ऋतु के अंत में जोर की बाढ़ आती है तथा जब यह बाढ़ कुछ हफ्तों में हट जाती है तब उस नदी तथा बीचों बीच भूमि में जो कुछ अनाज आदि



मिस्र का साम्राज्य  
२६२० ई. पू.





डाल दिया जाता है यह सूर्य की प्राकृतिक गर्मी पाकर इन प्रकार उम्र आता है जैसे कोई बाजीगर देखने देखनेही पत्तों का उमरा देता है। यह प्रक्रिया वहाँ प्रति वर्ष दुहराई जाती है। यहीं से मनुष्यने नदी ने पानी से भूमि भी निचाइ करके अन उपजाने की कला सीखी होगी। थी पेरोंने यह भी मन पकट किया है कि मित्र्यर लानों ने ही ऊासे घर बनाने, धातुओं ने हथियार औजार बनाने और सोने चाँदीकी वस्तुएँ बनाने का काम आरम्भ किया। उन्होंने भाषा तथा लिपि वा, तिथि-पत्र तथा सौर वर्ष वा, धर्म तथा शासन वग का आविष्कार किया। अर्थात् प्रति वर्ष निश्चित समय पर नील में आनने वाली चाड़ से वर्षों का माप करना सीखकर बाद में सूत्र भी गति-विधियों का अध्ययन कर उन्होंने सौर वर्ष को स्वीकार किया। उन्होंने समुद्र पर चलने वाला मयसे पहला जहाज बनाया, उन्हीं ने दजानन बनाने का काम आरम्भ किया। कुर्सी, चारगाइ लेम्प आदि अनेक प्रकार की वस्तुएँ तैयार की। तात्पर्य सभ्यता की विभिन्न दिशाओं में होनेवाली प्रगति का जन्म मिस्र देश में ही हुआ।

हिन्दु अन्य इतिहासकारों ने इस दावेको अस्वीकार किया है। उनका कथन है कि सुमेरी सभ्यता मिश्र की सभ्यता से निश्चित रूप से अधिक प्राचीन हो चुकी थी। उदाहरणार्थ मिस्र न प्राचीन भवनों की इंटें तथा इटों की दीवारें सुमेरी शैली की इटों की नकल मात्र दिखाइ देती हैं। येषल इतना अंतर है कि मिश्र की इंटें अधिकतर आयताकार हैं जबकि सुमेरी इंटें प्राय वर्गाकार होती थीं। मिश्र की बेलनाकार मुहरें भी सुमेरी दग की दिखाइ देती हैं और इन मुहरों की आदि भूमि मेधापाटामिया ही है, मिस्र नहीं।

फिर भी इतना अरहर कहा जा सकता है कि मनुष्य जीवन के अनुकूल प्राकृतिक स्थितियों के कारण मिश्र में भी बाबुल तथा कुठ अथ दशों क समान मनुष्य ने घर बनाकर रहना शुरू किया होगा तथा वहाँ भी अन्य देशों के समान ही कृषि, हथियार निर्माण, भाषा धर्म, तिथि पत्र आदि का आरम्भ हुआ होगा।

यस ज का श्रेष्ठ पुगतत्वविद्नों को—

प्राचीन मिश्र न क बंध में हमें जो विस्तृत जानकारी आज उपलब्ध है, उमरा और सुमेर तथा बाबुल क समान पुगतत्व शक्तियों तथा इतिहास क अंशों को ही है। वास्तव में अमेरिकी तथा पुगतत्व शक्तियों को सबसे अधिक उपलब्ध मिस्र में प्राप्त हुई क्योंकि इहाँ अधिकतर कारण आज प्राचीन मिस्र के जनजीवन की ओर वहाँ की सभ्यता की जानकारी हमें स्पष्ट रूप से होती है। इन खोजों के कारण अनेक नये तथ्यों पर प्रकाश पड़ा है। आज प्राचीन मापनों अथवा सिद्ध हुए हैं तथा आज प्राचीनताओं में परिवर्तन करना पड़ा है। सुमेर तथा बाबुल से इतिहास के जो अंश आज तक प्राचीनताओं के इतिहास में प्रकाश में आए हैं वे प्राचीनताओं के इतिहास में प्रकाश में आए हैं।

लेखों, नाम की मुहरों आदि से प्राप्त हुए थे, मिश्र मंत्र के आधार कुछ प्राचीन समाधियों ( कब्रों ), तथा स्तूपों से ही प्राप्त हो गये । पुरानी वस्तुएँ इतने दीर्घ काल तक यहाँ सुरक्षित रूप में रह सहीं इसका उचित कुछ श्रेय वहाँ की गर्भ तथा सूखी जलवायु को भी है, जिसमें किसी वस्तु को बहुत समय तक विकृत तथा नष्ट होने से बचाने की शक्ति है । उक्त पुरातत्व सम्गन्धी खोजों में यूरोप के प्रायः सभी देशों—जर्मनी, इटली, रूस आदि तथा अमेरिका ने भी भाग लिया है । इन लोगों ने अनेक स्थानों पर उत्खनन करके बहुत सी महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त की ।

कुछ पुराने लेखकों की कृतियों से भी मिश्र का इतिहास तैयार करने में यूरोप के लेखकों को बड़ी सहायता मिली । यूनानी इतिहासकार हेरोडोटस ( हेरोदात ) ने मिश्र का बहुत सा वर्णन अपने समय तक का ( पाचवीं शताब्दी ई० पू० तक का ) लिखा है जो बड़ा बहुमूल्य समझा जाता है फिर मिश्र के ही एक पुजारी 'मोनेथो' का योग भी महत्वपूर्ण रहा है । उसी ने मिश्र के राजवशों की नामावलिषों तैयार की तथा उन्हें क्रमबद्ध किया । इन वंशवालिषों तथा उनमें दिये हुए नामों के कालों का अर्थ प्रमाणों से भी समझन प्राप्त हुआ है । अतः इतिहासकार उन्हें प्रामाणिक मानते हैं तथा मोनेथी के आधार पर ही राजवशों के क्रम को स्वीकार करते हैं ।

इन खोजों से पता चलता है कि इस से लगभग ५ हजार वर्ष पूर्व भी मिश्र में नवपाषाण युग के लोग निवास करते थे । वे लोग पत्थर के औजारों के अतिरिक्त मिट्टी के बर्तन भी बनाते थे और उन पर लाल तथा काली पालिश करते थे । इस काल में भी वे लोग वेचल शिकार करने वाले तथा इधर उधर से अन्न संग्रह करनेवाले न थे बल्कि खेती करने लगे थे और सामूहिक रूप से गावों में बसाया सीख गये थे । वे धातुओं की वस्तुएँ भी बनाने लगे थे और वास्तव में धातुओं से काम लेना ही सभ्यता का आरम्भ है । नील नदी की घाटी में कच्चा ताम्र पाया जाता था और इसी ताम्र से वे लोग हथियार औजार तथा अन्य वस्तुएँ बनाने लगे थे । वे लोग कई प्रकार की कलापूज तथा सौन्दर्य वर्द्धनकी वस्तुएँ भी बनाने लगे थे । इस प्रकार ४ हजार ३५ ईसा पूर्व के लगभग ही वहाँ के लोग चरखा युग से निकलकर सभ्यता के युग में प्रवेश कर चुके थे ।

ऐसा भी पता लगता है कि इन लोगों ने वहाँ कई छोटे छोटे राज्य भी स्थापित कर लिये थे । बाद में इन छोटे-छोटे राज्यों को मिलाकर दो बड़े राज्य बने—एक नील नदी व डेल्टा में तथा दूसरा दक्षिणी भाग में । ये उत्तरी तथा दक्षिणी राज्य कहलाते थे । यह काल राज-वंश पूव का काल कहलाता है ।

### इतिहास—

मिश्र के इतिहास काल का आरम्भ प्रथम राजवंश की स्थापना के समय से माना जाता है । इस प्रथम राजवंश की स्थापना का काल ३४०० ई० पू० के लगभग अनुमान

किया गया है। कोई कोई लेखक इस बात को ४५०० ई० पू० मानते हैं।<sup>1</sup> किंतु इनके लिये कोई ठोस आधार प्राप्त नहीं है। इस प्रथम राजवंश के राजाओं का पता अवीदोस नामक स्थान की कब्रों में तथा अन्य प्राचीन स्मारकों से लगा है। इस वंश के सम्स्थापक का नाम 'मनेस' (मैन) माना जाता है। यह दक्षिणी मिश्र का राजा था परंतु उसने उत्तरी भाग का भी जीतकर उस पर अधिकार कर लिया था और फिर उसने दोनों राज्यों को संयुक्त कर एक बड़ा राज्य बनाया। इस प्रकार यह सम्पूर्ण मिश्र देशका राजा बन गया। इसी कारण उसे मिश्र का प्रथम राजा माना जाता है तथा उसका वंश प्रथम राजवंश कहलाता है। यह मनेस पहले बबलोन कब्रों का प्रति माना जाता था परंतु हाल में उसकी कब्र मिल गई बताई जाती है जिससे यह ऐतिहासिक व्यक्ति माना जाने लगा है।

मिश्र राज्य की राजधानी प्रारम्भ में यिन स्थान पर थी जो नील घाटी के मध्य में एक पुराना शहर था। बाद में चतुर्थ राजवंश के काल में (२६०० ई० पू० के लगभग) यह राजधानी मेगिफस स्थान पर स्थापित हुई जो आज के मरी तुगर के समीप जेल्म में स्थित था। मेगिफस में राजधानी लगभग ७ शताब्दियों तक २६०० से २००० ई० पू० तक रही।

प्रथम राजवंश के पश्चात् द्वितीय, तृतीय तथा अन्य राजवंश हुए। इन राज्यों के राजाओं को पुरानी साइबल में 'फराआर्ह' अथवा 'फरोदा' कहा गया है। इन्हें 'फरहून' भी कहते हैं। फरोदा का शाब्दिक अर्थ है 'मशान घट'। मिश्र के प्रायः सभी प्राचीन राजाओं को जिन्होंने बड़े बड़े विरासत अथवा स्तूप बनवाये वही फरहून ही या बाद के काल तक भी चली रही। इस प्रकार इन फरहूनों के लगभग तीन हजार वर्ष तक मिश्र पर राज्य किया। इनमें से तृतीय राजवंश के समय से छठवें राजवंश की स्थापना तक का काल मिश्र के विरासतों का काल माना जाता है।

पंचम राजवंश के समय में मिश्र के राजा लोग अरबों को 'एय का पुत्र' भी कहने लगे थे।

इस प्रकार मिश्र शक्तिशाली नरि की ओर बढ़ता रहा। भीगे भीगे पुराने शहर मेगिफस का महत्त्व गिरता गया और दक्षिणी मिश्र के मध्य में स्थित थीम्स शहर २००० ई० पू० के लगभग राजधानी बना।

इस समय के राजाओं के विरासतों का नाम अरनी शक्ति तथा शक्ति का ध्वज करना ध्वज तथा अशुभित समझा। अब उन्होंने अपना समय राज्य का सुधारने में

लगाया । इन राजाओं के समय में मिस्र में धन, सम्पत्ति तथा सम्पत्ता की भी अच्छी उन्नति हुई ।

मिस्र के इतिहास को इतिहास लेखकों ने तीन बड़े भागों में विभाजित किया है । प्रथम राजवंश से लेकर ११ वें राजवंश तक का काल ( २७७८ ई० पू० तक का ) प्राचीन काल अथवा प्राचीन सभ्यता का काल कहलाता है । २७७८ ई० पू० से ११०२ ई० पू० तक का अर्थात् २४वें राजवंश से ३१वें राजवंश का काल मध्य साम्राज्य का काल कहलाता है तथा ३१वें राजवंश से लेकर तीसरे राजवंश तक का काल ११०२ ई० पू० से लेकर ३४२ ई० पू० तक का काल नये साम्राज्य का काल कहलाता है ।

मध्य साम्राज्य काल में अर्थात् १८०० ई० पू० के लगभग जबकि मिस्र की राजधानी थीबा में आ चुकी थी मिस्र की शान्तिपूर्ण प्रगति को एक बड़ा धक्का लगा । यह था मिस्र में विदेशियों का आक्रमण । इस समय पश्चिमी एशिया, रोम, लिबिया आदि की कुछ जातियाँ जिनमें बिच्छा ( लिबिया ) तथा कुछ अन्य मानी जातियाँ मुख्य थीं, स्वयं से स्थल हमलामध्य से होकर मिस्र में घुस आईं और वहाँ के उत्तरी भाग अर्थात् नील नदी के डेल्टा में बड़ी सत्ता में बस गईं । उनका यह प्रवेश प्रारम्भ में शान्तिपूर्ण ही था, परन्तु शीघ्र ही उनके सरास्र आक्रमण भी होने लगे । यह लोग मिस्र के इतिहासकार मोनेयो के शब्दों में 'हाइक्नोस' कहे गये हैं । उनका यह नाम तिग्मकायपुरुष रखा गया था, क्योंकि 'हाइक्नोस' का अर्थ गड़रिया होता है । इन हाइक्नोस लोगों ने धीरे-धीरे समस्त मिस्र पर अपना अधिकार जमा लिया तथा मिस्र के राजवंश का अन्त कर दिया । उन्होंने मिस्र की बहुत सी जालों को तथा उनका सम्पत्ता को अपना लिया । उनके राजा भी अपने को 'फोहा' कहने लगे और मिस्र के परोहाओं जैसी ही शान शौकत से रहने लगे । लगभग १५० वर्ष तक मिस्र पर इन्हीं विदेशियों का राज्य रहा । उसके बाद थीब्स में ही उनका विद्रोह विद्रोह खड़ा हो गया । यह विद्रोह समस्त मिस्र में शीघ्र ही फैल गया, क्योंकि उसका नेतृत्व थीब्स के लोगों ने ही हाँ में था । दीर्घकालीन समय के पश्चात् विद्रोही सत्ता टूट तथा विदेशियों को हार माननी पड़ी । थीब्स के एक राजा ने इन विदेशियों को मध्य मिस्र में निकाल बाहर किया तथा उसके उत्तराधिकारी ने जिसका नाम अहमेश प्रथम था, मिस्र का उन्नीसवाँ भाग अपना लेना भी अपने अधिकार में कर लिया और इस प्रकार विदेशियों को समस्त मिस्र गाली करता पड़ा । मिस्र में एक बार पुनः मिस्र के राजा स्थापित हुआ । यह नया वंश मिस्र का अठारहवाँ राजवंश कहलाता है । इस राजवंश ने अपनी राजधानी थीब्स में ही रखी थी क्योंकि विद्रोह का नेतृत्व थीब्स ने ही किया था ।

हाइनसोसों के निष्कासन के बाद मिस्र ने एक नये युग का आरम्भ हुआ समझा जाता है। १८ वें राजवंशके शासन-काल में मिस्रियों ने जो अब तक शान्तिप्रिय बने हुए थे तथा बाहरी आक्रमणों के शिकार होते रहे थे, युद्ध-रिय तथा आक्रान्ता स्वरूप धारण किया। वे अब अन्य देशों पर विजय लाभ कर कीर्ति की आकांक्षा करने लगे। राजाओं ने शक्तिशाली सेना सज्जो की तथा अपने पड़ानियों—इथिय मिया और शाम पर आक्रमण कर उन्हें पराजित किया और मिस्र ने उन देशों पर अपना अधिकार भी जमा लिया और इस प्रकार मिस्र का देश एक साम्राज्य स्वरूप में परिवर्तित हो गया। मिस्र साम्राज्य का यह काल १६०० ई० पू० से ११०० ई० पू० तक अर्थात् लगभग ५०० वर्ष तक चला। यह साम्राज्य नील नदी से लगाकर मेसोपोटामिया की पुरान नदी तक पहुँच गया। पश्चिमी एशिया व शाम, फिलिस्तीन आदि देशों पर जिस प्रकार पहले बेबीलोनिया ने अधिकार कर लिया था उसी प्रकार अब मिस्र ने अपना आधिपत्य जमा लिया। इस साम्राज्य का काल मिस्र के इतिहास का एक महत्वपूर्ण काल है। इस वंश में अमेनोफिस तृतीय एक प्रतापी राजा हुआ। उसके समय में मिस्र साम्राज्य विस्तार, समृद्धि तथा ऐश्वर्य की दृष्टि से चरम सीमा पर पहुँचा। अमेनोफिस तृतीय का पुत्र अमेनोफिस चतुर्थ बहुत कम उम्र में गद्दी पर बैठा। वह रागी तथा दुर्बल भी था। उसका विवाह मिस्रनी के राजा दशरथ की पुत्री के साथ १३७६ ई० पू० में हुआ था। यह राजा मिस्र में सूर्यदेव की पूजा को प्रधानता देना चाहता था किन्तु पुजारियों ने उसका विरोध किया। मिस्र के इन पुजारियों के प्रभाव में बचने के लिये उसने एक नए राजधानी बनाना शुरू किया जिसका नाम अवेनातन गया। बाद में यही स्थान तेल-भल अनना कहलाया। राजधानी यहाँ आ जाने से योश्म नगर प्रायः उन्मूल हो गया। वह 'अवेन' शब्द के स्थान पर 'अनेन' शब्द का प्रयोग था, तथा उसने अपना और अपने पुत्रका नाम भी बदल दिया था, परन्तु उसके बाद फिर 'अनेन' की प्रधानता हो गयी। इसी अमेनोफिस चतुर्थ का पुत्र तुतानामेन हुआ जो मिस्र का एक ऐसा राजा है जिसके सम्बन्ध में आज हम बहुत कुछ जानते हैं यद्यपि वह कई प्रतापी राजा न था। यह सोची-बराबर से ही (१३६२ ई० पू० में) रागी पर बैठा तथा केवल १२ वर्ष तक राज्य करने के पश्चात् सुनामशा में ही (१३५३ ई० पू० में) मृत्यु को प्राप्त हुआ। यद्यपि उसने मिस्र अमेनोफिस चतुर्थ का विरह मिस्र के राजा तथा मिस्र की पुत्री से हुआ था, किन्तु यह स्वयं इस पुत्री से उत्पन्न न हुआ था। यह अमेनोफिस की पुत्री दूसरी रवा का पुत्र था। राजाओं को वंश एक से अधिक विवाह कर्तव्य का प्रति-  
 बाद ११०० ई० पू० के समय में पुजारियों के प्रभाव से राजधानी पुनः योश्म में

तूतानखामेन राजा का पता सखार को सन् १९२२ २३ में लगा जबकि मियर में सतत सग्रघी एक अत्यन्त महत्वपूर्ण खोज हुई। यह खोज श्री हावर्ट वार्टर ने की जो हॉ पर इंग्लैण्ड के एक रईस द्वारा दी गई आर्थिक सहायता से खुदाई का कार्य कर रहे। श्री वार्टर को थीस स्थान के पाम 'राजाओं की घाटी' में भूमिके अंदर एक ऐसी पत्र मिली जो हजारों वर्षों तक अछूती बनी रही थी। प्रायः चातुल तथा मियर की हथों को उठेरे और चोर खादकर लूट लिया करते थे, क्योंकि उनमें प्रायः बहुमूल्य वस्तुएँ मिलनी थीं, कि तु तूतानखामेन की कबर कुछ इस तरह छिपाकर बनायी गयी थी कि उसका पता चोरों को न लग सका और वह हजारों वर्षों तक जैसी की तैसी बनी रही। खुदाई करने पर कब्र व भीतरकी समस्त वस्तुएँ भी ज्यों की त्यों रंगी हुई मिलीं। इस कब्रमें बड़ी बहुमूल्य सामग्री थी—बड़ी सुंदर सजावट की कुर्सियाँ और मेजें, सोने के आभूषण और तांबा, सोने और लोहे की तलवारें तथा अनेक कलापूर्ण वस्तुएँ। इनमें राजाका सिंहासन भी था जो बड़ा सुंदर और बहुमूल्य था। वह सिंहासन जो कब्र से प्राप्त हुआ है सोने के पत्तर से बड़ा हुआ है। इसकी डेटक पर, पीठ पर तथा हाथों पर रंग विरगे नग जड़े हुए जो आज भी नये जैसे उमकदार हैं। इसके पीछे एक राजा का चित्र है जिसकी रानी हाथ में एक पात्र लिये सुगंधि लगा रही है। यह समस्त बहुमूल्य सामग्री आन भी कैरो के अजायबर में वर्तमान है। अभी कुछ वर्ष पूर्व ही हमें से कुछ वस्तुएँ किहीं लोगों द्वारा चुरा ली जाने की खबर आई थी।

मितनी से वैवाहिक सम्बन्ध—

इस १८ वें राजवंश के काल की एक महत्वपूर्ण घटना है—मितनी के राजाओं से मियर के राजाओं के वैवाहिक सम्बन्ध। इसका एक विशेष कारण था। इन दिनों मिस्र का साम्राज्य पश्चिमी एशिया तक फैला हुआ था। इस एशिया साम्राज्य में शांति बनाये रखने, उस ओर से निश्चितता प्राप्त करने और मिस्र में जो आर्थिक उन्नति हो रही थी उसे स्थायी बनाये रखने के लिये मिस्र को पश्चिमी एशिया में किसी बलवान मित्र की आवश्यकता थी। उसकी निगाह मितनी राज्य पर पड़ी। मितनी राज्य मिस्र के एशियाई इलाके के उत्तर में स्थित था, तथा एक बड़ा राज्य था जिसका विस्तार फ्रात नदी व दोनों ओर अर्थात् भूमध्य सागर तथा दक्षिण नदियों व बीच था तथा मिस्र पर किसी एशियाई शत्रु का आक्रमण मितनी राज्य में होकर ही हो सकता था। ऐसी खबरें मिलती रहती थीं कि लिताइयों (हिताइती) का शक्तिशाली राजा मिस्र पर आक्रमण करके उसे अपने अधिनार में करना चाहता है। अतः मिस्रने मितनी के साथ सुदृढ़ मंत्रो का विचार किया। उधर मितनी के राजा को भी लिताइयों से डर था तथा वह भी मिस्र से मित्रता स्थापित करना चाहता था। यह जानता कि मिस्र इन दिनों एक शक्तिशाली साम्राज्य है। यह यह भी देख चुका था कि मिस्र की सेनाओं

ने क्रिष्ट प्रसार परिचयनी एशिया में विजय प्राप्त की। खिताब राज्य मितानी के उत्तर में उसही सीमा से लगा हुआ ही था। फिर मिन नी का पूरही ओर उठनी हुई नद शक्ति —असुर राज्य —से भी टर उतरन हो रहा था। अतः दोनों में सधि तथा मिश्रता होना आवश्यक हो गया था।

मितानी में इन तिनो एक नया राजवश गद्दी पर बैठा जिसके सहायक का नाम सौस्तर बताया जाता है। शीघ्र ही मितानी और मिस्र में मुटुट मैत्री स्थापित करने के उद्देश्य से उनमें विवाह सम्बंध होने लगे। मिस्र के राजा युत्नेश चतुर्थ ने मितानी के राजा श्रुतोत्तम से प्रस्ताव किया कि वह अपनी पुत्री का विवाह उसके युत्नेश के साथ कर दे। बार बार आग्रह करने पर श्रुतोत्तम ने प्रस्ताव स्वीकार करते अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ कर दिया। जब मिस्र के सिंहासन पर अमेनोफिस तृतीय गद्दी पर आया और मितानी में श्रुतोत्तम का पौत्र राजा दशरथ गद्दी पर बैठा तब इन दोनों राजवशों में वैवाहिक सम्बंध और अधिक मुद्द हो गये तथा राजा अमेनोफिस तृतीय का विवाह दशरथ की बहिन गिट्टिया के साथ हो गया। तब में अमेनोफिस चतुर्थ का विवाह दशरथ की पुत्री से हुआ जिसका नाम तदुगिया बताया जाता है। राजकुमारी गिट्टिया अपने साथ तीन सौ सनद परिवारिकारों लेकर मिस्र के राजमहल में आई थी।

तूतानामेन का उत्तराधिकारी होरमहेव हुआ जो तूतानामेन के समय में उसका सेनापति था। इस पदवात् मिस्र में एक नया राजवश गद्दी पर बैठा था १६ वं राजवश कहलाता है। इस वश का सहायक राम २ प्रथम था। हम राजवश के समया में भी मिस्र ने काफी उन्नति की। राम प्रथम ने अफ्रीका के लीबिया और इथियोपिया प्रदेश तथा पश्चिमी एशिया के शाम, मिस्र, पारस आदि अनेक देश जीतकर उन पर अधिकार कर लिया। इस वश का सबसे प्रसिद्ध राजा राम द्वितीय हुआ। ३ विगने १२६२ ई० पू० से १२३५ ई० पू० तक अर्थात् लगभग ७० वर्ष तक राज्य किया। उसके अनेक स्मारक मिस्र के अत्रयस्वरूप में आज भी मौजूद हैं। उसके सम्बंध में अनेक दन्त कथाएँ भी प्रचलित हैं। उसी खिताब राज्य पर खदा की किन्तु बाद में दानों में समझौता हो गया। इस समझौते के अनुसार मिस्र के राजा ने उत्तरी शान देश पर खिताब राजा का अधिकार स्वीकार कर लिया। इनकी सधि का विवरण शीघ्र के एक मस्तर की दीवार के शिलालेख में गणना हुआ है जो आज भी देखा जा सकता है। बोग्रहाइ में प्राप्त शिलालेखों में इस मस्तर का बयान मिलता है।

1 Private Life of Egyptian men by G. P. Labrecq P 99

2 Parnesses I

3 Parnesses II



नील नदी के पश्चिमी तट पर इस राम द्वितीय ने एक मन्दिर बनवाया था जो रामेशियम कहलाता था। इस मन्दिर में उसने अपनी एक ५७ फीट ऊँची बैठी हुई विशाल मूर्ति रखवाई थी। इस मूर्ति के टुकड़े इधर-उधर बिखरे हुए मिले थे। यह राम द्वितीय मिस्र के महान् परोहाओं में अंतिम बड़ा राजा समझा जाता है। उसकी मृत्यु के पश्चात् ही मिस्री साम्राज्य का हास होता गया और मिस्र की शक्ति घटती गई। साम्राज्य के एशियाई देश भी शीघ्र ही उससे अलग होते गये और फिर कभी वापिस न आ सके। ११०० ई० पू० के लगभग मिस्र पुनः अपनी पुरानी सीमाओं पर—मिस्र देश तक लौट आया। कुछ शताब्दियों पश्चात् (छठवीं शताब्दी ई० पू० में) पारसी साम्राज्य ने जो उन दिनों उत्पत्ति करता जा रहा था मिस्र को भी जीतकर अपने साम्राज्य का अंग बना लिया। फिर यूनान (सेलेडोन) का प्रसिद्ध राजा सिकन्दर अपनी विजय यात्रा पर पूरव की दिशा में बढ़ा और मिस्र के लोगों ने उसे पारसियों की कठोर हुकूमत से छुटकारा दिलाने के लिये समझकर उसका स्वागत किया। सिकन्दर ने मिस्र में एक नगर की स्थापना की जो यूनानी सभ्यता का केन्द्रस्थल बन गया। इस नगर का नाम सिकन्दरिया पड़ा जो आज तक मौजूद है। सिकन्दर के बाद उसका साम्राज्य उसने मुख्य-मुख्य सेनापतियों में बाँट दिया। मिस्र पर उसके एक सेनापति टालेमी (बतली मूर्ती) का अधिकार हुआ। इस टालेमी वंश के राजा लोग मिस्र की जलवायु में धुल मिल गये और मिस्र के पुगने परोहाओं के समान टाट बाट से राज्य करते रहे। इस वंश की अंतिम रानी क्लियोपट्रा थी जो इतिहास तथा कथाओं में प्रसिद्ध है। उसके बाद रोम की बढ़ती हुई शक्ति ने मिस्र को भी अपने साम्राज्य में मिला लिया।

### मिस्र की सभ्यता—

जैसा कि ऊपर बताया गया है मिस्र में ऐसे अनेक चिह्न मिलते हैं जिनसे अनुमान होता है कि यहाँ राजवंशों के काल से पूर्व ही अर्थात् इसा से लगभग ३॥ हजार वर्ष पूर्व या उससे भी पहले सभ्यता का आरम्भ हो गया था। वहाँ के लोग खेती और सिंचाई अच्छी तरह जानते थे। नील डेल्टा के पश्चिम दलदलों में एक ऐसे बड़े गाँव—मेरिडे का पता चला है जिसके नियासियों ने बहुत पहले एक गाँव के रूप में अपनी भोपड़िया बना कर रहना तथा अपने खेतों की सिंचाई मिलकर करना सीखा लिया था। इसी कारण कुछ लोग मिस्र को कृषि तथा सिंचाई की आदि भूमि मानते हैं।

ताम्र आदि धातुओं का काम करना भी वे लोग उसी समय जान गये थे। ताँबे के कुछ तिनोने तरतार, आरे तथा अन्य औजार राजवंश पूर्वकाल के प्राप्त हुए हैं। इससे अनिश्चित वे लोग आरंभिक तथा प्रारंभिकता की अनेक वस्तुएँ सोना, हाथी दात, मुगधिन द्रव्य, शृङ्गार सामग्री आदि दूर-दूर के देशों से लाकर अपने व्यवहार में लाने लगे

ये। चक्रमक परवर के चाबू, परवर के कुँडे तथा अन्य चर्तन, मिट्टी के तरह-तरह के चर्तन हाथी दात के चम्मच, कथियाँ तथा प्राचीन समयकी गृहकार की अन्य सामग्रियाँ ब्रितनी मिय में मिलती हैं उतनी अन्य किसी देश में नहीं। इसी कारण कुछ विद्वानों की यह भी धारणा है कि सभ्यता का तथा समस्त प्रकार के कला-कौशल का प्रारम्भ मिस्र में ही हुआ। किन्तु यह धारणा भ्रान्त सिद्ध हुई है। अधिकांश विद्वानों का विचार है कि सभ्यता की यह लहर मिस्र में प्रथम राजवंश काल से पूर्व ही पूरब की दिशा से आइ थी और पूरब की यह सभ्यता अपने साथ एक विदेशी गिगायट ( लिबि ) वर्गमाला, ताबे की छैनियाँ, बेलनाकार मुहरें तथा अन्य वस्तुएँ लाइ थी। इन विद्वानों के अनुसार यह प्रभाव सुमेर अथवा एलाम से आया था तथा सामी जाति व लोगों—फिनीशियेनो आदि के द्वारा यह मिस्र में पहुँचाया गया।

यह भी माना जाता है कि प्रथम राजवंश से छठे राजवंश तक लगभग ६०० वर्ष के काल में—मिस्र का लालसागर के मार्ग से अन्य देशों के साथ गूर व्यापार चलता था और इस लम्बे समय में ये लोग अरब के किनारे तथा पारस की खाड़ी व किनारे जाने हुए भारत तक पहुँचे व जहाँ मालवागर के किनारे पर मोती, सोना तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुओं के भण्डार पाये जाते थे। इसी प्रकार भारत व आसानी मिस्र तक पहुँचे थे। मिस्र के लोग अपनी आवश्यकता की भिन्न भिन्न वस्तुएँ प्राप्त करने व लिये दूर दूर तक बहाज भेजा करते थे। उस समय के कुछ चर्तनों पर ज.रानों की आकृतियाँ भी बनी हुई मिली हैं जिससे उक्त अनुमान का समर्थन होता है। उन बहानों अथवा नावों में कमरे और खेने के हाद भी दिखायी देते हैं।

### धर्म—

पुरातन काल में अनेक देशों व लोग एक ही इश्वर को सर्वोच्च नरी मानते थे, बरिक्त भिन्न भिन्न देवताओं को भिन्न-भिन्न कार्यों और विभागों का अधिपति मानते थे। भारत में जिस प्रकार इन्द्र, यमराज, अग्नि, मित्र आदि अनेक देवता माने जाते थे उसी प्रकार मिस्र में सूर्य के देव चाद्रमा व देव अघकार के देव, विद्या व दय आदि अनेक देवता थे। कुछ देवताओं का रूप मनुष्यों का-ना था। कुछ का पशुओं का रूप। इसमें एक गौ देवी थी और देवट मेटक व रूप की देवी थी। सूर्य को वे लोग 'छ' अथवा 'री' कहते थे और 'पनाह' प्रकाश की भाँति एक देवता थी। व देवता प्रेम और पूजा भी करा व अर्घ्य मनुष्यों के सातन बिगा से पूजा करत और किसी को अगना मिय पात्र भी बना लेते थे। ऐसा माना जाता था कि वे देवता स्वयं स्वयं का प्रत्येक कार्य अपने मिय पात्रों व द्वारा ही करते थे। उदाहरणार्थ सूर्य को विद्या का प्रद गवि के पंचार प्रमाण तभी हो सकता है वर सूर्य के देवता (री) को प्रत्येक कार्य पट व कह उनसे

प्रिय-पान बढ़े पुजारी की प्रार्थना करते उन्हें भूलोक के नीचे से मनाकर भूलोक में लायें । अतः भूमण्डल पर सबेरा लाने के लिये पुजारी की प्रतिदिन प्रातः काल से पूब 'री' देवता की प्रार्थना करते थे कि वे भूलोक में आवें ।

मिश्र के लोगों का यह भी विश्वास था कि देवताओं की मूर्तियों में उन देवताओं की आत्माएँ निवास करती हैं तथा उन मूर्तियों के मंदिरों के पुजारी उन देवताओं की आत्माओंसे सम्पर्क रखते हैं । इसी कारण वहाँ पुजारियों की बड़ी मायता थी तथा वहाँ बड़े शक्तिशाली राजा—प्रोद्दा भी—बिना पुजारियों की सम्मति के—जिसे वे देवताओं की आज्ञा मानते थे—कोई नया तथा महत्वपूर्ण कार्य—युद्ध अथवा सधि आदि—करने का साहस न कर सकते थे । दक्षिणी मिश्र में भी स नगर के समीप करनारु स्थान पर एक प्राचीन मंदिर था जो पुराने राजाओं का बनवाया हुआ था तथा जिसकी मरम्मत राम द्वितीय ने कराई थी । यह मंदिर समस्त अमेन (स्यदेव) का था जो मिश्र के एक प्रमुख देवता थे । मिश्र में स्य की पूजा की ही प्रधानता थी और उनसे अनेक रूप से जैसे प्रातः काल के स्य, मध्याह्न के सूर्य, रायकाल के सूर्य आदि । इनसे नाम रा, री, होरस, अमेन, ओसिरिस आदि थे । मिश्र के राजा भी बाद में अपने को स्य का पुत्र कहने लगे थे । इसिस ( उपा ) प्रातः काल की देवी थी ।

#### आत्मा की क्षमरता में विश्वास—

मिश्रवासी अपने पड़ोसियों के समान यह विश्वास करते थे कि मनुष्य के शरीर में एक आत्मा रहती है जो शारीरिक मृत्यु के बाद भी जीवित रहती है और शरीर के पास ही चक्कर लगाती रहती है । मनुष्यकी मृत्यु के बाद भी यदि उसका शरीर सुरक्षित रहेगा तो आत्मा उसमें प्रवेश करेगी तथा निवास भी करेगी और यदि शरीर गलकर मिट्टी हो जायेगा तो आत्मा भी लुप्त हो जायेगी । इसी कारण वे लोग मृत शरीर को सुरक्षित रखना आवश्यक समझते थे जिससे वह शरीर अनन्त काल तक आत्मा के घर के रूप में बना रहे । यदि ऐसा न होगा तो या तो आत्मा मर जायेगी या अशान्तिपूर्ण अवस्था में इधर उधर भटकती फिरेगी तथा घर के अन्य लोगों को पष्ट देगी । इसी विचार से उन्होंने मृत शरीर को अधिक से अधिक दिनों तक सुरक्षित रखने के उपाय निकाले और ऐसे लेप का आविष्कार उन्होंने सम्भवतः तृतीय राजवंश के काल में कर लिया था । मृत शरीर में से आँतें, हृदय जिगर आदि निकाल लिये जाते थे तथा शरीर के अन्तर कोई अन्य वस्तु भर दी जाती थी । फिर समस्त शरीर पर गाढ़ा लेप किया जाता था । इस प्रकार के लेप युक्त शरीर को 'ममी' कहा जाता था । ममी की यह क्रिया मिश्र के लोगों की अग्नी एक विशेषता है जो किसी अन्य देश में नहीं पाई जाती । मिश्र वालों के विचार से मनुष्य की मृत्यु हो जाने पर भी उसकी वास्तविक मृत्यु 'दूसरी मृत्यु' समी होती थी जब शरीर गलकर नष्ट हो जाय और उसमें आत्माका सम्बन्ध टूट जाय ।

इस लेगसुक शरीर को लकड़ी आदि के कड़ सन्दूकों में बन्द कर दिया जाता था और फिर उस सन्दूक को किसी पहाड़ी अथवा सूखी जमीनमें गड़ दिया जाता था जिससे उसके भीतर नमी न पहुँच सके। ये कबरें ऐसी बनाई जाती थीं जिनमें कड़ कमरे होने थे। बाद में ये कबरें जमीन के नीचे प्रायः ठोस चट्टानों का ढाटकर बनायी जाने लगीं और उनके ऊपर भूमि पर एक छोटा सा मन्दिर धार्मिक कृत्यों के लिये बना दिया जाता था। प्रायः एक कमरे में मृतक को मूर्ति मी पवराइ जाती थी। बड़े राजाओं की कबरों के ऊपर उड़े बड़े मन्दिर या पिरामिड बनाये जाते थे।

यह भी माना जाता था कि शरीर की मृत्यु के बाद भी आत्मा को खाने पीने की तथा इन्द्रिय जनित सब प्रकार की इच्छायें होती हैं। अतः उस आत्माको सन्तुष्ट रखने के लिये खाने-पीने का सामान, अनाज, जगमग, पानी व स्पर्श सुगन्धित पदार्थ आदि अनेक वस्तुएँ शरीर के पास ही रख दी जाती थीं। राजाओं के साथ उनके इषियार, रथ, बड़े सोने-चाँदीके बसन, नेत्र कुर्सी, सुगन्धित द्रव्य और कभी कभी सिंहासन भी रखा दिया जाते थे। तृयानगामेन की कब्र में इतनी वस्तुएँ सुरक्षित अवस्था में मिली कि उनमें उस समय के मिथ के जन-जीवन का सम्पूर्ण इतिहास ही तैयार किया जाना सम्भव हो गया है। यह माना जाता था कि इन वस्तुओं से यदि आत्मा सन्तुष्ट रहगी तो घर के लोगों को आशुवाद देगी और एसी शक्ति प्रदान करेगी जिससे वे लोग मुसीबत पड़ने पर भी उसका सामना कर सकें।

### पिरामिड—

ममी के खनान मिथ वालों की एक दूसरी विशेषता उनके पिरामिड अथवा स्तूप हैं। ये पिरामिड राजाओं की मृत्यु होने पर उनकी कबर के ऊपर पत्थर के विशाल स्तूप के रूप में बनावे जाते थे और उनका उद्देश्य यह था कि मृत्यु के पश्चात् राजाओं की कबरें इन विशाल स्तूपों के भीतर दीर्घकाल तक सुरक्षित बनी रहें। एक अमेबेक लेखक ने यह कल्पना ही लिखा है कि सम्भवतः अन्य किसी देश के राजाओं ने इतिहास के पृष्ठों पर अपना नाम ऐसी अभिष्ट स्थायी से अंकित नहीं किया जैसा कि पिरामिडों के निर्माता मिथ के इन परतूनों ने।

सबसे पहिला राजा जिसने पिरामिड बनवाया जोसेर मन्ना जाता है जो तृतीय राजवंश का प्रथम राजा था। यह पिरामिड पत्थर का बना हुआ अरने टम का प्रथम ही बड़ा स्तूपक है जो मकारा स्थान पर बनवाया गया था। चतुर्थ राजवंश के उत्पन्न में और भी बड़े बड़े पिरामिड बने। इनमें सबसे बड़ा तथा प्रसिद्ध पिरामिड इस बंधके राजा गुरूदा बनवाया हुआ है जो मियेड स्थान पर है। राजा जो मन्तानी इतिहासकार हयोग्य ने

पहुँना माना जाता है, क्योंकि कई बड़े बड़े पिरामिड इसी समय में बने—यह काल ईसा से लगभग दस हजार वर्ष पूर्व का है जबकि मिश्र की राजधानी मेम्फिस में थी।

इन पिरामिडों की विशालता का अनुमान इसी से किया जा सकता है कि खूफू के पिरामिड में—जो पिरामिडों में सबसे बड़ा है लगभग तीस लाख टन बड़ी-बड़ी शिलायें लगी हैं। ये शिलायें दूर दूर से लाई जाती थीं शिलाओं का कुल वजन १७ करोड़ मन अनुमान किया जाता है। इनकी नगवरी के पत्थरके भजन न तो पान्चीन काल में किसी अन्य देश के लोग बना सके और न आज तक ही नहीं बना सके हैं। ये पिरामिड ससार के सात में ११ आश्चर्यों में गिने जाते हैं।

### शिल्प-कला—

ये विशाल पिरामिड ही—जिन्हें देख ससार के लोग आज भी आश्चर्य करते हैं तथा जो ससार की दशमोय वस्तुओं में गिने जाते हैं मिश्र के लोगों की शिल्प-कला के अद्भुत तथा सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं। इन्हीं के कारण बहुत से लोग यह मानते हैं कि रथापत्यकला का आरम्भ वास्तव में मिश्र देश में ही हुआ जहाँ इतनी विशाल इमारतें बन सकीं।

ऐसा अनुमान होता है कि राजवश काल के आरम्भ में ही अथवा उससे भी पूर्व ही मिश्र के लोगों ने शिल्प-कला में अच्छी उन्नति करली थी। ये लोग पत्थर के समूचे महाराजों, मीनारों आदि बनाने लगे थे।

उन लोगों के प्राचीन काल के मिट्टीके बतनों पर भी अनेक कलापूर्ण चित्र मिलते हैं। हाथी दात पर भी चित्रकला मिलती है। हाथी दात के बने कर्षों पर मनुष्यों तथा जानवरों की आकृतियां खुदी हुई पायी गयी हैं। चकमरू पत्थर के चाकुओं के हथ्यों पर सोने का काम भी मिलता है। लकड़ी के काम के सुन्दर नमूने सफ़ारा की कब्रोंमें मिले हैं जिनसे शत होता है कि प्रथम राजवश के काल में ही लकड़ी का सामान बड़ा सुन्दर बनने लगा था और उस पर खुदाई नक़ाशी ज़र्दई का काम भी होने लगा था। इस प्रकार तीन सौ तीन हजार वर्ष पूर्व ही मिश्र के लोगों में कला के प्रति रुचि उत्पन्न हो गई थी। इतना ही नहीं उन्होंने कलापूर्ण वस्तुएँ बनानेमें निपुणता भी प्राप्त करली थी।

### वर्ष या तिथि पत्र—

प्राचीन देशों के लोग प्रायः चांद्रमा से महीनों तक वर्षों की गणना करते पाये जाते हैं। यह विधि सरल भी थी। किन्तु अनुमान होता है कि मिश्र वालों ने ३००० ई० पू० में अथवा इससे भी पूर्व के समय में ही चांद्र महीनों से वर्ष की गणना करना छोड़कर सूर्य का तिथि-पत्र स्वीकार कर लिया था। इस सौर वर्ष में ३० दिन का महीना तथा बारह महीनों का वर्ष होता था तथा वर्ष के अंत में ५ दिन और छोड़ दिये जाते

वे। पाचवें और छठवें राजवंश के राजाओं के विरामिटों के साथ जो लेख प्राप्त हुए हैं उनसे पता चलता है कि वष में अतिरिक्त ५ दिन वाला अर्थात् ३६५ दिन वाला तिथि-पत्र उस समय भी मिन में प्रचलित हो चुका था। कुछ लोग वहाँ सौर वर्ष का प्रारम्भ राजवंश काल से भी पूर्व अर्थात् ४००० इ० पू० के लगभग हुआ मानते हैं।<sup>1</sup>

### साहित्य—

श्री गोलड का कथन है कि मिस्रमें नैतिक उपदेशों की एक पुस्तक की रचना ४००० इ० पू० में हुई थी 2 जिसके कुछ भाग आज भी मिलते हैं। दूसरी पुस्तक 'ताहटाटेप' के उपदेश लगभग ३५५० इ० पू० की कही जाती है जिसमें बड़ों के प्रति कर्तव्य-पालन, माता पिता के प्रति आदर आदि ५ उपदेश दिये गये हैं। मिस्र की कब्रों के साथ खुदे हुए अथवा एक प्रकार के कागज पर जो 'परीस' कहलाता था X लिखे हुए अनेक प्रकार के उपदेश मिलते हैं जो वहाँ की नैतिक उद्योगों का उदाहरण हैं। ये उपदेश प्रायः 'मृतकों की पुस्तक' से जा मिस्रवासियों द्वारा बड़ी पवित्र पुस्तक मानी जाती थी—लिखे गये हैं। यह पुस्तक २००० वर्ष पूर्व भी 'प्राचीन' समझी जाती थी। इसमें उन गीतों, मन्त्रों, प्राथनाओं और मन्त्रों का समूह है जिन्हें मनुष्य की मृत्यु के पश्चात् उसकी आत्मा को मृतक लोक की यात्रा के समय पढ़ना आवश्यक समझा जाता था। अतः मिस्रवासी प्रायः इस पुस्तक को कण्ठस्थ कर लेंगे या जिससे आत्मा को उई दुर्गम में कठिनाई न हो। इनमें से कुछ गीत ऐसे हैं जो ३५०० इ० पू० की कब्रों में खुदे हुए पाये गये हैं अतः कुछ विद्वान इस पुस्तक को ४००० इ० पू० से भी पुरानी समझते हैं।

### भारत से सम्बन्ध—

प्राचीन भारत तथा प्राचीन मिस्र में व्यापारिक सम्बन्ध था तथा दोनों देशों के बहान एक दूसरे में आते जाते थे इसके बड़े प्रमाण मिले हैं। ३००० अथवा ४००० इ० पू० की मिस्र की कब्रों में जो विभिन्न वस्तुएँ पायी गयी हैं वे सब की सब मिस्र की स्थानीय उत्पन्न नहीं हैं ऐसा माना जाता है। उदाहरणार्थ सोना, हाथी दाँत आदि मिस्र की उत्पन्न नहीं समझी जाती। ये वस्तुएँ बाहर के देशों से अधिकतर भारत से ही यहाँ पहुँची थी। मिस्र की पुरानी कब्रों में भारत की नील तथा कुछ अन्य वस्तुएँ भी

1 *History of Man's mind*—Hutton Webster P 22

2 *A concise history of Religion*. P J Gould

X पैरीस—मिस्र में एक पीपे से तैयार किया हुआ गन्ध और लिखने के काम में आता था। इसी से अंग्रेजी का 'पैपर' शब्द बना है।

राइ गई हैं । 1 अनेक मर्मियों पर जो हजारों वर्ष पुरानी समझी जाती है लिपटा हुआ जो बख्त पाया गया है वह भी भारत का ही बुना हुआ माना जाता है । यह भी विश्वास किया जाता है कि इसा पूर्व द्वितीय सदस्रादी तक मिस्र के राजा लोग दक्षिणी भारत से मलमल, आबनूस, दालचीनी आदि वास्तुएं मगाते थे । इस प्रकार प्राचीन मिस्र का दक्षिणी भारत से—तथा भारत से— यापारिक सम्बन्ध स्पष्ट होता है ।

किंतु यापारिक सम्बन्ध के अतिरिक्त एसा भी ज्ञान पड़ता है कि मिस्र के प्राचीन निवासियों का भारत से ज्ञानीय सम्बन्ध भी था । गुमेर तथा वावुर के समान मिस्र की सम्पत्ता भी अधिक प्राचीन समझी जाती है । कुछ लोगों की दृष्टिमें तो यह सुमे तथा वावुर की सम्पत्ता से भी अधिक प्राचीन है, किंतु यह भी माना जाता है कि जिन लोगों ने मिस्र में अति प्राचीन काल में एक उच्च क्रांति की सम्पत्ता का विकास किया, वे लोग मिस्र के मूल निवासी न थे बल्कि बाहर से किसी देशसे ही वहाँ पहुँचे थे । अंग्रेज इतिहासकार गोल्ड का कथन है कि मिस्र में जिन लोगों ने राजवशों का आरम्भ किया वे लोग फिलिस्तीनी अथवा फिनीशियन ( फणि ) लोगों से सम्बन्ध रखते थे । तथा वे लोग पुनः या पुनः देश से चलकर मध्य मिश्र देशमें पहुँचे और फिर थीब्स नगर के पास तथा नील नदी तक पहुँचे । 2

यहाँ यह स्मरण रखने की बात है कि फिनिशियन लोग जो प्राचीन काल में भारत, एशिया तथा दक्षिणी पूर्वी यूरप में अपने यापार के लिये प्रसिद्ध थे मूठ में भारत के निवासी ही जान पड़ते हैं । ऋग्वेद में प्रायः उनका उल्लेख मिलता है । मिस्र में राजवश की स्थापना करने वाले यही लोग थे तथा वहाँ पर वे लोग पुनः नामक देश से पहुँचे थे । मिस्र के लोग जिस देश को पुनः कहते थे वह अरब का एक भाग था जिसमें उरजाऊ भाग भी सम्मिलित था । फिनिशियन लोगों के सम्बन्ध में इतिहासकारों का यह भी मत है कि सीरिया या शाम का वह समुद्र तटवर्ती भाग जिसमें टायर, सिडोन आदि नगर बसाये गये, उनका मूल स्थान न था बल्कि वे वहाँ अरब तट से चलकर आये थे । ऐसा अनुमान है कि ये लोग भारत से चलकर पहिले अरब के दक्षिण में लाल सागर के तट पर बस गये थे और वहाँ से चलकर शाम के पश्चिमी तटों पर बसे जहाँ उन्होंने अपनी कई प्रसिद्ध बस्तियाँ—सिडोन टायरा आदि—बनाई । वहाँ से आगे बढ़कर वे

1 Ancient Egypt—Prof Wilkinson

2 The high class race which founded the historic dynasties of Kings seems to have been allied to the Philistines and Phoenicians and to have come from Punor Punt at the South end of the Red Sea. The immigrants crossed from the Punt coast to middle Egypt reaching the river Nile near Thebes. A Concise history of Religion —F J Gould

लोग मिस्र में पहुँचे होंगे। उन्हीं की एक शाखा बाद में अफ्रीका के उत्तरी तट पर पहुँची थी जिसने कारथेज नगर बसाया। वहाँ पर ये लोग 'प्यूनिक' कहलाते थे जो 'फोनिश' का ही एक रूप जान पड़ता है। मिस्र में प्रथम राजवंश व सस्थापक का नाम 'मेनेस' अथवा मेन होना भी उसका भारत से कुछ सम्बन्ध होने का द्योतक है, क्योंकि भारत में प्रथम राजवंश व सस्थापक 'मनु' माने जाते हैं।

इस सम्बन्ध में एक और बात भी उल्लेखनीय है। भारत के पुराणात् प्राचीन ग्रन्थों में सगर का जो मूग उट्टिया गया है उसमें सगर को सान द्वीपों में बाग गया है जिनमें 'मन्वु द्वीप, प्लक्ष द्वीप, शाल्मली, कुश, मोज, शक्र तथा पुत्र' हैं। इनमें मन्वु द्वीप निश्चय ही अथवा उग्रहा कुछ भाग था जिनमें सन्वु द्वीप या बयों में एक भारतवर्ष गिना जाता था। कुश द्वीप आज का अफ्रीका महाद्वीप अथवा उसका कुछ भाग था। यह आश्चर्य की बात है कि प्राचीन मिस्र में भी निल घाटी का दक्षिणी भाग अर्थात् मध्य अफ्रीका जिनमें नूबिया, इथोपिया आदि देश सम्मिलित थे 'कुश' कहलाता था। मिस्र के राजाओं ने दक्षिण का यह समस्त प्रदेश अपने एक 'देशीय प्रतिनिधि (वायसरॉय) व अधीन कर दिया था और उसकी उच्च उपाधि 'कुश का शाही पुत्र' थी।<sup>1</sup>

भारत के प्राचीन निवासी मिस्र के भूगोल से मन्वीमाति परिचित थे। इसका एक प्रमाण हाल ही में मिला है। अमेजी के 'इलस्ट्रेटेड बीकली आफ इण्डिया' 2 में प्रकाशित एक चित्र में बताया गया है कि मिस्र की नील नदी का खात कहा था हमरा यगन भी भारत के पुराणों में मिलता है। नील नदी के उद्गमस्थान दो हैं—एक धारा इथोपिया की एक भील से निकलती है तथा दूसरी उग्राडा प्रांत की एक भील से। दोनो धारायें यहाँ की राजधानी कारतूमक पास मिलकर आगे बढ़ती हैं। इनमें से एक धारा इथोपिया की एक भील से निकलती है और दूसरी नीली नील। नीली नील के उद्गम का पता जेम्स ब्रूक नामक एक एस्टैट्लेण्ट बासी ने १८३० ई० के लगभग इथापिया की एक भील में लगा लिया था, परन्तु इथोपिया का उद्गम उसका बाद भी रहस्यमय बना रहा। सन् १८५८ में भारतीय सत्ता के एक अधिकारी जनरल शान एकरमेन नील के उद्गम की खोज में गए। भारत में अनेक वर्षों तक रहकर उन्होंने यह मूल रूप था कि भारत

1 Nubia had been partly conquered by Amenemhet I who had made all southern Egypt into a viceroyalty. The Viceroy was given the dignity of Royal son of Kush" (Nubia and Ethiopia) as if he had the blood of the gods in his veins

2 The story of the Nile Private life of Tutankhamer Illustrated



के पुराणों में नील के उद्गम का विवरण दिया हुआ है तथा भारत के लोग बहुत प्राचीन काल से उस देश से व्यापार करते आये हैं। स्पेक ने पुराणों में से नील नदी का वर्णन निकलवाया, उसका अनुवाद अंग्रेजी में कराया गया तथा उससे आधार पर एक नक्शा भी तैयार कराया। फिर वह यह सामग्री अपने साथ लेकर जजीवार तथा केनिया होता हुआ उगांडा पहुँचा और नक्शों व सहारे आगे बढ़ता गया। उसे यह देखकर बड़ा हर्ष तथा आश्चर्य हुआ कि आगे बढ़ने पर उसे पुराणों में वर्णित एक बड़ी भील मिली और उससे एक नदी को घारा भी बह कर निकल रही थी। उसे श्वेत नील का उद्गम मिल गया था। इसका वर्णन उसने अपनी पुस्तक 'नील के उद्गम की खोज' (Discovery of the source of Nile) में पूरा स्पष्टता के साथ किया है। यह पुस्तक लन्दन से सन् १८६३ में प्रकाशित हुई थी—ऐसा उक्त लेखक लेखक श्री हरीशरण छावरा ने अपने लेख में बताया है।

### मिस्र में भारतीय रथ और घोड़े—

मिस्र का प्राचीन भारत के साथ सम्बन्ध होने के और भी कई प्रमाण मिलते हैं। मिस्र में रथ और घोड़े निश्चित रूप से भारत से ही पहुँचे। पिछले अध्यायों में बताया गया है कि सुमेर, बाबुल, अशुर, शाम आदि देशों में घोड़े तथा रथ बाहर से ही पहुँचे थे। मिस्र के इतिहास से भी यही बात सिद्ध होती है। वहाँ लगभग २००० ई० पू० तक घोड़ों तथा रथों के कोई चिह्न नहीं मिलते। इसके बाद ही यह दोनों वस्तुएँ वहाँ दिखाई देने लगती हैं तथा कई राजाओं की कब्रों में भी घोड़ों की अस्थियाँ तथा रथों व अवशेष मिलते हैं जिससे स्पष्ट होता है कि अब राजाओं की कब्रों में आवश्यकता की अन्य वस्तुओं के साथ रथ और घोड़े भी गाढ़े जाने लगे थे।

इस समय मिस्र में घोड़ों तथा रथों का इतना अधिक प्रचलन हुआ कि ये वहाँ की सेना के सबसे अधिक महत्वपूर्ण अंग बन गये तथा यह रथ सवार सेना मिस्र के शत्रुओं के लिये भय की वस्तु बन गई। मिस्र की सेना में अब शुद्ध सवार सेना का मुख्य अधिकारी एक बहुत बड़ा आदमी समझा जाता था। इतिहासकार इस बात से सहमत हैं कि मिस्र में रथ और घोड़े शाम या सीरिया से पहुँचे और शाम में ये चीजें मेवोलोनिया

*I With a deafening jangling of metal the tiny chariots bristling with spears and javelins dashed up at a furious pace drawn by little Syrian horses and driven by princes of the Empire dagger in belt It was the furious chariotry of Egypt the terror of the ancient world Private Life of Tutankhamen G A Tabours p 120*

होती हुई भारत से पहुँची जैसा कि पूर्व के अध्यायों में बताया जा चुका है। हम यह भी देख चुके हैं कि १८०० ई० पू० के लगभग शाम के 'हाइक्सोस' लोगों ने मिस्र पर हमला किया था और इन लोगों के पास युद्धसवार सेना भी थी। इन लोगों ने मिस्रवासियों को सड़क में पराजित कर लगभग टेढ़ सी वय तक मिस्र पर शासन किया था। सम्भवतः उसी समय में मिस्र में घोड़ी तथा रथों का प्रचलन हुआ। बाद में मिस्रवासी रथ अपने यहाँ तैयार करने लगे थे और ये रथ बहुत दृढ़ होते थे।

मिस्र पर आक्रमण करके उसे पराजित करने वाले ये हाइक्सोस कौन थे? इतिहास से पता चलता है कि ये लोग सीरिया (शाम) के सुरी, मितन्नी तथा लिच्छाई लोगों के ही मिस्र युद्ध दल के थे। इन सभी जातियों का भारत के आर्यों से सम्बन्ध था जैसा कि पूर्व के अध्यायों में बताया जा चुका है। आगे 'भारतीय सम्पत्ता का दूर देशों में विस्तार' अध्याय में भी इस विषय पर कुछ अधिक प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार पण लोगों के पश्चात् भारत के ही आर्यों की कुछ अन्य शाखाएँ एक बार फिर मिस्र में शासन करने पहुँचीं। ये लोग अपनी सेना में रथ और घोड़े रखते थे जिनकी युद्ध में उपयोगिता सिद्ध हो चुकी थी। इसी कारण पश्चिम के देशों में रथ और घोड़े अब एक लोकप्रिय सिद्ध हुए।

### मिस्र और मितन्नी —

यह एक ऐसा समय था जब पश्चिमी एशिया तथा आस-पास की चार शक्तियाँ—सुरी, मितन्नी, लिच्छाई, मिस्र तथा अशुर—शाम में अपना अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिये प्रतिद्वन्द्विता कर रही थी। सुरी तथा मितन्नी राज्यों को इतिहासकारों ने आर्यों का उगम माना है। मितन्नी एक बड़ा राज्य था जिसका विस्तार पुरात नदी के दोनों ओर था। यह सन् १५ वीं शताब्दी ई० पू० में पून उन्नति पर था तथा यह मेसापोटामिया और शाम का एक बलवान राज्य समझा जाता था। अशुरों की शक्ति भी इन दिनों वृद्धि पर थी तथा लिच्छाई राज्य भी बलवान था। अब उच्च सभी शक्तियाँ एक दूसरे को गिराने की गिनता में थी तथा उसके लिये उद्योग-रत थीं। कभी-कभी दो शक्तियाँ किसी तीसरी के विरुद्ध आपस में छिपि मी कर जाती थीं। लिच्छाई तथा अशुरों की बढ़ती हुई शक्तिसे मितन्नी और मिस्र दोनों को ही सतत उत्तन हो गया था। लिच्छाई राजा मिस्र पर आक्रमण करके उसे अपने अधिकार में करने की भी योजना बना रहा

1 The chariots for warfare and for peacetime travel were introduced from the East in the time of the Hyksos about 1600 B C with horses - *Encyclopedia Britannica Egypt*

The horse was unknown in Egypt before the invasion of Hyksos who introduced it from Syria. It first appears in the Tomb of Piton shortly after that time - *Private Life of Tutankhamen Foot* note p 126

था। अतः मित्राणी और मित्र दोनों को ही एक दूसरे की सहायता की आवश्यकता जान पड़ी। अतः इन दोनों में मधियाँ ही नहीं हुईं—व्याहिक सम्बन्ध भी होने लगे। विवाह ने प्रत्यय प्रायः मित्र की ओर से अये तथा इसका लिए उन्हें मित्राणी से बार-बार आग्रह भी करने पड़े। अतः मित्राणी के राजा अपनी कन्यायें मित्र के राजाओं को देने को तैयार हो गये तथा उनमें कई विवाह हुए। अमेनोफिस तृतीय का विवाह मित्राणी के राजा दशरथ की पुत्री के साथ तथा अमेनोफिस चतुर्थ का विवाह दशरथ की पुत्री से हुआ। इनके नामों के नाम मित्राणी तथा तदुत्थिता बताये जाते हैं। सम्भव है उनका सम्बन्ध नाम कुठ और हो, क्योंकि मित्राणी के राजा आर्य थे और उनका नाम भी वैसे ही होत था।

मित्राणी के राजा का नाम श्रुतोम (जिसे आहतम भी लिखा जाता है) तथा उसके पौत्र का नाम दशरथ यह सिद्ध करता है कि ये राजा आर्य जाति के थे। मित्राणी और लिच्छाद राजाओं में जो सन्धि हुई लिच्छाद लिच्छाद विवरण बोगजबोर्ड में प्राप्त हुआ है—उसमें इन्द्र, मिश्र, बरुग आदि देवताओं का सन्धि के साक्षी रूप में आवाहन किया जाना भी यही सिद्ध करता है कि मित्राणी के लोग आर्य थे तथा इस प्रकार लिच्छाद लोग या तो आर्य थे या कम से कम आर्य सम्प्रदाय से प्रभावित अवश्य थे। तात्पर्य १७ वीं १८ वीं शताब्दी ई० पू० में पश्चिमी एशिया में आर्य लोग पटुच चुके थे तथा वहाँ अपने राज्य भी स्थापित कर चुके थे। तब उससे पूर्व मित्र में भी भारत के आर्यों की कुछ शाखाओं ने अपना राज्य स्थापित किया हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

मिथिले तूतातजामिन के १८वें राजवशने पश्चात् जो १६ वीं राजवश स्थापित हुआ उसका सम्प्रदाय का नाम 'राम' से यही सिद्ध होता है कि यह लोग भी आर्य थे—यह सम्भव है कि अधिक समय तक भारत से दूर के देशों में निवास करने के कारण उनमें आर्य सभ्यता की शुद्धता नहीं रही हो तथा उन देशों की सभ्यता का कुछ प्रभाव पड़ चुका हो। कनल टाड तथा भीमुगु कुमार राम ने इस 'राम' का सम्बन्ध अवध के राजा 'राम' से माना है और कहा है कि मित्राणी सभ्यता ने निर्माता किसी सुदूर अतीत में भारत से ही मिथिले में पड़े थे।

सही विद्वान् कनल अल्काट का भी कया है कि आज से कोई आठ हजार वर्ष पहले भारत ने अपने यहाँ के प्रवासियों का एक दल बाहर भेजा था जो अपने साथ भारत की कलाओं और ऊँची सभ्यता उस स्थान में ले गये जो आजकल इजिप्त अथवा मिश्र के नाम से प्रसिद्ध है। इण्डिया इन ग्रीस' के लेखक भी प्रायः काल का भी विचार है कि उत्तरी पश्चिमी हिन्दुस्तान तथा हिमाचल प्रदेश के लोगों ने ही मिथिले का उपनिवेश बसाया था।

## पणियों के सम्बन्ध में—

मिस्र में राजवश की स्थापना करनेवाले लोगों का सम्बन्ध विशेष रूप से पणियों से बताया जाता है। पणि लोग प्रसिद्ध तथा कुशल-शासरी थे तथा अत्यन्त प्राचीन काल में भी वे व्यापार के लिये दूर दूर प्रदेशों में पहुँच गये थे। पश्चिमी एशिया के तटों पर तथा उसके बाद भूमध्यसागर के तटों पर उनकी अनेक बस्तियाँ बसी होने का पता लगा है। अतः यदि वे लोग मिस्र इश तक भी पहुँचे हों तो आर्य की बात नहीं है। प्रो० पिब्लस नामक एक यूरोपीय विद्वान का भी मत है कि मिस्रों और पणि एक ही थे। वे लोग लालसागर पार करके नील नदी के प्रदेश में आये और वहीं बस गये। लालसागर का यह देश पुनयापुनः कहलाता था।

पणियों के सम्बन्ध में भी अविनाशचन्द्र दास का मत है कि यह सप्तसिंधु प्रदेश में बसी हुई जातियों की एक जाति थी जो व्यापारी जाति होने के कारण जल और धन दोनों पर व्यापार करती थी। ये लोग अपने क्रूर बर्तनों के कारण तथा वैदिक धर्म और देवताओं में अविश्वास के कारण अत्यन्त धूमिल माने जाते थे। आर्या न युद्ध द्वारा इनको हस्तगत किया कि कुछ तो सप्तसिंधु छोड़कर नाविक रूप में समुद्र में रहने लगे। ये लोग पहले गुजरात में और फिर अरबों के तट पर पहुँचे और वहाँ से बढ़ा बढ़ते ये लोग फिलिप्पा अरब आदि देशों में पहुँचे। इन्हीं में से एक दल जिनमें अरबों का राज्य लाम भी शामिल था इरान और अरब की ओर बढ़ गया फिर वहाँ से मिस्र अथवा इजिप्त में जाकर बस गया।

प्राचीन मिस्र काओं की कुछ अन्य जातियाँ भी भारतवासियों में मिस्रियों जूती थीं। ये लोग स्वयं के अनन्य उपासक थे। जिन में दो बार स्नान करते, टूटा-टूटा पर बैठते तथा पृथग्विषय करते। ऐसी ही बातों को देखकर भी अविनाशचन्द्र दास का कथन है कि भारत के आर्यों ने ही मिस्र में पहुँचकर वहाँ अरबों के समान रूप में बसना शुरू किया था।

'हिन्दू अमेरिका' के लेखक भी समनन्तल का कथन है कि जिन तथा मागत दोनों ही देशों में कमाल एक पक्षि तथा राजकीय पुत्र माना जाता था—यह बात भी विशेष महत्वपूर्ण है।

उपर्युक्त तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए सभी जन पढ़ता है कि जिनो उदर अर्थात् काल से भारत के ही लोगों ने पश्चिम देशों में होने हुए जिन तक पहुँचकर अरबों के बस्तियों बसायी तथा अरबों के सम्बन्ध का प्रसार किया था।

## अध्याय ६

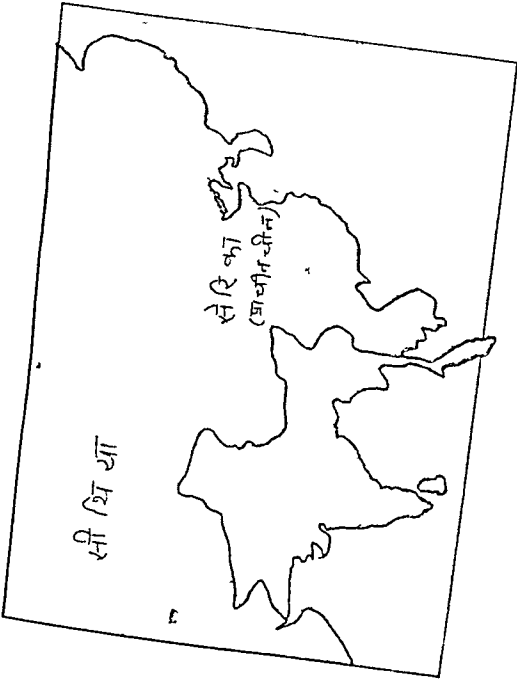
# चीन की प्राचीन सभ्यता

चीन देश आकार में जितना लम्बा-चौड़ा है, सभ्यता में भी उतने ही लम्बे काल का है। उसकी सभ्यता विद्वत् की इनो गिनी सभ्यताओं में गिनी जाती है। विशेषतः इस कारण कि भारत और चीन दो ही देश सभ्यताओं में ऐसे हैं जिनकी सभ्यताएँ प्राचीन सभ्यताओं के आगे तक बहुत कुछ अविच्छिन्न रूप में जीवित चली आ रही हैं। सभ्यता की अन्य प्राचीन सभ्यताओं—सुमेर, बेबिलोनिया, अशुर, मिस्र आदि की—कभी की नष्ट हो चुकी—मिस्र को छोड़कर आज उन देशों के नाम भी इतिहास के पृष्ठों में ही रह गये हैं, किन्तु भारत और चीनकी सभ्यताएँ आज भी प्रायः वैसी ही हैं—वही धर्म, प्रायः वही सामाजिक जीवन, वही आचार विचार और वैसे ही विवाहादि संस्कार। चीन के लोग भी यह मानते हैं कि भारत, मिस्र तथा बेबीलोनिया की सभ्यताओं के बाद उनकी सभ्यता ही सभ्यता में सबसे अधिक पुरानी है—चार पाँच हजार वर्ष अथवा इससे भी अधिक काल की। चीनी परम्पराओं में अनुसार उनके इतिहास का शुरुआत काल अथवा से पाँच हजार वर्ष अथवा इसी सन् से ३ हजार वर्ष पूर्व था। यूरोप के देशों में तो उसकी सभ्यता बहुत अधिक पुरानी है ही। 'प्राचीन यूनान जब खदान या तब भी चीन सभ्यता में बढ़ा हो चुका था।' यूनान में जब सिकन्दर महान् पैदा हुआ उससे कई शताब्दियों पूर्व चीन कनफ़ूशियस महान् को जन्म दे चुका था। चीनी लोग अपनी सभ्यता को बहुत पुरानी ही नहीं बहुत उच्चकोटि की भी मानते हैं।

चीन की सभ्यता की मूलि ही चीन का इतिहास भी अपनी पुरानी है। यद्यपि उसका वर्तमान नाम 'चीन' जो वहाँ के चिन राजवंश के कारण पड़ा—बहुत बाद का है। चीन का पुराना नाम 'सिरिका' मिलता है जो मंगोल शब्द 'सिरिक' से बना है। सिरिक का अर्थ होता है 'देशम्'। इसका अर्थ यह है कि चीन अपने देशम् के उद्योग के लिये बहुत प्राचीन काल से प्रसिद्ध है। देशम् का उद्योग उसकी एक विशेषता थी जो किसी अन्य देश में नहीं पायी जाती थी। इसी कारण चीन का नाम ही 'सिरिका' अर्थात् देशम् का देश पड़ गया। यूरोप में उसे 'मिडिल किंगडम' अर्थात् मध्यवर्ती राज्य भी कहा जाता था। चीनी लोग स्वयं भी अपने देशका नाम 'चुंग हुआ' अथवा 'चुंग कुआ' कहते हैं जिसका अर्थ होता है—पूनों में मरी हुई मध्यवर्ती भूमि।

सिंधिया

सेरिका  
(प्राचीन चीन)





## चीन की प्राचीनता—

यूरोपीय विद्वान भी यह मानते हैं कि आदि मानव सृष्टि एशिया में ही हुई होगी क्योंकि पृथ्वी पर मानव की उत्पत्ति के प्रमाणस्वरूप जिन प्राचीन कपालों तथा कपालों का पता लगा है उनमें एक कपाल 'पकिंग मानव' का भी है, जिसका काल लगभग ५ लाख वर्ष पूर्व का अनुमान किया जाता है। यह खोपड़ी पकिंग नगर के उत्तर में एक प्राचीन गुफा में प्राप्त हुई थी। यह मनुष्य सदृश्य प्राणी सम्भवतः प्लाइस्टोसीन अर्थात् निकृत्तम बौवन के युग का है जो पुरा पाषाण युग से भी पूर्व का समझा जाता है। इन लोगोंके पास पत्थर के तथा हड्डियों के भद्दे हथियार हाते थे। चीन में पुरा पाषाण युग तथा नव-पाषाण युग के भी चिह्न मिले हैं। हड्डियों के और चकमक पत्थरके औजार उत्तरी चीन में कई जगह मिले हैं। मिट्टी के वर्तन सुन्दर आवृतियों में चित्रित मिट्टी के आग पर पनाये हुए हैं। ये वस्तुएँ कम से कम ३००० वर्ष ई०पू०की समझी जाती हैं।

वहाँ तक पता लगाया गया है चीनी लोगों की मुख्य बस्तियाँ सबसे पहले भी उत्तर पूर्वी चीन में हांगहो अथवा पीली नदी के आस पास पाइ गइ हैं। यहीं से ये लोग यांगत्सीकांग नदी के आस-पास तथा अन्य दिशाओं में उड़ते गये। ये लोग पीली नदी की घाटी में वहाँ से आये इस सम्बन्ध में अनेक मत हैं। यूरोप के कुछ विद्वान यह मानते हैं कि ससार के प्रत्येक भाग में आनकाल को लोग बसे हुए हैं वे सभी प्राचीन काल में कहीं-कहीं बाहर से आकर वहाँ बसे थे। अतः चीनके निवासियों के सम्बन्ध में भी उनका विचार है कि ये विभिन्न स्थानों से विभिन्न समयों में आकर चीन में बसे। कुछ लोग पदिनम की ओर से तरिम उपत्यका के मार्ग से आये, कुछ उत्तरसे आये और कुछ दक्षिण से। इस प्रकार ये लोग कई स्थानों से आकर हांगहो नदी के आस पास बस गये। कुछ विद्वानों का यह भी अनुमान है कि चीनके सबसे पुराने निवासी दक्षिण पहात की घाटियों से आये होंगे और वहाँ से ये सुमेरी सम्प्रदाय अपने साथ लाये थे। इस मत के समर्थक प्रो० टरीन डी लेकापरी हैं जिन्होंने अनेक प्रमाणों सहित बताया है कि चीन के लोग २३ वीं शताब्दी ई० पू० में बश्शर गागर के दक्षिणी भाग में पूरब की ओर बढ़कर हम भूमि में आये। इस समय में उन्होंने चीन और अफगानिस्तान की प्राचीन लिपियों में बहुत सी समानताएँ बताई हैं तथा दोनों देशों के धार्मिक और सामाजिक रीति रिवाजों और विश्वासों में भी समानता दिखायी है। उनका यह भी कहना है कि चीन के सम्राट याओ (२१ शताब्दी ई०पू०) ने चीन को जो १२ भागों में बाँटा था। यह विभाजन मुत्सताना (एलाम) के १२ प्रान्तों के अनुकरण में ही किया गया था। १ कुछ लोग उन्हें तिबेट के पहाड़ से आया हुआ भी बताते हैं।



इसने विपरीत कुछ लोग अनुमान करते हैं कि चीनी और सुमेरी दोनों के पूर्वज मध्य एशिया में रहते थे—उनमें से कुछ लोग पश्चिम दक्षिण में गये और वे सुमेरी कहलाये तथा कुछ पूरुब की ओर आ गये जो वर्तमान चीनियों के पूर्वज थे। कुछ लोग मानते हैं कि चीनी सभ्यता दक्षिण तथा दक्षिण पूरुब से आई तथा कुछ अन्य लोगों का मत है कि चीनी लोग कहीं बाहर से नहीं आये और न चीन की सभ्यता ही बाहर से आई है।

वास्तव में यह अतिम मत सबसे अधिक सुक्ति सगत तथा सत्य जान पड़ता है। हाल में भूगर्भित सर्वभूषण विभाग के सर्वेक्षण में होनान प्रांत में तथा अन्य स्थानों पर ऐसे अवशेष मिले हैं—औजार बर्तन आदि—जो उन वस्तुओं से मिलते-जुलते हैं जिन्हें चीनी लोग ऐतिहासिक काल के प्रारम्भ में काम लाते थे।<sup>1</sup> इसके अतिरिक्त चीनियों के पास जो पुराना साहित्य है उसमें कहीं ऐसा उल्लेख नहीं मिलता कि वे कहीं बाहर से आये हों।<sup>2</sup> इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि चीनी लोग कहीं बाहर से नहीं आये और न उनकी सभ्यता ही कहीं बाहर से आई। उसका विकास चीन में ही स्वतंत्र रूप से हुआ। शांग राजवंश के काल में जो द्वितीय सहस्राब्दी ६०० पू० के अन्त मसम रा हुआ वहाँ जाँच की वस्तुओं भी मिलने लगती हैं। इसने पश्चात् चाऊ कालम कार्य कला की काफी उन्नति हुई।

चीनी लोग अपनी सभ्यता पर तथा अपने इतिहास पर काफी गर्व करते हैं। अपने इतिहास के सम्बन्ध में वे मानते हैं कि सभ्यता में सबसे पहला मनुष्य चीन में ही हुआ था। उसका नाम पानकु था और उसे देवी शक्तियाँ प्राप्त थीं। वह जान का ही नहीं सभ्यता भर का राजा था। उसकी बहुत पीढ़ियों बाद युवावा हुआ जिसने लोगों को सुधारायुक्त करने के लिये मजान बनाना सिखाया। फिर सुइ जन हुआ जिसने अग्नि का आविष्कार किया। फिर फू हसी हुआ जिसने मनुष्यों को शिखार करण, मञ्जरी पकड़ना और मनुष्यों को पालना सिखाया। उसी ने विवाह की प्रथा चलाई, उसी ने गान के यंत्रों का आविष्कार किया और चीनियों को गायन सिखाया। उसी ने लिपि में सुधार कर चित्र लिपि का प्रचलन किया। उसने समय के माप का भी उपाय निकाला जिससे बाद में तिगि-यंत्र प्रचलित हुआ। इस प्रकार फू हसी चीन के प्राचीन इतिहास अथवा अनुभूतियों का एक प्रसिद्ध दक्क है जिसका काल ३ हजार ६०० पू० तक लगभग का समझा जाता है। चान म लोग फू हसी को ऐतिहासिक व्यक्ति मानते हैं। वे कहते हैं कि इसी काल में चीनी लिपि तथा लिखित साहित्य की मूल उत्पत्ति हुई—धम और दर्शन ने भी उत्पत्ति की।

1 *The Peoples of the Far East* Vol. V China p 570

2 *History of the Far East* Hutton Webster p 33

चीनी अनुभूतियों के अनुसार पू-हुसी के बाद दोन नग हुआ जिसने लोगों को खेत जोतना और फसलें रोना सिखाया। उसी न पड़ पौधों में औषधियों के गुणों का भी पना लगाया। दोन नग क जग ह्यागती हुआ जिसका अर्थ है पीला सम्राट। इसका यह नाम इस कारण पड़ा कि उसे पीला रंग बहुत पसन्द था। वह पीले रेशमी बख पहनता था तथा उसके महल की छतें भी पीले रंग से रगी जाती थीं। इसने अपने देश की सीमायें बहुत बढ़ाई, तिथि-पत्र में सुधार किया, लोगों क रहने के लिये मकान और नगर बनवाये और व्यापार भी गुरू कगया। इसी की पत्नी ने रेशम का आविष्कार किया और रेशमी बखों को तैयार करना लोगों को सिखाया। इसके काल क सम्बन्ध में २८०० ई० पू०) बताया जाता है।<sup>1</sup> बहुत से लोग इस ह्यागती को भी ऐतिहासिक व्यक्ति मानते हैं परन्तु यूरोपीय इतिहास लेखक यहाँ तक के काल की अनुभूतिवा अथवा दत्त कथाओं का ही काल मानते हैं।

### इतिहास—

चीनियों में एक कथावन है कि भूतकाल के शानक द्वारा ही वर्तमानकाल को समझा जा सकता है। यह उनके प्राचीनता प्रेम का योक्त है। परन्तु चीनियों के प्राचीन इतिहास क सम्बन्ध में ऐसे दृढ़ प्रमाण उपलब्ध नहीं होते जिनक आधार पर प्रामाणिक इतिहास लिखा जा सके। इसी कारण चीन क ऐतिहासिक काल का प्रारम्भ यहाँ से किया जाय इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोग ३००० ई० पू० क काल को ऐतिहासिक काल मानते क पात्र में हैं, कुछ लोग २५०० ई० पू० के काल को और कुछ लोग छठवीं शताब्दी ई० पू० से ही यहाँ क ऐतिहासिक काल का प्रारम्भ मानते हैं। चीनी लोग भरनो परम्पराओं क अनुसार मानते हैं कि उनक देग का 'सर्गकाल' ईसा से लगभग ३ शताब्द क पूर्व था जबकि चीन में पू हुसी तथा ह्यागती का राज्य था तथा देग मुगो और समृद्ध था।

लगभग २५०० ई० पू० से चीन क इतिहास के सम्बन्ध में बहुत कुछ विग्नसनीय आधार मिलाने लगते हैं। चीन में प्राचीन इतिहास सम्बन्धी एक पुस्तक है जो 'पु'द्विय' कहती है। इसमें साओ गुन और पू नाम क राजाओं का उल्लेख किया गया है और यह माना गया है कि ये राजा लोग सम्राट ह्यागती को चार पीढ़ियों बाद तथा उससे आगे हुए। चीन के मुस्लिम विद्वान दार्शनिक कनफू'सियस (कॉन्फ्यू) ने भी चीन का प्राचीन इतिहास उग समय प्रारम्भ अनुभूतियों क आधार पर लिखा है और उन्होंने यह इतिहास साओ तान क राजा से ही गुरू किया है। कनफू'सियस ने साओ

<sup>1</sup> *Inclyredisa Britannica* १८६१ China p-८२०

को बड़ा विद्वान और बुद्धिमान बताया है और लिखा है कि उसके समय में चीन की सीमाओं का काफी विस्तार हुआ तथा प्रान्तों को सुव्यवस्थित किया गया। उन्होंने पुन और यू नाम के राजाओं का भी उल्लेख किया है और इन तीनों राजाओं को आदर्श राजा बताया है।

पुन के समय में ही (लगभग २३ वीं या २४ वीं शताब्दी ई० पू०) चीन में एक भयंकर बाढ़ आने का उल्लेख मिलता है जिससे चीन में भारी हानि पहुँची। अनुमान किया गया है कि यह बाढ़ ह्वांगो नदी (पीली नदी) से आई होगी जिसमें प्रायः सदा से बाढ़ें आती रही हैं। इस बाढ़ को रोकने के लिये यू नाम के एक अधिकारी को नियुक्त किया गया था। जिसने ६ वर्ष तक निरंतर परिश्रम करके नदी की पुरानी धारा में लौटा दिया। उसकी इस सेवा तथा सफलता से चीन के लोग उससे इतने प्रसन्न हुए कि पुन की मृत्यु के बाद उन्होंने यू को ही राजगद्दी पर बैठाया। उन्होंने चीनमें ह्सी राजवंश की स्थापना की। उसने जाह्निक बहुत से काम किये और उन्हें पत्थरों पर खुदवाया भी। इन्हीं कारणों से माओ, पुन तथा यू नाम के राजाओं को ऐतिहासिक मानना उचित है।

यू के ह्सी वंश का राज्यकाल २२०५ ई० पू० से १७६५ ई० पू० तक माना जाता है इस वंश का अंतिम राजा चिंहेह कोइ था जो अत्यंत दुष्ट, अत्याचारी तथा दुराचारी था। अतः लोगों में उसने विद्रोह फैल गया। इस विद्रोहका मुखिया त्सांग नाम का एक व्यक्ति था जिसने राजा को पराजित कर गद्दी से उतार दिया और स्वयं गद्दी पर बैठकर एक नया राजवंश चलाया यह शांग या मिन राजवंश कहलाया। यह वंश १७६५ ई० पू० से ११२२ ई० पू० तक चलता रहा तथा इस वंश में २८ राजा हुए। हाल में प्राप्त पुरातत्व सम्बंधी राजाओं से भी शांग वंश के अस्तित्व का समर्थन हुआ है। इस समय चीन में काफी सांस्कृतिक उन्नति हुई। इन राजाओं के पास काले व बड़े बड़े सुन्दर बतन थे जिनसे ज्ञात होता है कि काले की कला उस समय काफी उन्नति कर चुकी थी। इन राजाओं के समय की कुछ लिखावट भी मिली है जो चीनी लिपि का पूरा रूप माना जाती है। पत्थर व शिखर व कुछ नमूने भी इस काल के मिले हैं। पिछले वंश के समान इस वंश का २८ वां राजा भी बड़ा विलासी तथा अत्याचारी था। उसने अपनी एक रखेजी के लिये एक बड़ा सुन्दर महल बनवाया था। उसकी विलासप्रियता से प्रजा तंग आ गई। एक बार फिर विद्रोह फैला हुआ और इस बार विद्रोह का नेतृत्व चाऊ नामक एक छोटे राज्यके राजकुमार ने किया। राजा फिर पराजित हुआ तथा गद्दी से उतार दिया गया। श्लानि के कारण उसने आत्म-हत्या कर ली।

## चाऊ राजवंश—

चाऊ राजवंशका काल ११२२ ई० पू० से २२१ ई० पू० तक रहा। चीनके इतिहास का यह एक महत्वपूर्ण काल है। इस समय की घटनाओं में भी अनेक ऐतिहासिक प्रमाण मिलना लगते हैं। इस वंशक वंश राजा चल्वान तथा प्रजा हितचि तक हुए। उन्होंने व्यापारिक के इलाकों पर विजय प्राप्त करके चीन का विस्तार बढ़ाया। चीन के सुप्रसिद्ध धर्म कथ्यपक कनफरसिप्रा और लाआत्मे इसी कालमें हुए। चीनी साहित्यक पुनरुत्थान का भी यही समय माना जाता है। राज कनफरसिप्रा ने ही बहुत से साहित्य का पुनरुद्धार किया। काले की कला का भी इस काल में अत्यन्त प्रगति से विकास हुआ।

किन्तु इस वंशक विजय राजा सम्राट और अयोग्य हुए और उनके समय में साम्राज्य में अनेक छोटे छोटे राजा सिर उठाते लगे और अशांति फैलाने लगे। प्रत्येक राज्य राजा सम्राट बनने की धुन में रहता। अतः उनमें आरम्भ में भी बहुत से लड़ाई-भगदौ लगे लगे। इसने समस्त देशमें अशांति फैली रही। कनफरसिप्रा ने इस काल के सम्बन्ध में लिखा है—'यह सामन्त प्रथा की उत्पत्ति का युग था, राज सामन्त प्रथा पर ही टिका हुआ था और इन छोटे छोटे राज्यों के अधिसारी एक प्रकार से राजा प्रथा तक बन गये थे। वे अपनी-अपनी सेना भी रखते थे। हाँ, सम्राट द्वारा आवश्यकता के समय उपाय जाने पर उन्हें अपनी सेना लेकर ये तीन राजधानी में जाना पड़ता था।

इस सामन्त प्रथा के कारण ५०० ई० पू० से ही इस वंश का भाग्य खूब अग्लान्त की ओर जाने लगा था। राजा के अधिसार से दूरस्थ प्रांत निरन्त गये थे। राजा की शक्ति भी नाप मात्र की रह गई थी। अन्तिम राजा नाम मात्र का ही सम्राट था। चीन के अनेक सामन्त उससे भी अधिक शक्ति रखते थे और राजा पूर्णतया उसकी कृपा में रहता था। इसी कारण इन सामन्तों ने देश भर में एक प्रकार का राज स्वीकार किया। प्रजा उनके आचारों में दादिल चाहि कर रही थी। ये लोग आरम्भमें ही लड़ने रहने के विषयमें पारो ओर अशांति उत्पन्न कर रही थी। इस वंशक चीन का इतिहास हमारी आंखों से लड़ाई भगदौ का इतिहास है। इन युद्धों में अनेक राजाओं और सम्राटों ने बड़ी योग्यता के साथ जिन्दे ब्रिगडी कदमें चीन में गढ़ बनायी हैं।

## चिन राजवंश—

चीन की प्रसिद्ध दीवार—यह राजाओं के अन्तर्गत ही अन्तर्गत का अन्तर्गत हुआ। चिन राजा का राजा अर अर सब सामन्तों से अधिक शक्तिशाली हो गया। उसने कई लड़ाईयें कीं। अन्त में उसने सम्राट के विरुद्ध भी युद्ध छेड़ दिया और यह लड़ाई में उसे भी पराजित किया। अन्त में उसने सम्राट का गद्दी में इसावर पारस का अन्त कर दिया। चिन प्रांत का यह विजय राजा ब्रिगडी नाम दीह

हागती था अत्र गद्दी पर बैठा और इस प्रकार चीनमें 'चिन' राजवंश की स्थापना हुई । इसी वंश के नाम पर देश का नाम भी 'चीन' पड़ा जो अब तक चला आ रहा है ।

शीह के रूप में ससार का एक महान् व्यक्ति चीन की गद्दी पर बैठा और उसने एक महान तथा ऐतिहासिक राजवंश की स्थापना की । उसने कई महान् कार्य किये । चिनमें से एक चीन की महान् दीवार है । भूमि के ऊपर स्थापत्य के एक अमर स्मारक के रूप में यह आज तक विद्यमान है ।

चीन के सामन्तवाद की बुराइयों को शीह भलीभाँति देख चुका था । अतः उसने सबसे पहले चीन को सुदृढ़ नगाने की आरम्भ दिया । उसने सामन्तों के अधिकार कम किये और फिर सामन्ती प्रथा को ही समाप्त कर दिया तथा देश भर में फैले हुए अनेक छोटे छोटे राज्यों को साम्राज्य में मिला दिया ।

चीन की एक विशेषता यह रही है कि वहाँ के लोग अपनी पुरानी प्रथाओं के बड़े पक्षपाती होते हैं । सामन्तवाद की बुराइयों को सभी लोग जानते और गमभङ्गे थे । किन्तु जब शीह ने सामन्तवाद को मिटाने का प्रयत्न किया तो चीन के अनेक पण्डितों और विद्वानों ने सम्राट का विरोध किया तथा पुराने लेखे दिग्वा दिग्वा कर सामन्त प्रथा का समर्थन करना आरम्भ किया । कन्फ्यूशियस की भी दुहाई दी गई । यह सब देख कर सम्राट बड़ा क्रोध हुआ । इस क्रोध में उसने निश्चय किया कि पुराने जिन लेखों और प्रमाणों के आधार पर सामन्त प्रथा का समर्थन किया जाता है तथा उसके सुधार का विरोध किया जाता है उन सब प्रमाणों को ही क्यों न नष्ट कर दिया जाय । वह यह भी नहीं चाहता था कि उससे पहिले का कोई राजा 'सम्राट' कहलाये । अतः उसने अपनी पदवी 'प्रथम सम्राट' रखी जिसका अर्थ यह हुआ कि उससे पहिले चीन में कोई 'सम्राट' नहीं हुआ, सब सधारण राजा ही हुए हैं और वही सबप्रथम 'सम्राट' है । उसने अपनी इस पदवी की घोषणा सार्वजनिक रूपसे करा दी । फिर उगन पुराने लेखों को नष्ट करने के उद्देश्य से यह आज्ञा प्रसारित की कि पुरानी समस्त पुस्तकों को अग्नि के समर्पण कर दिया जाय । यदि किसीके पास पुरानी पुस्तकें पाई जायेंगी तो उसे मृत्यु पण्ड दिया जायगा । इस आज्ञा से चीन में बड़ी हलचल मची, चारों ओर मारी असातोष चला परन्तु राजा अपनी आज्ञा पर दृढ़ था, अतः हजारों प्राचीन ग्रन्थ जलाकर नष्ट कर दिये गये । परन्तु ऐसे ही कुछ लोग थे जिन्हें अपने प्राचीन साहित्य का मोह अपने प्राणों से भी अधिक था । ऐसे लोग अपने नष्टमूलक प्रथाओं को लेकर जगलों तथा पहाड़ों में जा छिपे अथवा उन प्रथाओं को कन्दराओं तथा ऐसे अन्य अगम्य स्थानों में छिपा आये वहाँ उनका पता न लगे । इस प्रकार बहुत-सा महत्त्वपूर्ण साहित्य नष्ट होने से बच गया ।

देश में एकत्र तथा शान्ति स्थापित हो जाने पर शीह ने उसकी सुरक्षा की ओर ध्यान दिया। इन दिनों चीन की उत्तरी सीमा पर बसे हुए मंगोल अपवाद तत्कार लोग अपनी घुड़सवार सेना लेकर बार-बार चीन की भूमि पर आक्रमण करते रहते थे तथा लूट मार और बर्बादी फैलाते थे। इन आक्रमणों की रोकने के लिये सम्राट ने अपने राज्य की उत्तरी सीमा पर एक बड़ी तथा सुदृढ़ दीवार बनाने का निश्चय किया जो मंगोलों की घुड़सवार सेना को रोक सके। ११४ ६० पू० तक लगभग उसने इस दीवार का काम आरम्भ कर दिया। कहते हैं कि इस दीवार के बनाने में लगभग ५ लाख मनुष्य लगे थे तथा उन्होंने कई वर्ष तक निरन्तर श्रम करके यह विशाल दीवार तैयार की। कुछ लोगों का यह भी कहना है कि इस दीवार के कुछ भाग परल स ही विद्यमान थे। शीह ने उन्हें सुदृढ़ किया तथा विस्तृत भी किया। कुछ भी हो चीन की यह प्रसिद्ध दीवार शीह की ही बनवाई हुई मानी जाती है।

यह विशाल दीवार पर्सिंग नगर के उत्तर पश्चिम में लनचाऊ नामक स्थान से शुरू होकर पूरव तक मुद्र तक अर्थात् शान हाई नान नामक स्थान तक चली हुई है। इसकी कुल लम्बाई १५०० मील तक लगभग है। यह मिट्टी और पत्थर की बनी हुई है तथा कहीं-कहीं ईंट भी लगा दी गई है। पूर्वी छोर पर सन्तिय यह २० स तीस फुट तक ऊंचो तथा अंधार पर १५ से २५ फीट तक मटी है। चीन बीच में जुर्न बन हुए हैं जिनपर पैठार चौकीदार लोग उत्तर की ओर शत्रुओं की हथियारों की दायमाल रखते थे। जब शत्रु दल आना दिखायी देता तो उन बुर्जों पर अग्नि प्रचलित कर दी जाती थी जिससे शत्रु पाकर चीन की सेनायें तैयार हो जायें।

चीन की यह विशाल दीवार मिन च विगमिटों की तरह शहर के ७ आदर्शों में गिनी जाती है यद्यपि यह इतनी विशाल है कि इनके सामने मिन च विगमिट मुझे बेशर्ही दिखाई देते हैं।

इस प्रकार सम्राट शीह जागी ने कमजोर और दुर्बलों में बसे चीन को सुदृढ़ तथा सुगठित बनाने का पूर्ण प्रयत्न किया। उसने कुछ सड़कें भी बनवाई तथा सुगरी। नदियों पर पुल बनाये तथा सातसात के साधनों में उत्थान की। उसने प्राचीन की शासन-व्यवस्था में भी सुधार किया। इसी कारणों से वह आधुनिक चीन का निर्माता कहा जाता है।

११० ६० पू० इस महान 'प्रथम सम्राट' का देशस्थान हुआ। उसका अपने राज्य का नाम 'द्वितीय सम्राट' करवाया। कुछ दिन का समय ही देना कर दी गई। फिर यह क बड़ा ३ राज, गरा पर बैठ।

पश्चात्तक काव च प्रारम्भ में ही चीन च सम्राट अपने को 'राज का पुत्र करने लगे। उनका विश्वास था कि वे शरर की राज स पुत्र पर राज्य काय है तथा पुत्री

पर हजरत के प्रतिनिधि हैं। चिन वश के राजाओं ने भी अपनी यही उपाधि धारण की थी।

### हान वश—

२०६ इ० पू० में एक नया वश चीन की गद्दी पर बैठा जो 'हान वश' कहलाया। इसका सहायक एक किसान था जिसका नाम था काओ-नी। यह वश लगभग ४०० वर्षों तक अर्थात् २२० इ० तक राज्य करता रहा। यह भी चीन के इतिहास में एक महत्वपूर्ण काल है। इस समय में चीन के प्राचीन साहित्य का पुनरुद्धार हुआ। जो साहित्य 'प्रथम सम्राट' के समय में चण्डों और पहाड़ों में छिपाकर रखा गया था वह अब प्रकट होने लगा क्योंकि अब उससे खोले पर प्राण-पट का भय नहीं रह गया था। इन पुस्तकों को प्रतिलिपियाँ अब तैयार करायी गयीं तथा प्रसारित की जाने लगीं। कनफू-शियस के कानूनों की पुस्तकें भी पुनः प्रकट हुईं। जो प्राचीन पुस्तकें नष्ट हो गई थी वे पुनः लोगों की स्मृतियों के आधार पर पुनः लिखी गईं। जिन लोगों ने अपने प्राण छुट में डालकर पुराना बहुमूल्य साहित्य सुरक्षित रखा था उनका अब बड़ा आदर होने लगा।

इन राजाओं के समय में चीन पर उत्तर के मंगोलों के निरन्तर आक्रमण होते रहे तथा अनेक भयकर युद्ध भी हुए। चीनकी विशाल दीवार भी इन आक्रमणों को रोक-तथान राक नहीं। एक बार ता मंगोल सैनिक इतनी बड़ी संख्या में चीन में घुस आये कि उन्होंने चीनियों की तीन लाख की विशाल सेना को धर लिया। चीनी सम्राट भी घिर गया और उसे ओरक अपमानजनक शर्तें स्वीकार कर सौंघ करनी पड़ी। शर्तों के अनुसार चीन को रेशम, जमाइयान, चावल, अगूरी शय्या तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुओं के साथ अपनी एक राजकुमारी भी मंगोल राजा को देनी पड़ी। इस प्रकार चीनी राजकुमारियों का शक्तिशाली तातार राजाओं से विवाह करने की प्रथा चल पड़ी जो आगे बहुत काल तक चलती रही।

परन्तु कुछ समय पश्चात् यह क्रम बदल गया। दूसरी शताब्दी ई० पू० में हान राजाओं ने तातारों के ऊपर तीन प्रबल आक्रमण करके उनसे 'उदू' (लश्कर) को छिन भिन्न कर दिया। इन आक्रमणों के फलस्वरूप तातारों तथा हूणों की सैनिक शक्ति तोड़ दी गई। शहनों तातार तथा हूण में ही बनाये गये और उन्हें चीन के निर्माण कार्यों में लगाया गया। इसके कुछ समय पश्चात् ही मंगोल तथा हूण शक्ति छिन के विरुद्ध टिग भिन्न हो गयी।

इस प्रकार हान वश का भी चीन के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है तथा अमिन्न प्रभाव है। यह लगभग चार सौ वर्षों का लग्ना काठ चीन के इतिहास में 'सर्वगत काल'

कहलाता है। साहित्य, कला, व्यापार सभी की उन्नति इस काल में हुई। चीन का विस्तार भी बढ़कर मंगोलिया, मन्चूरिया और कोरिया तक हो गया। इसी कारण चीनी लोग अपने को 'हान पुत्र' कहलाने में गौरव तथा गव का अनुभव करते हैं।

### चीन की सभ्यता—

चीनी लोगों का कथन है कि उनकी सभ्यता मिस्र तथा बेबीलोन के समान ही पुरानी है अथवा इन दो तीनों सभ्यताओं के बाद समार में सबसे अधिक पुरानी है। चीनी लोग फुङ्गो को एक ऐतिहासिक व्यक्ति मानते हैं और यह मानते हैं कि उसी ने लोगों को पशु-प्राण्य सिखाया तथा विवाहादि के नियम प्रचलित किये। फिर शोन नग ने कृषि सिखाई, बाजार बनाये और जड़ी बूटियों के चिकित्सा-उपग्रन्थी गुणों की खोज की। फिर हांगती ने लकड़ों तथा धातु की कलापूर्ण वस्तुएँ तैयार करना सिखाया तथा मुद्रा का भी आविष्कार किया।

उद्योगों में चीन वालों ने सबसे पहले रेशम का काम सीखा। यह चीनका अत्यन्त प्राचीन तथा प्रमुख उद्योग माना जाता है। चीन का पुराना नाम 'सिरिस' भी यही प्रकट करता है कि रेशम चीन का अति प्राचीन उद्योग है। कहा जाता है कि सम्राट हांगती की पत्नी लीत्सू ने रेशम के कीड़ों के कोनों में से रेशम निकालने और उसे पुनः काड़ा बनाने की कला का आविष्कार किया था। बहुत काल तक रोमनी राज तैयार करना चीनियों का ही एकाधिकार रहा और वे उ ई पूर दूर के देशों में भेजकर अच्छा लाभ कमाते थे। चीन में रेशम के कीड़े उत्तरी भाग के जगलों में अपने आप पैदा होते थे। मनुष्य की बुद्धि ने उनका व्यापारिक उपयोग निकाल लिया। भारत तथा यूरोप के देशों में रेशम का उद्योग चीन से ही आया।

प्राचीन चीनियों के अथ व्यवसाय विचार करना, मछली पकड़ना लेनी करना आदि थे। लकड़ी का सामान, धुर्गी मत्र बनाना आदि भी सम्भवतः बहुत पहले सीख गये थे।

### शिल्प तथा साहित्य—

रेशम कला का विहासमी चीन में काफी समय पूर्व हो गया जान पड़ता है। चीन में सबसे पुराने रेशम १८०० ई० पू० तक के मिलते हैं। उस समय यहाँ नियमित प्रचार का शिल्प अथवा उनको प्रकट करनेवाले दगुओं से मिलने वाले बनाये जाते थे। उपारराज्य यहाँ का विश्व का आशय से विहासी दूर पूर्व और उत्तर का प्रकट करने के लिये नयवद्र का आशय बना मिला जाता था। इस अर्थ में इतिहासकारों के



अनुसार चीनी अक्षर दो हजार ३५० ई० पू० से भी पहले के मिलते हैं। 12 चीनी पुस्तक जो प्राचीन काल से पढ़ी जानी थीं लकड़ी के पतले पत्रों पर या बाँस के पत्रों पर लकड़ी या बाँस की कलम से लिखी जाती थीं।

चीन का प्राचीन साहित्य यहाँ के कानून हैं जो कनफूशियस से पूर्व के लोगों के बनाये हुए हैं। उनका संकलन तथा सम्पादन कनफूशियस ने किया था। इसमें २४ वीं शताब्दी ई० पू० से ८ वीं शताब्दी ई० पू० तक का इतिहास भी है इसे शान्तिंग कहते हैं। दूसरा एक ग्रंथ गीतों का संग्रह है जिसे शादकिंग कहते हैं। इससे बाद कनफूशियस तथा मेसियस आदि सत्तों के उपदेश ग्रंथ हैं जिनका चीन में बड़ा आदर है।

### धर्म —

बुद्ध लोगों का मत है कि चीन का सभसे प्राचीन धर्म एक इक्ष्वाकुवंश था। यह इक्ष्वाकु मनुष्य की पहुँच से बाहर ऊँचे आसमान पर था। वह चराचर सज्जनों के ऊपर हुकूमत करता था। शीघ्र ही और भी दबी-देवता उत्पन्न होने लगे। सूर्य चंद्र पर्वों का ग्रह ये सभी देवताओं का रूप धारण करने लगे। इनकी पूजा होने लगी। माता धरती ने भी इस सूची में स्थान पाया। एक लेखक के अनुसार 'टिएन' और 'टो' स्वर्ग और पृथ्वी अथवा धाम पृथिवी चीन में बहुत प्राचीन काल से पूजे जाते हैं। फिर आबी, चर्गा, प्रीष्म की भीषणता, नदी पवन आदि सभी में स्थित किसी देवता की आत्मा मानी जाने लगी। तत्पश्चात् यह कि चीन के प्राचीन लोग मृत्यु के प्रकृतिक के उपासक थे।

### पुरखों की पूजा—

इन अनेक देवी देवताओं के साथ पुरखों की पूजा भी होती थी। धीरे धीरे साधारण जनता का धर्म पुरखों की पूजा तक ही सीमित रह गया। देवताओं की पूजा करना केवल राजा या बड़े बड़े सामन्तों का काम रह गया। चीन के सबसे पुराने साहित्य में माता पिता का आदर करने का उल्लेख किया गया है। अतः जान पड़ता है कि यह प्रथा यहाँ इतिहास के पूव काल से ही चली आती है। चीनक लोगों का विश्वास है कि पुरखों की आत्माएँ परिवार के जीवित व्यक्तियों के मामल में रुचि लेती रहती हैं और उन पर अच्छा या बुरा प्रभाव भी डालती हैं। अतः घर में एक तखती अलग रख दी जाती है और यह माना जाता है कि मृतक आत्माएँ इन तखतियों में निवास करती हैं। इन तखतियों पर समय समय पर भोजन पानी आदि चढ़ाया जाता है। इस प्रकार

आदत तथा सन्तुष्ट होने पर पुराने अरनी सत्तानों को आशीर्वाद देते हैं। चीन की सम्पत्ता प्राचीन काल से प्रायः अविच्छिन्न धारा के रूप में चली आ रही है। अतः वा प्रथायें सरसों वगैरों पूव प्रचलित थीं वे वहाँ आज भी पाई जाती हैं।

चीनी सामाजिक जीवन की सबसे बड़ी विशेषता एक सम्मिलित तथा सुसंगठित बुटुम्ब है। इस बुटुम्ब का मुखिया घर का बड़ा नूढ़ा होता है। घर सबकी भलाई की देख-रेख रखता है तथा बुटुम्ब की भलाई को अरनी मुख्य जिम्मेदारी समझता है। धनी, पुत्र, पुत्रवधुए तथा लड़कियाँ सब उसी के अधिभार में रहती हैं और वह उन्हें बुटुम्ब की भलाई के लिये दण्ड देने का भी अधिकार रखता है। यह पिता जब तक धावित रहता है तब तक सब लोग उसका आग्रह करते हैं तथा आज्ञा पालन करते हैं। मृत्यु के बाद भी उसका आदर किया जाता है। वास्तव में तो चीन में यह माना ही नहीं जाता कि किसी पूज्य की मृत्यु हुई, क्योंकि मृत्यु के बाद मो उसकी आत्मा घर में निवस करती मानी जाती है।

‘अरन माता पिता का आदर करो’ यही वास्तव में चीनियों का सबसे प्रधान धर्म है। कनफूचियस ने तो यहाँ तक लिखा है कि ‘तीन हजार अग्र्य ऐसे हैं जिनके लिये दण्ड का निवृत्त किया गया है और इनमें सबसे बड़ा अरसंध है—विद्वान् न होना।’ चीनी लोग पुत्रोत्पत्ति की कामना इसीलिये करते हैं कि पुत्र उनका यश को बनाये रखेगा तथा नितरों की पूजा को चालू रखेगा।

इस प्रकार विद्वान्ति ही चीनी धर्म तथा सामाजिक जीवन की सबसे बड़ी विशेषता है। यह चीनी जीवन की रूढ़ समझी जाती है, जिसके बिना चीनी जीवन चल ही नहीं सकता। विद्वान्ति ही वहाँ के धर्म की जड़ है जिससे अथ समस्त सद्गुण उत्पन्न होते हैं।

एक चीनी दार्शनिक का कथन है कि चीनियों का स्वनिर्मित कोई धर्म नहीं है। अतः वे धर्म के मामल में सरसंध हैं। चीनी भाषा में ‘धर्म’ दो शब्दों का मिलकर लिखा जाता है—१ मुक्त (आदर) और २ चिन्मात्रो (विशुद्ध या उरदेश्य)। दोनों शब्दों को मिलकर अर्थ होता है अच्छी गिजाओं के प्रति आदर अर्थात् प्राचीन श्रुतियों तथा बुद्धिमानों के उरदेश्यों का आदर करना। वास्तव में चीनी लोक जीवन में धर्म उरदेश्यों का वास्तविक आदर दिया जाता है।

### धर्मपूजाधर्म—

पश्चात्कालीन काल में चीन में उरदेश्यों तथा श्रुति महात्माओं के पानों को अधिक महत्त्व दिया जान लगा। इससे शरतों पर पूर्ण उरकारों के समस्त लिखित वा सुनने के

और इन समझों को धर्म पुस्तक का स्थान प्राप्त हो चुका था। इन प्राचीन कृतियों का संग्रह कनफ्यूशियस नाम के महात्मा ने किया।

इन महात्मा कनफ्यूशियस का चीन के धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा साहित्यिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। इनका असली नाम 'क्यूंग फुत्से' या जिसका लैटिन रूप 'कनफ्यूशियस' हो गया और अब यही नाम अधिक प्रचलित है। इनका समय ५११ ई० पू० से ४७८ ई० पू० तक का माना जाता है। वतमान शाङ्ग प्रा तमें प्राचीन समय में लू नाम की एक छोटी सी रियासत थी। उसी रियासत के ये निवासी थे। इनने पिता वहाँ एक राजकुमारी थे। कनफ्यूशियस भी पहले एक राज कर्मचारी बने, फिर अध्यापक हुए और फिर एक प्रशासकीय अधिकारी रहे। परचात् ये 'यायाओश' बनाये गये और 'यायाओश' का कार्य उन्होंने बड़ी हढ़ता तथा निष्पक्षता से किया। जिससे उस लू राज्य में ब्यरराधों की संख्या में काफी कमी हो गई थी।

कनफ्यूशियस ने परत जीवन में भी अनेक पुस्तकों का सङ्कलन तथा संपादन करने का समय निकाल लिया। कई पुस्तकों की टीसयें भी उन्होंने लिखीं। उन्होंने एक नीति शास्त्र भी बनाया जो स प्र ही चीन में प्रचलित हो गया। चीन का प्राचीन इतिहास भी उन्होंने लिखा।

धार्मिक मामलों में कनफ्यूशियस का विश्वास था कि सभार में एक केन्द्रीय शक्ति है जो सब सभार का नियन्त्रण करती है किन्तु उन्होंने इस शक्ति का नाम नहीं रखा। जीव की अमरता के बारे में उन्हें कुछ कह था। यह पुरखों को आदर देने और परिवार प्रथा कायम रखने के हढ़ पउपाती थे। गुद्दाचरण पर भी उन्होंने अधिक जोर दिया और इस बात पर भी जोर दिया कि मनुष्य को मनुष्य के प्रति अपने कर्तव्य का पालन अवश्य करना चाहिये।

कनफ्यूशियस ने अपने इहीं विचारों का प्रचार चीन में किया। धीरे-धीरे उनसे उपदेशों का प्रभाव चीन के लोगों पर बढ़ता गया। उनके शिष्यों ही संख्या हजारों तक पहुँच गई। ये शिष्य लोग सदा उनके साथ रहते और उनकी छोटी से छोटी बातों को भी लिखते रहते। ये इन बातों का प्रचार भी करते और चीन की जनता में ये उपदेश बहुत लोकप्रिय हुए।

लग लग ७३ वर्ष की अवस्था में कनफ्यूशियस की मृत्यु हुई और मृत्यु के बाद ही उनकी पूजा देसताओं की भाँति होने लगी। प्रायः प्रत्येक बड़े नगरमें उनका मन्दिर बन गये, निरमें उनकी मूर्ति पधराई गई और पूजा होने लगी। उनसे उपदेशों का प्रचार एक पन के रूप में ही होने लगा। इस धर्म प्रचार में एक दूसरे दार्शनिक मेणियस का बहुत बड़ा हाथ था, क्योंकि वे संयस पर कनफ्यूशियस के उपदेशों का काफी प्रभाव पड़ा था।

कनफूशियस का मत अथवा धर्म वास्तव में कोई आध्यात्मिक धर्म न था बल्कि एक सदानुष्ठान की नियमावली थी। उन्होंने राजमन्त्रि तथा पित्रुभक्ति को ही मनुष्य का सर्वोच्च धर्म बताया है तथा मनुष्य के प्रति मनुष्य के वन व पर विराय जार दिया है।

ताओ मत तथा बौद्ध मत—

चीन में कनफूशियस के मत के साथ साथ टा मत और प्रचलित हुए—ताओ तथा बौद्ध। तथा मत के प्रवर्तक ल आंसे य जो कनफूशियस से पढ़े हुए। वे उसे बुद्धिमान समझते थे तथा मौलिक विचारक थे। उनका कुछ अच्छा उपदेश है—तुम्हारा नश्वर दशांश से दो, शरान बह है जो धरने का ही जीतता है अदि। उनका उपदेशों के समूह का नाम— ताओ ते चिंग' (सदाचार का माग) था। ताओका अर्थ है माग या षय। इसी से उनका मत 'ताओ' मत कहलने लगा। उनका षय का नाम का पूरा अर्थ है—सगार में सही तथा सदाचार पूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिये सही माग अपना सदाचार सद्वृत्त। यह मत जैसे तो कनफूशियस के मास भी अधिक पुराना है क्योंकि इसके प्रवर्तक ल आंसे कनफूशियस से पूर्व उत्पन्न हुए य परन्तु इस मतका विशेष प्रचार तीसरी शताब्दी ३००० में ही हुआ। इस मत में धार्मिक क्रियाओं त आसनों आदि के द्वारा बीजनों को अधिक कष्ट तह नवाने के उपायों का भी समावेश है तथा षय-नय आदि भी काफी वर्णित हैं।

बौद्ध मत का प्रचार चीन में सबसे जारमें अर्थात् तीसरी शताब्दी ३००० में हुआ। चीन में बौद्धमत की महाराज शाया पुंजी जिसमें गौतम बुद्ध की मूर्ति की पूजा होती थी। बादमा के प्रचार का यहाँ प्रभाव पड़ा कि उसका कारण लता मत का प्रभाव कम होने लगा। तब बौद्धमत की प्रगति रोकने के लिये ताओ मत के अनुयायियों ने भी अपने मन्दिर और मठ बनवाये यहाँ पुजारियों की नियुक्ति की तथा अनेक प्रकार के उक्त्य अर स्त्रीहारों का प्रचलन किया। बौद्ध मत और त आ मत में बहुत काल तक तीव्र निरोध रहा। चीन का राजा कभी बौद्ध मत माननेवाला होता था और कभी ताओ मत का। कभी एक मत का मानने का प्रयत्न किया जाता था कभी दूसरे मत को। यद् में राजाओं ने कनफूशियस के मत की स्वीकार करके अपने दानों मनों को नैर काली उद्योग दिया। इस प्रकार बहुत समयतक चीन में इन दानों मनों में प्रत्य प्रतिष्ठित चली रही।

हिन्दु यह शक्ति की अति कष्ट तक न रही। लोगों ने लानों में लीनों मनों के निरोधना था। पीर-पार तीनों मनों में मन्दिरों का मन्दिर और लीनों का मन्दिर बनवाने लगा। कुछ काल में लीनों का दान नित्य मन्दिर उद्योग पहिचाना बन्द हो गया। यही धर्म का 'उद् अर्थ' चीन में आज भी है।

आय कलायें—

बहुत प्राचीन काल से चीनी लोग पत्र विद्या में बड़े कुशल रहे हैं। वे ऐसा पत्र बनाते थे जिसका रथी सदा दक्षिण में हो मुड़ किये रहता था। काम के बतन अच्छे ढालन की कला का विनास उन्होंने कम से कम सातवीं या आठवीं शताब्दी ई० पू० में ही कर लिया था। चाय जो आज ससार में प्रचार पा रही है मूलत एक चीनी पेय है और वहाँ उसका प्रचार बहुत प्राचीन काल से पाया जाता है। यही देश चाय के पौधे का मूल घर माना जाता है। मिट्टी के सुंदर और मजबूत बतन बनाने की कला का भी इसी देश में विकास हुआ। सुंदर बतन बनाने की सौंदर्य बिक्रमी मिट्टी आज भी 'चीनी मिट्टी' कहलाती है। चीनी विप्रकला की भी अपनी कुछ विशेषतायें हैं तथा यह कला प्राचीन काल से वहाँ प्रसिद्ध है। रोम के कपड़े बुनने का उल्लेख मेथियस (चतुर्थ शताब्दी ई० पू०) ने अपने प्रथम में किया है तथा छुट्टा में आराम देने के लिये उन करदों को आवश्यक बताया है। कुस्ती लड़ने का अभ्यास भी चीन वालों में इसी सन पूर्व कई शताब्दियों से होना पाया जाता है। वे एक प्रकार की फुटबाल भी बहुत समय से खेलते आये हैं। एक प्रकार के पोलो का उल्लेख भी चीन के पुराने ग्रंथों में मिलता है। यह खेल वहाँ खेदर घोड़ों पर बैठकर खेला जाता था।

रोगों की चिकित्सा के सम्बन्ध में ऐसा माना जाता है कि चीनी लोग इस कार्य की प्रागैतिहासिक काल से जानते हैं। यद्यपि यह चिकित्सा बहुत प्राथमिक ढंग की होती थी। सामंती युग में (लगभग एक हजार वर्ष ई० पू० में) वहाँ के चिकित्सक लोग जड़ी बूटियों से, घातुओं से तथा अनाजों और पशुओं से मांजुछ पदार्थ निकालकर उनसे रोगों की चिकित्सा किया करते थे। चीन में कथा प्रसिद्ध है कि पाचवीं शताब्दी ई० पू० में एक ऐसा इकीम था जोकि मनुष्य के शरीर के भीतर तक देर सकता था। यह हकीम नाड़ी परीक्षा में भी बड़ा कुशल था और उसी परीक्षा से रोग का निदान कर रोग दूर कर देता था। मनुष्य को बेहोश कर आपरेशन किये जाने का भी उल्लेख चीन के प्राचीन ग्रंथों में मिलता है। इस प्रकार चिकित्सा शास्त्रके कुछ आधुनिकतम उपायों (एनमेटे, एन्डिस्टिकस आदि) का उल्लेख चीन के प्राचीन साहित्य में मिलता है।

चीनियों ने सुष्पि-निर्माण, जीवन मरण, जीवात्मा आदि विषयों पर भी गम्भीर चिन्तन करनेवाला दार्शनिक उत्पन्न किये। इनमें कनफ्यूशियस सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इनके लगभग १०० वर्ष बाद दूसरा प्रसिद्ध दार्शनिक मेथियस हुआ। इनके अतिरिक्त फाओ, यांग शियुग, च्वागाम्बूतया हुईं सुचीन के अन्य प्रमुख दार्शनिक हैं जो इसी युग से पूरे हुए।

ईसा से लगभग दो शताब्दी पूर्व राज्य प्रथा मुट्ठे रूपमें स्थापित हो जाने के कारण चीन में एक ऐसी शासन-व्यवस्था स्थापित हुई जो वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भिक भाग तक

प्रायः उसी रूप में चली रही। यह अनुत्तरदायित्वपूर्ण अथवा निरदुस शासन प्रणाली थी—यद्यपि व्यवहार में यह प्रणाली अनसत्ता मकरही क्योंकि वेदाती मेरिजियस (३७२-२८४ ई० पू०) ने राष्ट्रीय महान के क्रम में सत्रमे प्रथम स्थान जनता अथवा प्रजा को ही दिया है, दूसरा देवताओं को और तीसरा राजा को। इस क्रम-निर्धारण का च नी मानस पर बड़ा प्रभाव पड़ा और वहा को जनता प्रजा का राजासे अधिक महत्वपूर्ण समझ कर राजा के अत्यायों का सदा विरोध करती रही।

रणापत्य-काल का अद्भुत उदाहरण चीनी की प्रसिद्ध दीवाल के रूप में विद्यमान ही है। नहर बनाना मी व। के लाग प्राच्यो का मे जानते थे। युद्ध के समय में गाय की पंजी से जलने के लिये पक्षि के पास एक नदी ४८५ ३० १०० में प्रारंभ की गई थी। यह नहर दक्षिणमे हाग चाऊ से उत्तरमे टिटकिन तक १२०० म ल की लांबाई में आज तक विद्यमान है।

चीनी समाज प्राचीन काल में चार भागों में बण हुआ था। सत्रमे ऊपर बुद्धिजीवी थे जिन्हें 'ब्राह्मण' कह सजते हैं। उनका नद धर्मियों अथवा यादों का नदी नरि किरानों का दर्जा था। निर कारीगर और व्यापार बगना महान था। चौथा या अंतिम स्थान शिप हियों अथवा धर्मियों का था। इस प्रकार शिपही का पया वहा सत्रमे निरुद्ध समझ जाता था—( यद्यपि वर्तमान काल में यह नत नहीं रही है )।

### चीनी सभ्यता दीर्घजीवी क्यों ?—

यह प्रश्न प्रायः पूछा जाता है कि मित्र वायु आदि की सम्पत्तयें—जो पानी ऊ ने दबे की थी नदहो नद—क्यों चीन की सभ्यता आज भी लगभग उसी रूपमें जीवित है जिसमें कि यह ४ ५ हजार वर्ष पूर्व थी और चीन राष्ट्र पश्चिमी सभ्यता में उत्पन्न यादे से प्रभावों को छोड़कर आज भी प्रायः वैसा ही जीवन जते कर रहा है जैसा कि ४-२ हजार वर्ष पूर्व करता था, हमका क्या कारण है ? इस प्रश्न के निम्न निम्न उत्तर मिन्-मिन विद्वानों के द्वारा दिये गये हैं। एक विशेष कारण यह बताया जाता है कि यह देश विद्याल होते हुए भी दृष्टा तप सुगठित है। अतः यहा भाग तथा विषी मी प्रा- एक ही रही है और यह एक भाग तथा विषी इस विद्याल देश को सुगठित करने में बड़ी सहायक हुआ है।

दूसरा कारण यह भी है कि चीन के लोगों ने विदेशियों के संपर्क में गण ही दूर रहने का प्रयत्न किया। प्रकृत ने भी हमसे उसकी नद राजा की। प्राकृत्य उते पश्चिमी एशिया के देशों से आग करने हैं तथा भाग्य भाग्य विषी के देशों से उते आग करने के लिए विद्यमान जैसा दुःख टंकर गही है। विद्याल और पत भाग्य उते विरुद्ध चीन से आग करता है। इन प्रकृत तद रर को के कारण चीन एक प्रकृत म विरुद्ध आग १९१२ अने टान-विद्व बौद्ध को, आचार विचारों की टान-विद्व

रहा। यूरोप के लोगों को तो चीनी लोग 'सफेद भूत' कहकर पुकारते थे और उन से उ होने तक दूर ही रहने का प्रयत्न किया जब तक उनमें ऐसी शक्ति रही।

तीसरा कारण चीनी लोगों की सहनशीलता भी है। चीनी लोग निर्यात से निर्यात सरकार को, बाढ़ आदि नयम से नयम निषेधोंको भीषण अक्रूर चीत तथा गरीबी आदि को नड़े धैर्य के साथ सहन करने की क्षमता रखते हैं। इन व तोंने अतिरिक्त कुछ लोग चीनी सभ्यता व दीर्घ जीवी होने का श्रेय महात्मा कनफ्यूशियस के उपदेशों को देते हैं जि होंने चीनी लोगों के हृदयों में एकता की भावना जागृत रखी तथा उन्हें आपसी पूट और बलह से उचाये रता। कुछ श्रेय उस 'वक्तिगत स्वतंत्रता' को भी दिया जाता है जो चीनियों को प्राचीन काल से प्राप्त रही है। इही विदोपताओं के कारण चीन व लोग एक विशाल तथा सम्य राष्ट्र व रूप में आज भी जीवित और जागृत हैं तथा दीर्घ का तक जीवित रहने की क्षमता भी रखते हैं।

### भारत से सम्बन्ध —

चीन व सम्य ध में यह ठीक ही कहा गया है कि सकार के किसी अन्य राष्ट्रों अपनी सभ्यता का विहास इतने स्वतंत्र रूप में तथा उही सभ्यताओं से इतना अप्रभावित रह कर रही किया है जितना कि चीन ने। इसका एक विदोप कारण—जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है—उसकी प्राकृतिक स्थिति है। चीन और भारत के बीच में हिमालय की दुर्भेद्य दीवार खड़ी है। अतः प्राचीन भारतके लोगों के लिये जहाँ पश्चिमी मार्ग बहुत कुछ सुलभ हुआ था, वहाँ उत्तरी मार्ग पूर्णतया अवरोध था। इसी प्रकार अन्य देशों से भी चीन अलग था है। अतः चीन के लोग अन्य देशों की सभ्यताओं से बहुत कुछ अप्रभावित रह तथा उन्हें अपनी सभ्यता का स्वतंत्र रूप से विकास करने का अवसर मिला। उनने आचार विचरों का, उनके आदर्शों का विहास बहुत कुछ स्वतंत्र तथा स्वाभाविक गति से हुआ। इसी प्रकार अपनी इस सभ्यता का संरक्षण भी उ होने स्वतंत्र रूप से ही किया।

भारत का सुन्दर, बाहुल्य, शाम, मिख आदि देशों के साथ जिस प्रकार व्यापारिक तथा अन्य प्रकार के सम्पर्क होने के प्रमाण मिलते हैं उस प्रकार का सम्पर्क चीन के साथ हात के कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलने। फिर भी सम्भव है प्राचीन काल में भारत तथा चीन में कुछ व्यापारिक सम्पर्क रहा हो तथा चीन का रेशमी वस्त्र भारत में आता रहा हो।

भारत का चीन के साथ कुछ अनिष्ट सम्पर्क गौतम बुद्ध के काल के पश्चात् हुआ जबकि भारत से कुछ साहसी भिक्षुओं वनेक प्रकार के सफरों को लेने हुए महायान बुद्धका जन्म व देश मुनाने चीन तक पहुँचे। उस समय तक चीन अपनी स्वतंत्र सभ्यता

का विकास एक बड़ी सीमा तक कर चुका था। फिर भी वहाँ के लोगों ने महात्मा बुद्ध के उपदेशों को शान्ति के साथ सुना, उ हैं समझने का प्रयत्न किया और उ ह स्वीकार भी किया।

चीन में बौद्धधर्म का प्रवेश चिन तथा हान वंशों के शासन काल में अर्थात् तृतीय शताब्दी और उसके गढ़ने कालमें हुआ। ऐसा पता चलता है कि तीसरी अथवा दूसरी शताब्दी ई० पू० में भारत से कुछ भिक्षुगण प्रथम बार बुद्ध धर्म का सन्देश लेकर चीन में गये। वहाँ इन लोगों का अच्छा स्वागत हुआ और बुद्ध का सन्देश सुना गया। कुछ लोगों का यह मत है कि भारत से चीन तक यात्रा विद्वानों में सबसे पहला कश्यप मत्तग था जिसका समय इसी सन की प्रथम शताब्दी है। उस समय चीन में हान वंश के सम्राट् मिन्गी का राज्य था। उसी क समय में भा त से कुछ अन्य बौद्ध भिक्षुगण भी चीन गये और चीन सम्राट ने उसका अच्छा स्वागत किया। फिर तो समय समय पर अनेक बौद्ध भिक्षुगण चीन पहुँचने रहे। इन प्रायों का चौथी शताब्दी में अनुसूच भी किया गया और इस प्रकार बौद्ध धर्म का चीन के लोगों में और अधिक प्रचार हुआ। इसी प्रकार भारत से अनेक बौद्ध भिक्षु तथा सत् महात्मा चीन पहुँचने रहे और बुद्ध का पावन सन्देश सुनाते रहे। कुछ ही कालमें बुद्ध के उपदेशों का बड़ा हटना अधिक प्रभु हुआ कि प्रायः समस्त चीन में उनका मत फैल गया तथा लोग बहुत बौद्ध मत को मान्य करने लगे। कुछ समय तक चीन में प्रचलित ताओ मत न बौद्ध मत का गण्य भी रहा परन्तु अन्तमें दोनों धर्म मिश्रकर चलने लग। इस में स बौद्धधर्म का माग और छाव हो गया। गरीब और अमीर, राजा और रक सभी ने बौद्धमत की महर्ष स्वीकृती तथा कुछ ही काल में बौद्धधर्म ही चीन का राजकीय धर्म बन गया। अब बौद्धधर्म का प्रचार और भी अधिक हुआ। पर वेचन चीन तक ही सीमित न रहकर उद्यमे लगे हुए प्रांतों—मगोलिया, मूरिया, कोरिया और तिब्बत भादि में भी फैल गया।

बौद्ध धर्म ने चीन में पहुँचकर वहाँ के प्राचीन मतों का उन्मूलन नहीं किया। उन्मूलन वंश के लोगों पर कोई अत्याचार भी नहीं कराया। पर जो स्वेच्छा का धन था जिसे चीन वालों ने अपनी राजी मुगी से स्वीकार किया तथा अरतो आर्थिक उत्थति का उसे छाधन माना। बौद्धधर्म ने वंश के दुर्गते धर्मों के लय समझा कर दिया। इस प्रकार चीनमें धर्मों का एक ही धर्म स्थापित हुआ। धर्म धर्म भाग का बौद्धधर्म चीन के स्थानीय धर्मों के साथ इतना पट् मिश्र गया कि उसे अलग करना अथवा उगला प्रदक अतिशय कठिन कार्य हो गया। आज भी बौद्धधर्म चीन के प्रत्येक प्रांत में इसी प्रकार मिश्र हुआ है तथा सदस्यों वहाँ में उनका जीवन को प्रभावित कर रहा है।



## अध्याय ७

# यूनान की प्राचीन सभ्यता

सुमेर, बाबुल, मिस्र, चीन आदि की सभ्यताएँ जेसा कि हम देख चुके हैं, काफी प्राचीन हैं। उनकी तुलना में यूनान की सभ्यता बहुत पीछे की अर्थात् नवीन है। किंतु यूरोप में यूनानी सभ्यता को बहुत प्राचीन माना जाता रहा, क्योंकि यूरोपीय सभ्यतायें यूनानी सभ्यता से भी बहुत पीछे की हैं तथा यूरोप में सबसे पहिले सभ्यता का प्रवेश यूनान में ही पहुँचा था।

किंतु यूनानी सभ्यता तथा इतिहास की अपनी एक विशेषता है। सुमेर, बाबुल, मिस्र, चीन आदि देशों में प्राचीन समय से राजपथ प्रचलित थी। परंतु यूनान ऐसा देश था जहाँ कोई राजा न था। यूनान देश बहुत बड़ा भी नहीं है, व स्तव में तो यूनान का इतिहास एक देश का नहीं, बल्कि एक जाति का इतिहास।

यूनान नाम का देश यूरोप के दक्षिण पूर्व में स्थित पालस नामक प्रायद्वीप का एक भाग है जो भूमध्यसागर के तट पर बसा हुआ है। इसके दक्षिण में अनेक छोटे छोटे द्वीप था समुद्र से ४० मील से अधिक दूर नहीं है। यूनान की उत्तरी सीमा पर पहाड़ों का एक शिखर चला चला गया है जिनकी चौटा ८००० फीट तक ऊँची है। यहा घर्मावली नाम की एक घाटी को छोड़कर आने-जाने का कोई मार्ग नहीं है। यह घाटी इतनी लम्बी है कि वहाँ वहाँ गहरे बर ५० गज चौड़ी है। दोप भाग में भी कई पहाड़ हैं। पतों की अधिकता के कारण ही यहा अनेक छोटे छोटे नगर राज्य उत्पन्न हुए। पहाड़ों के बीच बीच में जहाँ थोड़ा बहुत मैदान मिला, वहाँ इन लोगों ने बस्तियाँ बना ली जो बीच में पहाड़ों के आ जाने के कारण एक दूसरी से असम्बद्ध तथा स्वतंत्र थीं। एक बड़ा नगर और उसके आस पास की कुछ बस्तियाँ मिलकर एक छोटी सी रियासत बन जाती थीं जो अपने आप में पूर्ण स्वतंत्र होती थीं।

यूनान के उत्तरी भाग के प्रांत थिस्सो, एबिस और मोरिया कहलाते हैं। मोरिया को प्राचीन समय में पनेपोलेगस कहने थे। दक्षिण में थोर्गिया प्रांत था जिसका प्रधान नगर घोस था। व थिया प्रांत के दक्षिण में एटिका प्रांत है जो थिसुत्राकार तथा दो ओर समुद्र से घिरा है। इसके नीचे एजिप्टन सागर है जिसमें बीच-बीचमें कई द्वीप फैले



भारत का नक्शा  
1000  
ममी



हुए है। इन प्राणियोंमें कई छोटी-छोटी रियासतें थीं जहाँ कई जातियाँ निवास करती थीं। प्रायः एक नगर राज्यमें एक जाति निवास करती थी तथा राज्य का प्रबंध यह जाति स्वयं करती थी।

यही वह यूनान था जोस है आ यूरुपका प्राचीनतम सभ्य देश गिना जाता है। इसीने समस्त यूरुप को सभ्यता का पाठ पढ़ाया, क्योंकि यूनान में सभ्यता का प्रकाश उस समय फैल चुका था जब शेष यूरुप वनरता की अवधारणपूर्ण अवस्था में था—असभ्य गिना जाता था। यूनान का अथवा बायकन प्रायद्वीप तथा ऐजियन सागर के द्वीपों का एक पुगना नाम हेल्लास भी है तथा इसी कारण यहाँ के लोग हेल्लेनीस कहते थे, क्योंकि यही भाग टाका मुख्य निवास स्थान था। किन्तु इटली, सिसिली, प्रोस आदि में उनसे अनेक उपनिवेश ऐसे हुए थे। जहाँ में वे समी चलित्रा 'हेल्लास' के अन्तर्गत ही समझी जाती थी। यूनान के प्रायः सभ्यता के साथ रहना पसन्द करते थे। अब उनकी ये धलियाँ भी भावभूमि में प्रायः स्वतंत्र ही थीं।

कुछ लोगों का विचार है कि यूनान के लोग यह मानते हैं कि वे सत्र हेल्लेन देवताकी सन्तान हैं। इसी कारण वे हेल्लेनीस कहलाते थे और उनका देश हेलास कहलाता था। पीछे जब यह देश रोम साम्राज्य के अन्तर्गत आ गया तो इटली के लोगों ने उन्हें 'ग्रीक' कहना आरम्भ किया और उनका देश ग्रीस कहलाया। पारश्वत्य जगत् में यूनान का यही नाम अभी तक प्रचलित है।

यूनानी द्वीपों में हेल्लेनीस लोगों से पूर्व कौन लोग रहते थे, इसका ठीक पता नहीं चलता। किन्तु यहाँ जो पुगने गायाम्ब, गदो, मिट्टी के रंगीन बरतन, नकाशीदार पादर आदि प्राप्त हुए हैं उनमें यहाँ के प्राचीन निवासियों की सुशुल्काका पता चलता है। यहाँ तक पता लगा है कि वे हेल्लेनीस लोगों से बहुत पूर्व यूनान देश पर एक अव्यंजानि ने अपना अधिकार कर लिया था और यह जाति पत्रसगोइ कहलाती थी। जहाँ में कवि होमर के समय में (लगभग सात सौ अथवा आठ सौ वर्ष इसी पूर्व में) पत्रसगोइ जाति के लोगों पर एजियन लोगों ने प्रभुत्व प्राप्त कर ली और फिर उसी प्रकार हेल्लेनीस लोगों ने एजियन लोगों पर प्रभुत्व प्राप्त की। ये हेल्लेनीस प्रायः कौन थे और कहाँ से तथा क्या आप थे, यह विनाद ज्ञान है। कुछ लोगों का विचार है कि एजियन और हेल्लेनीस एक ही थे। किन्तु वे समी इतिहासकार मानते हैं कि यूरुप का प्राचीनतम एवं वंश यूनान ही है तथा यहाँ से यूरुप में सभ्यता का प्रसार हुआ।

नया सिद्धान्त यह है कि यूनान में कहर से तीन ज्यों में निरन्तर जाति के लोग आए। पहला अथोनीय लोग आते जो लगभग १७ वीं सताब्दी ई० पू० में यूनान में पविष्ट हुए फिर एजियन या हेल्लेनीस आते और फिर डोनिन। अर्धश गिनाया हुआ

आयोगीय लोगों की ही थी। स्मार्टों में डोरियन जाति की प्रधानता थी और इन दोनों जातियों में तीव्र द्वेष भाव रहता था। एचियन लोग १४ वीं शताब्दी के मध्य में इतिहास के प्रकाश में आये। माइसीनी सभ्यता इही एचियन लोगों की सभ्यता समझी जाती है।

यूनान में जो शस्त्र, गहने, चित्रित बरतन, पत्थर आदि प्राप्त हुए हैं वे अधिकतर माइसीनी स्थान पर मिले हैं। अतः यह सभ्यता माइसीनी सभ्यता कहलाती है। इसका काल १७००-३००० के लगभग समझा जाता है। किन्तु क्रीट टापूमें जो लोग हुए हैं उससे पता चलता है कि माइसीनी लोगों से कुछ शताब्दी पूर्व यूनान में ऐसे लोग रहते थे, जिन्होंने भवन निर्माण में, कपड़े की वस्तुओं पर कलापूर्ण आकृतियाँ बनाने में, पत्थरों के उपयोग में तथा गिरकारी में भी काफी दक्षता प्राप्त कर ली थी। इन लोगों के पास एक लिपि अथवा चित्र लिपि भी थी। इस चित्र-लिपि के प्रयोग से यह भी अनुमान किया जाता है कि इन लोगों का सम्बन्ध मिस्र देश से था। क्रीट टापू के कानोसस स्थान पर राजमहलों में जो अक्षरों मिले हैं उनसे यह पता चलता है कि क्रीट में किसी समय एक समृद्ध तथा शक्तिशाली राज्य स्थापित था और वहाँ के राजा मिनोस ने एक बड़ा समुद्री बड़ा भी बनाया था। अनुमान है कि वहानी वेदा बगानेवाला यह प्रथम ही राजा था। यूनान की पुरानी टक्कियाँ में भी इसका क्रीट से सम्बन्ध बताया गया है। यह क्रीट की इस सभ्यता का जो मिनोयन सभ्यता कहलाती है—काठ बटी समझा जाता है जबकि यूनान पर फ्लोरमाइ नामक जाति का अधिपार था और यह काल २०००-३००० के लगभग समझा जाता है। कुछ लोग उसे और भी प्राचीन मानते हैं। बाद में वहाँ एचियन लोगों का अधिपार हुआ।

### इतिहास—

यूनान का इतिहास वास्तव में चारों की चार-पाच छोटी छोटी रियासतों—स्मार्टों, अयेस, कोरिथ, थीब्स आदि का इतिहास है। इन रियासतों में जो अधिक प्रधान होता था उसे दूसरी रियासत अपना प्रधान मान लेती थी तथा आवश्यकता पड़ने पर उसका साथ देती थी। किन्तु इन रियासतों में आपसी वैमनस्तर तथा द्वेष भाव भी प्रायः बहुत रहा करता था। किसी एक रियासत को अधिक शक्तिशाली होते देखते ही, दूसरी रियासतों में यह द्वेष भाव बढ़क उठता था और वे उसे नीचे गिराने का प्रयत्न करती थीं। प्रारम्भ में यूनान में स्मार्टों नाम की रियासत की प्रधानता रही क्योंकि उसका सैनिक सगठन बड़ा सुन्दर था, चारों का प्रत्येक नागरिक एक सिपाही था। बाहर के किसी देश का यूनान पर आक्रमण होने पर स्मार्टों को ही बुनियाद बना दिया जाता था तथा युद्ध का

भार मुद्रण उसी पर पड़ता था। अब रियासतें उसका साथ देती थीं—कभी इच्छा से कभी अनिच्छा से। किन्तु ग़दर का खतरा समाप्त हो जाने पर इनमें द्वेष-भाव बढ़ जाता था और एक रियासत दूसरी को गिराने का प्रयत्न करती थी। इसी प्रकार स्वार्थी को भी गिराया गया। तब अफेन्स की प्रधानता प्राप्त हुई जो नहुआ समय तक रही। फिर कुछ दिनों तक यीशु की प्रधानता रही। यही क्रम चलता रहा। किन्तु यूनानी ख़ाबल पर मुद्रण मात्र अफेन्स की रही तथा उसी की प्रधानता रही।

यूनान का ऐतिहासिक काल इसा से लगभग एक हजार वर्ष से आरम्भ किया जा सकता है यद्यपि उस समय की स्थिति अधिक स्पष्ट नहीं है। पीछे लगभग ७०० ई०पू० से लगभग चारों लेखन काल का आरम्भ हुआ और उस समय की घटनाओं का विवरण प्रायः लेखनरूप में मिलने लगा है।

इस समय यूनान में डारियन और आवानियन का जातिवादी प्रधान था। उत्तर में डारियन लोग थे जो अधिक उत्तमान तथा लड़ाका थे। स्वार्थी इन्हीं लोगों की रियासत थी। आवानियन (पारस) लोगों की मुख्य जातियाँ इतिहास सागर तथा एशिया माइनर में थीं। ये लोग अति सिद्धि, सुखल व्यापारी तथा कृषि-निपुण थे। इनकी मुख्य रियासत अफेन्स थी। अफेन्स का मुख्य नगर एफोसालिन पहाड़ी पर बना था हुआ और यहाँ अफेनी देवी का प्रसिद्ध मन्दिर था। अफेन्स रियासत में आरम्भ में सत्ता सन्तान पर ही हाथ में थी, किन्तु वे लोकप्रिय नहीं थे। 'साल्ट' नामक एक व्यक्ति जो 'सुद्धिमान' कहलाता था उसके प्रयास के विरोध किया था और कहा कि राजकायमें जनता का भी हाथ होना चाहिये। यही सोच अफेन्स की लोकप्रिय राज-व्यवस्था का संस्थापक माना जाता है। दोष रियासतों में अफेन्स के अनुक्रम से ही जनसत्ता की स्थापना हुई।

स्वार्थी के दृष्टि में यूनान की तीसरी बड़ी रियासत कोरिन्थ थी। इसका अधिकांश भाग सुदूर के प्रांत होने के कारण यहाँ का व्यापार बहुत अच्छी स्थिति में था। अतः यह रियासत धन संपन्न और शक्तिशाली थी। किन्तु अफेन्स से इसकी प्रतिस्पर्धा तथा प्रभुत्व घटता रहती थी जो यूनान की एकता में बाधक थी। कोरिन्थ के दृष्टि पूर्व में आगमनायक को एक चौथी रियासत थी। इस आगमनायक की भी स्वार्थी से घृणा रहती थी। पाठकों मुख्य रियासत थी। यह भी अफेन्स तथा अन्य रियासतों से द्वेषभाव रखती थी। इस प्रकार अफेन्स की सभी रियासतों में परस्परिक द्वेष का भाव रहता था।

यूनान में प्रसिद्धता तथा प्रभुत्व रखने हुए भी यूनानी रियासतें अति, काल आदि में अपनी उन्नति कर रही थीं। स्वार्थी स्वार्थी तथा उन्नतियों से और उन्नतों अपनी स्वार्थी की शक्ति आगमनायक के लोगों पर बना भी थी। यह भी अनुमान दिया जाता

था कि यूनान का विस्तार एशिया में भी होगा। यूनानियों ने एशिया के पश्चिमी तट पर अपनी कुछ बस्तियाँ भी बसाली थीं जिनमें आयोनिया मुख्य थी। किन्तु यूनानियों का एशिया में विस्तार लीडिया राज्य की बढ़ती हुई शक्ति ने रोक दिया। छठीं शताब्दी ई० पू० के मध्य में लीडिया के राजा ने यूनानी बस्ती आयोनिया तथा कुछ दूसरे नगरों पर कब्जा कर लिया जिससे एशिया में यूनानी प्रगति एक दम रुक गई।

### फारस से युद्ध--धर्मापोली--

ऐसे ही समय में अर्थात् छठवीं शताब्दी ई० पू० में यूनान को एक दूसरे बड़े सक्क का सामना करना पड़ा। इन दिनों एशियाका फारस राज्य अपनी शक्ति बढ़ा रहा था। वहाँ के राजा साइरस ( कौरुश ) ने बेबीलोनिया, सीरिया, सीरिया आदि देश जीतकर अपने राज्य का विस्तार काफी बढ़ा लिया था। छठीं शताब्दी ई० पू० के मध्य में उसने लीडिया के राजा क्रोसिसस को पकड़ लिया और उसके समस्त राज्य को अपने राज्य में मिला लिया। फिर उसने मिस्र देश पर भी अपना अधिकार कर लिया।

५२१ ई० पू० साइरस के मरने पर उसका पुत्र डेरियस ( दारु ) राजा हुआ। उसने यूरोप में भी अपने राज्य में मिलाने का विचार करके एक बड़ी सेना यूरोप की ओर भेजी। यूनान के थ्रेस और मेसेडोनिया प्रांत शीघ्र ही उसके अधिकार में आ गये। परन्तु अथेंस वालों ने उसकी बल सेना को नष्ट कर दिया। कुछ वर्ष बाद ४९० ई० पू० उसने एक दूसरी सेना यनाता में भेजी। इसने भी कुछ नगर जीत लेने में सफलता प्राप्त की, परन्तु फिर यूनानियों ने उसका मिलकर मुकाबला किया और उसे हराकर भगा दिया। दारु फिर एक सेना तैयार कर रहा था कि इसी बीच (४९० ई० पू०) उसकी मृत्यु हो गई।

दारु का पुत्र क्लरसीज ( क्षपाश ) राजा हुआ। उसने फिर अथेंस पर आक्रमण कर दिया, जोर का युद्ध हुआ। इस युद्ध का वर्णन प्रसिद्ध यूनानी इतिहासकार हेरोडोटस ने लिखा है। इस बार थ्रेस रियासत अथेंस को हानि पहुँचाने की इच्छा से फारस के साथ मिल गई। किन्तु स्पार्टा ने अथेंस का साथ दिया। इन दोनों ने फारस की सेना को रोकने के लिये अपनी कुछ सेना आगे भेजी जो धर्मापोली ( उठन द्वार ) को लड़ाई के लिये उपयुक्त स्थान समझकर वहीं रुक गई और फारसी सेना की प्रतीक्षा करने लगी। इस घाटी के दोनों ओर ऊँचे पहाड़ इतने पास आ गये हैं कि उनके बीच में केवल यादों ही मार्ग रह गया है। इसी तंग घाटी में छोड़ी सी यूनानी सेना ने अपने से कई गुनी फारसी सेना को बहुत समय तक बढ़ी वीरता से रोक रखा। क्लरसीज को कई बार निराशा होने लगी कि वह आगे न बढ़ सकेगा। परन्तु इसी बीच इन यूनानी रियासतों से द्रोप रतने वाला फिथी मेदिय ने आगे बढ़ने और यूनानी सेना को घेर लेने

का एक नया माग बना दिया, फिर ता फारसी सेना अनापास ही घाटी के उस पार पहुँच गई और उसने यूनानी सेना को पीछे से घेर लिया। यूनानी सैनिक दानों ओर से घिर जाने पर इतनी धीरता से लड़े कि जब तक उनका एक एक सैनिक न मारा गया, तब तक फारसी सेना आगे न बढ़ सकी। यह घमापाली युवानियों की हल्दीघाटी है जिस पर वे आज तक गर्व करते हैं। मरने वालों में स्पार्टा का राजा भी शामिल था।

अब फारसी सेना यूनान में घुस आई। अब स वालों को भी अपना प्यारा नगर छोड़ना पड़ा। परंतु कुछ ही समय बाद यूनानी जल-सेना को एक अच्छी सफलता मिली और फारसी सेना अंत में हार गई। यूनान के लिये यह एक बड़ी विजय थी। इसी कारण यूनान की स्वतंत्रता नष्ट होने से बच गई।

इस हार के बाद फारस का राजा जरबरीज सेना का छोड़कर फारस चला आया। आगे भी कुछ मुठों में यूनान को सफलता मिली तथा यूनान के आस पास के जिन स्थानों—थ्रेस, साइप्रस टापू आदि पर फारस वालों ने अधिकार कर लिया था उन्हें यूनान वालों ने फिर ले लिया।

### अथेन्स की प्रधानता—

फारस वालों को हराया का एक परिणाम यह हुआ कि शत्रु की ओर से निश्चित हो जाने के कारण यूनानियों का आसानी श्रेय भाव फिर उभर पड़ा। स्पार्टा और अथेन्स के नेतृत्व में यूनानी रियासतों का एक नया संध बना जो स्पार्टा के विरुद्ध था। यहीं से अथेन्स का उदय आरम्भ हुआ। स्पार्टा पर इसी समय एक देवी विपत्ति आई। ४६६ ई० पू० में वहाँ एक भारी भूकम्प आया जिससे नगर का बहुत सा भाग नष्ट हो गया। अब अथेन्स को ही प्रधानता मिल गई। स्पार्टा ने भी उससे संधि करली। उनकी सन्धि लिन सेनाओं ने एक बार फारस को फिर हराया। अब फारस ने भी यूनान से संधि करली। यूनानियों ने साइप्रस टापू तथा मिस्र देश पर फारस के अधिकार को स्वीकार कर लिया।

### पेलेपोनेस का युद्ध—

फारस से संधि हो जाने के कारण यूनानी रियासतों का आसानी घैनघर फिर उभर आया। अथेन्स ने पूरे में कोरिथ रियासत को हराकर तथा उसका व्यापारिक मार्गों को बन्द करन भरना ब्यापार बन्दवाया था। अब कोरिथ उससे सन्धुता रखता था। कोरिथ के एक उपनिवेश के घरा पर दोनों में फिर झगड़ा बढ़ा और युद्ध आरम्भ हो गया। स्पार्टा ने कोरिथ का पक्ष लिया। इस प्रकार ४३२ ई० पू० में जो युद्ध आरम्भ हुआ यह पने पोनेस का युद्ध कहलाता है। पनेपोनेस नामक उत्तरी भाग का नाम था। यह युगन का एक लम्बा तथा प्रसिद्ध यह-युद्ध है जो एक एक कर २७ वर्ष तक चला रहा। इस



युद्ध का वर्णन थ्यूसीडाइडीस नामक इतिहास लेखक ने लिखा है जो निष्पक्ष होने के कारण महत्वपूर्ण समझा जाता है।

इस समय अथे स में पेरिकलीस नामक एक योग्य पुरुष प्रधान था। उसने अथे स की बढ़ी-उन्नति की थी तथा उसे विद्या और कलाओं का केन्द्र बना दिया था। उसने अनेक सुन्दर तथा बड़ी-बड़ी इमारतें बनवाईं। ओलम्पिया के मन्दिरमें हाथी दात और साने से बनी हुई जियस देवता की सुन्दर मूर्ति स्थापित की। इसी पेरिकलीस के नेतृत्व में पेंपोनेसस युद्ध के प्रारम्भिक दिनों में अथे स के लोग जड़ी सावधानी से लड़ते रहे थे और बीच-बीच में स्पार्टा वालों को हराते भी रहे थे। उसकी मृत्यु होते ही अथे स की सेनायें हारने लगीं और अथे स का साम्राज्य भग्न हो गया। ४२१ ई० पू० में दोनों दलों ने संधि करली किन्तु शीघ्र ही फिर उनमें युद्ध आरम्भ हो गया। इस बार के युद्ध में अथे स की अधिकांश सेना का संहार हो गया। युद्ध फिर भी चलता रहा। अन्तमें ४०५ ई० पू० में अथे स की सेना पूर्णतया पराजित हो गई। स्पार्टा की सेना ने अथे स पर कब्जा कर लिया। अथे स नष्ट प्राय हो गया और उसके साथ यह लम्बा २७ वर्ष का युद्ध भी समाप्त हो गया।

### मेसेडोन का उदय—

पेंपोनेसस युद्ध के बाद का इतिहास यूनान की दृष्टि से विरोध महत्व का नहीं है। यूनानी रियासतें फिर आपस में लड़ती मिटती रही। अथे स का एक बार फिर उदय हुआ तथा स्पार्टा का महत्त्व घटा। किन्तु अथे स बार-बार के युद्धों से तिरछ हो जाने के कारण अधिक उन्नति न कर सका। अब कोरिथ रियासत को उन्नति करने का अवसर मिला और वह यूनान की मुख्य रियासत मानी जाने लगी, किन्तु यह प्रधानता भी अधिक दिन तक न चल सकी।

यूनानी रियासतों के आपसी विद्वेष के कारण उनके उत्तर में स्थित मेसेडोन नाम की एक रियासत को उन्नति करने का अवसर मिला। मेसेडोन के लोगों में भी यूनानी रक्त था और भाषा भी यूनान से मिलती जुटती थी। अतः वे लोग अपने को यूनानी ही कहते थे। किन्तु यूनानी लोग उन्हें अरुण्य तथा बर्बर कहते थे। सभ्यता की दृष्टि से वे कुछ पिछड़े हुए थे भी। वे लोग पहाड़ों पर रहते और खेतों करते थे। साहित्य, कला, विज्ञान आदि में उनकी विशेष रुचि न थी जबकि मुख्य यूनान इनमें काफी उन्नति कर चुका था।

मेसेडोन में राजप्रथा कायम थी। ३५६ ई० पू० में वहाँ की गद्दी पर फिलिप नाम का राजा बैठा। वह बड़ा बुद्धिमान तथा कार्य कुशल था। एक ही वर्ष में उसने अपने राज्य में एकता, सुव्यवस्था तथा शान्ति स्थापित कर ली। फिर एक अच्छी सेना तैयार की और आस-पास के राज्यों को हराकर यूनान में पैर पठाना आरम्भ किया।

धीरे-धीरे उसने समस्त यूनान पर अपना अधिकार कर लिया। अयेन्स भी एक अच्छी लड़ाई के बाद हार गया और इस प्रकार यूनानी स्वतन्त्रता का शासक में अन्त हो गया।

इसी काल का वीर तथा सुयोग्य पुत्र क्लिप द्वितीय था जो ३३६ ई०पू० में गद्दी पर बैठा। उसने किस प्रकार यूनान पर अधिकार बढ़ाकर एशिया विजय के लिये प्रस्थान किया, किस प्रकार मिस्र की सेनाओं पर विजय प्राप्त की और बहा के राजाओं अरोरथ के पहिले में पहुँचाकर इनकी दूर तक घसीटा कि उसकी मृत्यु होगी, फिर उसने किस प्रकार पश्चिमी एशिया के देशों को जीतकर पारस पर आक्रमण किया, किस प्रकार साना दारा की विशाल सेना को हराया और फिर पारस के राजाओं की पुरानी राजधानी पर्सीपोलिस को जलाकर नष्ट किया (मिस्र के राजा को घसीटकर मारना तथा पर्सीपोलिस नगर को जलाकर नष्ट करना उसने क्रूर तथा बुरा कृत्य हैं जो उसकी वीरता पर धरना लगाते हैं), जिस प्रकार वह भारत की पश्चिमी सीमा के भीतर पञ्जाब तक बढ़ आया तथा वहाँ से आगे न बढ़कर वापस लौटा, किस प्रकार लौटने समय कुछ भारतीय जातिपों से उसका मुझ हुआ तथा वह घायल हुआ और फिर किस प्रकार अपनी यापसी यात्रा में वह कायल नगर में पहुँचकर बीमार पड़ा तथा केवल ३२ वर्ष की अवस्था में मृत्यु को प्राप्त हुआ—ये सब इतिहास की प्रसिद्ध घटनाएँ हैं जिन पर यहाँ विस्तार से लिखने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती।

सिन्धु के महान योद्धाओं में गिना जाता है और यद्यपि वह मेसेडोन राज्य का निवासी था फिर भी वह प्रायः यूनानी ही गिना जाता है। वह यूनानी सभ्यता का प्रदर्शक था तथा उसका यूनानी सभ्यता, यूनानी भाषा और यूनानी आचार विचारों का प्रचार करने के लिये देशों में किया। एशिया माइनर, शाम, मेघारोयानिया और मिस्र ये सभी देश यूनानी सभ्यता के भारतीय प्रभावित हुए तथा यहाँ यूनानी शिक्षा का भी अन्त प्रचार हुआ। इस यूनानी सभ्यता तथा शिक्षा के प्रचार का केन्द्र अब अदम्य अथवा मेसेडोन नहीं था बल्कि मिस्र देश का नगर सिन्धु (अत्यन्त दरिया) का सिन्धु सिन्धु के अन्तर्गत सिन्धु का नगर बन गया था।



सिन्धु

मिस्र देश का नगर सिन्धु (अत्यन्त दरिया) का सिन्धु सिन्धु के अन्तर्गत सिन्धु का नगर बन गया था।

सिकन्दर ने योद्धे ही समय में जो विद्याल साम्राज्य तड़ा कर लिया था वह उसकी असाधारण मृत्यु होते ही विखर गया। उसके सेनापतियों में प्रधानता के लिये सदा आरम्भ हो गया तथा अन्त में उसका साम्राज्य तीनों मुख्य मुख्य सेनापतियों में बँट गया। पश्चिमी एशिया का साम्राज्य—शाम से फरात नदी तक सिल्यूक्स गिबेटर का मिला, मिया पर टालेमी ( बतलीपूरी ) ने अधिकार कर लिया जिसके पश्चिम इरखी सन् के आरम्भ काल तक राज्य करते रहे तथा यूनान पर अत्योक्स नामक सेनापति ने अपना अधिकार जमा कर लिया। सिकन्दर ने फारस की एक राजकुमारी क्यसाना से विवाह कर लिया था जिसके एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ था। परन्तु उसके पड़पड़पुत्र सेनापतियों ने इस पुत्र की बालकूपन में ही हत्या करके सिकन्दर के वंश का अन्त कर दिया। इन सेनापतियों में आपसी झगड़े चलते रहे। यूनान जब विद्रोह व आपसी कलह से जजर हो रहा था तभी उसके पश्चिम में रोम और कारथेज का युद्ध सत्तार का ध्यान आकर्षित कर रहा था और यह प्रत्यक्ष था कि उन दोनों में से जो भी जीतेगा उसी के हाथ में यूनान भी चला जायेगा। १६८ ई० पू० में रोम के लोगों ने मेसेडोन के राजा परसियस को हराकर भगा दिया और मेसेडोन राज्य रोम में मिला लिया गया। यूनान भी शीघ्र ही ( प्रथम शताब्दी ई० पू० में ) रोम के अधिकार में आ गया और रोम साम्राज्य का अंग बन गया। उसकी स्वतन्त्रता का अन्त हो गया।

### यूनानी सभ्यता—

अब स अथवा यूनान की महत्ता उसकी विश्व पराजयों में अथवा साम्राज्य विस्तार में नहीं। उसकी महत्ता है वहाँ के विचारियों की विद्या बुद्धि, कला निपुणता तथा उच्च सभ्यता में है। पाँचवीं छठी शताब्दी ई० पू० में भी वहाँ साहित्य, नाटक, शिल्पकला, दृश्य आदि का आश्चर्यजनक विकास हो गया था, जिसका सज्जित विवरण निम्न-लिखित है —

### शिल्पकला—

इस समय हेलस की बौद्धिक तथा राजनीतिक हलचलों का केन्द्र प्रायः केन्द्रीय भूपाल - मुग्रा अथवा ही था और लगभग १०० वर्ष तक उसी की प्रधानता रही। वहाँ अनेक सुन्दर इमारतें बनीं जो उसकी शिरोमूर्ति का पता देती हैं। वहाँ का पारिषदात्मक मन्दिर अब भी सत्तार की कलात्मक इमारतों में गिना जाता है। इसमें प्रसिद्ध शिल्पी पीरियस की चतार दूर अथेनी देवी की मूर्ति थी जो सोने तथा हाथी दाँत की बनी हुई थी। इस मन्दिर के बाहर भी अन्धता काम है। यह मूर्ति ४३८ ४३७ ई० पू० में पथराई गई थी तथा एक अतुरम कलाकृति मानी जाती है। यह मूर्ति तो आज नहीं मिलती किन्तु उसका पगन कुछ पुराने पागन-रथों में मिलता है तथा तिरों पर अकिन्त उसकी

प्रतिकृति भी मिलती है। इस शिल्पकार ने कई अन्य सुन्दर मूर्तियाँ भी बनाई थीं जैसे ओल्गिया म जिगस देवता की मूर्ति। इन मूर्तियों को उसने किसी मोडेल के आधार पर नहीं बनाया बल्कि वह पहले अपने चित्त में एक सौ दर्यमयी मूर्ति की कल्पना कर लेता था और फिर उसी कल्पना के आधार पर मूर्ति गढ़ता था। उसने अपनी कल्पना को साधारण रूप देने में प्रायः सदैव सफलता प्राप्त की।

### साहित्य—

यूनान का प्राचीनतम साहित्य होमर कृत काव्य तथा वीर गायण हैं। होमर ही यूनानी भाषा का आदि कवि माना जाता है। इसने दो प्रसिद्ध महाकाव्यों की रचना की जिनके नाम हैं—इलियड और ओडेसी। इलियड एक विजय गथा है तथा ओडेसी में ओडेसिस और यूलीसीस के कुछ विचित्र देशों में भ्रमण करने की कथा है। ये ही दो काव्य उस समय में यूनान की समस्त शिक्षा का आधार थे। इन्हीं से वहाँ का कवि प्रेरणा प्राप्त करके अनेक कवियाँ रचते थे, इन्हीं पर अनेक कथाएँ तथा दंतकथाएँ बनीं और इन्हीं पर वहाँ का ज्ञान तथा इतिहास आधारित था। पेरोर गायक इन्हीं वीर काव्यों को फुटस्थ कर शहर शहर और गाँव गाँव में फिरते थे और राजा, रक्षकों तथा जनसमुदाय को सुनाकर उनका मन मोह लेते थे। यही काल यूनानी साहित्य का प्रथम काल कहलाता है तथा उसका आरम्भ ७०० ८०० ई० पू० के लगभग माना जाता है। यह साहित्य पत्र में था। इस काल में कुछ गीत, भावगीत आदि भी बने। कुछ लोगों का मत है कि इलियड और ओडेसी की रचना ६०० ई० पू० के लगभग हुई।

इस पद्य काल के पश्चात् धीरे धीरे गद्य भी प्रचलित हुआ। जेनोफनीस और पारमेनीडीस जैसे आरम्भिक काल के नाटकियों (५२० ४८५ ई० पू०) अपने सिद्धांतों को गद्य में लिखा था तथा कुछ इतिहासकारों हेकाटेअस (६ वीं शताब्दी ई० पू०) तथा हेरानिथस (१० वीं शताब्दी ई० पू०) ने भी अपने प्राथमिक ग्रंथों में लिखे। ये आयोजिक विचार धारा का इतिहासकार कहलाते हैं—इतिहास-लेखन यूनान में धारण में आयोजिका से ही शुरू हुआ। इनके बाद हेराडोटस (पाचवीं शताब्दी ४८५-४२५ ई० पू०) ने अपना प्रसिद्ध इतिहास ग्रंथ लिखा जिसमें यूनान के इतिहास तथा भारत यूनान युद्ध का वर्णन किया गया है। उसकी रचनाएँ आज तक सुरक्षित हैं तथा यूनान के इतिहासकार उनसे महारण लेते हैं। इनके बाद यूगोटाइटोग (९ वीं शताब्दी ४७१-४०१ ई० पू०) ने पञ्चाशतिका युद्ध का वर्णन किया। बाद में जेनोफोन (१० वीं-११ वीं शताब्दी ई० पू०) १ पुष्पागरीय युद्ध का वर्णन करने लगे।

### नाटक—

यूनान का प्राचीन नाटक का रूप म है जिसकी उत्पत्ति ११ वीं शताब्दी ई० पू० में हुई। इन नाटकों का प्रारम्भ शुरू में, धारण प्रान्तों के उत्पत्तियों में, कुछ कालों

आदि के समय हुआ होगा। इन उद्योगों में तथा वेफस नामक देवता के स्तुति-गानों में एथेंस अप्रणी था। एथेंस में एक नाटक घर भी था जहाँ धार्मिक के अतिरिक्त कुछ सामाजिक और राजनीतिक नाटक भी खेले जाते थे। एसचिलीस (५२५-४५६), सोफोक्लीस (४६५-४०३) तथा यूरीपाइडीस (४८०-४०० ई० पू०) इस काल के प्रमुख नाटककार हैं जिन्होंने कई सुन्दर नाटक लिखे हैं—यद्यपि उन दिनों भी फारस के साथ युद्ध चल रहा था। इनके क्रमानुसार प्रायः होमर कृत वीर काव्यों से ही लिखे गये हैं। इन तीनों नाटककारों में यूरीपाइडीस अधिक लोकप्रिय था। अनेक नाटकों में उसने स्त्री का चरित्र चित्रण बड़ा ऊँचा किया है। दासों पर किये जाने वाले अत्याचारों का वर्णन भी यूरीपाइडीस ने अच्छा किया है।

इस समय यूनान में दुष्कात नाटकों का भी खूब चलन था। दुष्कात नाटक लिखने वाले ३८ लेखकों के नाम उस काल के प्राप्त होते हैं। सुष्कात नाटकोंकी भी रचना होती थी। ऐसे नाटकों का प्रथम लेखक एपीचारमस (४८० ई० पू०) के लगभग सिसली में हुआ। एरिस्टोफेनीस (४४४-३८० ई० पू०) के ११ सुष्कात नाटक भी इसी काल में लिखे गये जो अभी तक मिलते हैं। ये प्रायः उसी समय की घटनाओं को लेकर लिखे गये हैं। चतुर्थ शताब्दी ई० पू० में मेनाण्डर भी एक अच्छा नाटककार हुआ।

### कविता—

सेफौ, सिमोनिडेस, अल्सीयस (सातवीं शताब्दी ई० पू०), केलिगस और पिण्डार (५ वीं शताब्दी ई० पू०) इस समय के अच्छे कवि थे। उन्होंने अपने समय का तथा अपने समय के सुदों का वगन अपने काव्यों में किया है। कई गीत पौवादों का टंग होते थे जो युद्ध के समय लोगों में उत्साह भरने के लिये गाये जाते थे अथवा युद्ध में बलिदान हुए लोगों की प्रशंसा में रचे जाते थे। टायटियस नामक एक कवि (७ वीं शताब्दी ई० पू०) अथेस छोड़कर स्टार्टा चला गया था और उसने ऐसे अनेक जोशीले गीत और चल गीत बनाये जिनसे लोगों को शत्रुओं का विषय अन्तिम सँस तक लड़ते रहने की प्रेरणा मिलती थी—यथा—सबसे अधिक वाञ्छनीय मृत्यु वह है जो युद्ध के मैदान में, सबसे आगे की पंक्ति में लड़ते हुए हा—वीर मर जाता है परन्तु सदा के लिये अमर हो जाता है, उसने लिये वृद्ध और सुनर सभी दुखी होते हैं और सब उसका आदर करते हैं, यदि वह वायस्ता दिग्गता है तो जीवन भर राजा में डूबा रहता है, इत्यादि।

### दर्शन—

दर्शन के क्षेत्र में यूनान का महात्मा सुकुरात अमर हैं। सुकुरात का जन्म ६० ई० पू० के लगभग हुआ था। वह गल्लिया में घूम घूम कर वहाँ के सुनकों को सदाचार की शिक्षा देता था। नगरके बहुत से नायबक उसकी बातें सुनत तथा उचित समझकर

उमरे पीछे फिरते लगते थे। वह उनसे प्रश्न पृथक्ता और फिर तर्क द्वारा उनके असत्य विद्वानों का खण्डन करता था तथा अपने विचार उन्हें समझाता था। किन्तु सच्चे महाभाओं को लोगों ने उनके जीवन-काल में प्रायः बहुत कम समझ पाया है। यूनान के सत्ताधारियों को भी मुकुरात के विचार सत्य न हुए। उन्होंने उसे देशद्रोही और धर्मद्रोही ठहराया। युजनों को बढ़ाकर दूषित मार्ग पर ले जानेवाला घोषित किया। उसके अच्छे विचारों के लिये उस पर मुकुदमा चलाया गया और अंत में उसे मृत्युदण्ड सुना दिया गया तथा उस समय की पद्धति के अनुसार विष का प्याला पिलाकर उसका प्राणांत कर लिया गया (३६६ ई० पू०)। यह यूनान के जनतंत्र पर एक बड़ा झटका है। मुकुरात युजनों को बिगाड़ने वाला, गलत रास्ते पर ले जानेवाला तथा देशद्रोही नहीं बरिफ़ उन्हें सत्ताचरण और सच्चा मार्ग सिखानेवाला था। वह उन्हें स्वतंत्र विचार करने तथा अपने पुराने विचारों को तर्क की कसौटी पर कसने की शिक्षा देता था।

छोटो या अरस्तूतून मुकुरात के समान ही यूनान के दार्शनिकों में सबसे अधिक विद्वान तथा प्रसिद्ध था। उसका शिष्य अरस्तू था एरिस्टोत्ल बड़ा बरों तक विचार का शिष्य रहा था। एरीथचूरस, जेनो आदि यहाँ के अन्य दार्शनिक थे। इन्होंने, सृष्टि निर्माण, आत्मा, प्रकृति आदि के सम्बन्ध में इन्होंने कहीं विचार तथा चिन्तन किया तथा अपने विचारों को लिखा—यद्यपि उनसे विद्वान्तर भिन्न थे।

सिकन्दर के बाद यद्यपि साहित्यिक हलचल का केंद्र सिकन्दरिया ही बन गया था किन्तु दर्शन का मुख्य केंद्र अर्थेंद्र ही बना रहा।

### शिक्षा—

यूनानी लोग शिक्षा पर कानूनी ध्यान देते थे। बच्चों को शिक्षा देना माना-गिना का सबसे मुख्य कर्तव्य समझा जाता था। कुछ राज्यों में बच्चों को शिक्षा में लापरवाही करने पर माँ को दण्ड दिया जाता था। प्राथमिक शिक्षा के बाद मुख्य अंग सगीत तथा गणित माने जाते थे। बच्चों को संगीत तथा शान सम्बन्धी कुछ बर बर कष्ट कम दिए जाते थे। शय बच्चों को शीन बनाया और गाना भाँ सिखाया जाता था। एका समस्त जाति था कि सगीत से मनुष्य की अज्ञान परम तथा ग्यासान बनती है।

### व्यवृत्त फला—

प्राचीन यूनानी समाज सत्ता गतिर का एक मुख्य अंग व्यवृत्त-व्यव भी है। एने बान्दो ए नि. जो भारी नागरिक जीवन में महत्वपूर्ण भाग लेता था जो वे, व्यवृत्त व्यवृत्त गिगाराग अंग एक सम्बन्ध बना था—एगी व्यवृत्त व्यवृत्त को मुख्यतः पर प्रभाव प्राप्त था। अज्ञान में गान ही तर्क-शक्ति का निर्णय महत्व रहा है, क्योंकि

प्रभावशाली यत्ना अपने श्रोताओं को चाहे जितना मोड़ सकता है तथा उन्हें अपने मत के अनुकूल बना सकता है।

राजनीतिक प्रभाव लोगों पर डालने के अतिरिक्त यूनानी नागरिकों को एक अन्य कारण से भी भाषण-कला सीखने की आवश्यकता होती थी। उन्हें 'यायालयों' में अपने पक्ष के समर्थन में स्वयं ही बोलना पड़ता था और वे 'यायालय' एक प्रकार से सार्वजनिक सभा के समान ही होते थे, क्योंकि वहाँ लगभग ५०० व्यक्ति 'यायाकर्ता' होते थे जो इकट्ठे होकर मामलों को सुनते और उनका निणय करते थे। चादी तथा प्रतिमादी को स्वयं उनके सामने उपस्थित होकर अपना पक्ष समझाना पड़ता था। अतः भाषण-कला की शिक्षा देना भी वहाँ एक व्यवसाय बन गया था। स्थान स्थान पर वक्त्रत्व कला सिखाने वाले शिक्षक दिखाइ देते थे। एटिका (दक्षिण के एटिका प्रांत की) भाषा के ऐसे दस शिक्षकों के लेखोंके नमूने अब भी मिलते हैं। इनमें एटोफोन (५ वीं शताब्दी ई० पू०) दीनारकस ( चौथी तीसरी शताब्दी ई० पू० ) लीसियास आदि प्रमुख हैं। लीसियास दूसरों के लिये भाषण लिख देने का भी कार्य करता था।

#### धर्म—

प्रारम्भ में यूनानी लोग भारतीय आर्यों की भाँति नैसर्गिक शक्तियों को उपासना करते थे। उनके देवता जियस ( सौम्य अथवा आकाश ), पोसीटन ( समुद्र ), अथेनी ( बुद्धि की देवी ), अपोलो ( सूर्य ), डीमीटर ( पृथ्वी ), आदि थे। सभ्यता के विकास के साथ-साथ देवताओं की संख्या में भी वृद्धि होती गई और ससार का प्रत्येक काय उहाँ के द्वारा संचालित माना जाने लगा। स्थान स्थान पर भिन्न भिन्न देवताओं के मन्दिर भी बन गये। यूनानियों का यह भी विश्वास था कि उनके मुख्य मुख्य देवता ओलम्पिस पहाड़ की चोटी पर निवास करते थे। उनका यह भी विश्वास था कि उनके देवी देवताओं को शारीरिक घात और स्वास्थ्य प्रदर्शन अधिक पसन्द है। इसीसे वे लोग शारीरिक सौन्दर्य और स्वास्थ्य के विशेष प्रेमी थे।

यूनान में देवी देवताओं के जो मन्दिर थे उनमें दो मुख्य थे। पहला डेलफी स्थान पर अपोलो ( सूर्य देवता ) का मन्दिर और दूसरा आल्फिम्पिया का। इन लोगों का विश्वास था कि अपोलो के मन्दिर के पुनारी या पुजाग्नि के ऊपर देवी चढ़कर बोला करती है। अतः वहाँ के पुजारियोंका देशमें बड़ा आदर था तथा लोग उनसे बहुत डरते भी थे। दूर-दूर के मनुष्य वहाँ आकर अपने कर्णोंके अच्छे सुरे परिणाम, तबे उपनिवेश बसाने के सम्बन्ध में सहाय तथा भविष्य की घटनाओं का हाल पूछा करते थे। ये लोग देवताओं की इच्छा जाने बिना कोई काय आरम्भ करना उचित नहीं समझते थे। पुजारिन ( जो ओरेकल कहलाती थी ) द्वारा प्राप्त किये गये उत्तर प्रायः अस्मत् तथा अनेकार्थक होते थे। फिर भी यह प्रथा यूनानी सभ्यता का अन्त तक चलती रही।

दूसरा आल्मिया का मन्दिर खेलों का केन्द्र था। यहाँ पर साल में जो चार बड़े मेले मनाये जाते थे जिनका उद्देश्य यह था कि लोगों को यह स्मरण रहे कि यूनान के लोग एक ही जाति के हैं। इन उत्सवों में तरह तरह के खेल होते थे, जैसे—कुस्ती रेबाजी, युद्धग्रीह, रथ दौड़, कूटना आदि। इनमें यूनान की सब रियासतों का भाग लेते थे और इस मौके पर रियासतें आपसी वैमनस्यों का भी दूर कर देती थीं। तुमान किया जाता है कि ओलिम्पिक खेलों का प्रथम उत्सव ७७६ ई० पू० में हुआ था।

### समाज—

यूनान के लोग मुख्यतः तीन श्रेणियों में बँटे थे—सरकार, साधारण स्वतन्त्र नागरिक और दास। सरकारों के पास निज की भूमि होती थी तथा उनके पास कई दास भी होते थे जो उनकी सब प्रकार की सेवा करने थे। मध्य श्रेणी के लोगों में भी प्रायः सबके पास थोड़ी बहुत भूमि रहती थी जिसे वे लोग खेती करते थे। गाँवों के साथ प्रारम्भ अच्छा उर्ध्व हाथ था और वे भी प्रायः घर के लोगों के समान समझ जाते थे। विन्ध्यु नामी चल्कर दासों पर निन्दुर अव्याचार होने लगा। सार्वत्रिक लोग दासों के प्रति अधिक क्रूर रहते थे, जबकि अर्घेसने लोग अधिक सभ्य होने के कारण कुछ नरम रहते थे। परिणाम यह हुआ कि अब सब के दासों ने कभी विद्रोह नहीं किया बल्कि सुदूरों में भी अपने मालिकों की सहायता की जबकि सार्वत्रिकों में ऐसा न हुआ। यहाँ दास सदा खराब रहते थे।

ये दास यूनान के बाजारों में बिकने भी थे। एक गण के दाम प्रायः १०० ड्राक्मा से ३०० ड्राक्मा (४ रुपये से लेकर १०-१२ रुपये तक) होते थे। इनमें ग्रीक पुस्तक लेखकों की होते थे। इन दासों से घर के सब तरह के काम लिये जाते थे।

अयोग्य में शिशुओं की शिक्षा गिरी हुई थी। वे समाज से अलग समझी जाती थीं और प्रायः घरों में बंद रहती थीं। उनकी शिक्षा पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया जाता था।

भोजन सरकारी और साधारण लोगों का प्रायः एक-सा होता था अर्थात् रोटी दाल अथवा पकरी का मसाला और पानी। परी उनका सुन्दर भोजन भी था। स्त्रियों का भोजन भी बुरा ही था।

होमर के काल से पता चलता है कि यूनान में दुर्गों को बनाने की प्रथा थी, किन्तु बहुत से लोग दुर्गों को गढ़ने भी थे।

### शासन प्रथम—

यूनान अपनी सब सत्तार (डेमोक्रेटिक) शासन व्यवस्था के लिये प्रसिद्ध है। अर्थात् यथा अन्य सत्तार शासकों से इसी प्रकार की व्यवस्था प्रचलित थी। यहाँ जनता का



जनता के बहुमत का शासन था। राज्यके समस्त नागरिक प्रतिमास अथवा आवश्यकता-नुसार इकट्ठे होते थे तथा युद्ध, सधि, अधिकारियों की नियुक्ति वाय नियम आदि बातों पर मिलकर विचार तथा निर्णय किया करते थे। यही सभा उनकी पार्लियामेन्ट थी, यही अदालत और यही नगर-सभा अथवा म्युनिसिपैलिटी थी। इतिहास में जन-समूह को कहीं भी इतने अधिकार नहीं रहे हैं। एक छोटी समिति अथवा कार्य-समिति भी होती थी जिसके लिये सर्वसम्मति से दस प्रतिनिधि चुन लिये जाते थे। ये लोग जनरल कहलाते थे। बहुत समय तक पेरिकलीस इस प्रतिनिधि सभा का अध्यक्ष रहा। उसके समय में (४४५-४३१ ई० पू०) यूनान की बड़ी उन्नति हुई। उसकी स्थिति प्रधान मंत्री जैसी नहीं थी बल्कि एक जनरल की अथवा प्रतिनिधि सभा के एक सदस्य की थी। किन्तु लोगों को उस पर विद्वत्ता था। भाषण कला में भी वह अद्वितीय था। अतः सभी लोगों पर उसका प्रभाव रहता था।

प्लेपोनेसस प्रदेश में एकाधिसारियों (टायरेंट्स) का बहुत समय तक (७००-६०० ई० पू०) राज्य रहा। यूनान में 'टायरेंट' का अर्थ अत्याचारी या पीड़क नहीं बल्कि अवैधानिक रूप से शक्ति प्राप्त कर लेनेवाला होता था, जैसे कि आज के युग में डिक्टेटर होते हैं। किन्तु ये लोग प्रायः अच्छे आचरण के होते थे और यूनान में ऐसे लोगों ने अपनी प्रजा पर अत्याचार नहीं किये, बल्कि अपने राज्यको समृद्ध तथा बचवान बनाया।

### अथस और स्पार्टा—

यूनान की सम्यता का केन्द्र अथवा हृदयस्थल अथेन्स ही था। अथेन्स की सम्यता का ही यूनानमें प्रचार होता था। वह यूनानका शिखालय कहलाता था। अथेन्स उस समय को देखते हुए एक काफी बड़ा नगर था। उसकी जनसंख्या उस समय लगभग ५० हजार थी। वह विद्या बुद्धि का केन्द्र समझा जाता था। इस सम्बंध में बड़ा एक कहानी कही जाती है। समुद्र का देवता पोसीडन और बुद्धि की देवी अथेनी दोनों अपने अपने नाम पर एक नगर बसाना चाहते थे अथवा किसी नगर को अपना नाम देना चाहते थे। उन्होंने इस कार्य के लिये एक नगर को चुना, किन्तु उस नगर को किसना नाम दिया जाय इस सम्बंध में वे किसी समझौते पर न पहुँच सके। भगड़ा बढ़ते-बढ़ते सर्वाथ देवता जियग के पास पहुँचा। उसने दोनों पक्षोंकी बातें सुनीं और फिर कहा कि अच्छा तुम दोनों बताओ कि अपने नगर को तुम अच्छी से अच्छी क्या चीज भेंट दोगे ? समुद्र के देवता पोसीडन ने यह सुनकर एक घोड़ा उत्पन्न किया— बड़ा गलिष्ट और सुन्दर। अथेनी ने एक सुन्दर कस्तूर पत्तन का पैदा उत्पन्न किया और कहा कि मैं नगर को यह सुन्दर वृक्ष देना चाहती हूँ। दोनों के उपहारों को देखकर जियस ने निर्णय दिया

कि पोसीटज का घोड़ा यद्यपि मुद्गर और बलवान है किन्तु वह युद्ध के काम का है और वह लोगों का युद्ध के लिये ही प्रेरित करेगा। किन्तु अयेनी का वह पद सुख और शक्ति का प्रतीक है। युद्ध से शांति का दर्जा ऊँचा है। अतः वह नगर अयेनी का होगा। तभी से नगर का नाम एथेंस पड़ा। तब बुद्धि की देवी एथनी ने अपने नगर का बरदान दिया कि अथेंस के लोग बड़े विद्या बुद्धिवाले होंगे और उनकी कीर्ति चारों ओर फैलेगी, यहाँ तक कि एथेंस बुद्धि और सम्मता का प्रतीक ही बन जायगा। इसी कारण अथेंस सदा से विद्या, बुद्धि और सम्मता का केन्द्र रहा।

उसके विरसीत स्वार्थी की रियासत अपनी कुछ अन्य विशेषतायें तथा विचित्रतायें रखती थी। वहाँ के लोगों की दृष्टि, विज्ञान, कला, कौशल आदि विषयों में विशेष रुचि नहीं थी। वे लोग दुश्नी लड़ना, दूधिया नलाना, खेलना, कृन्ता आदि अधिक पसन्द करते थे। वह सबके अर्थों में एक मित्राहियों की रियासत थी और जिमहीमीरों में ही वहाँ के लोगों की रुचि थी। वहाँ बच्चों को आरम्भ से ही निडर बनाने और कठिनाइयों को मँडोने का अभ्यास कराया जाता था जिससे वे युद्ध की विचित्रियों को बिना घबराये सहन कर सकें। यदि बच्चा निर्मल होता तो माता पिता उसे टगटल पहलू पर नगा करके टाँग देते थे जिससे वह विशाल छद्म के कारण शीघ्र ही मर जाता था। यदि बच्चा खबल हुआ और बीबित रहा तो माता पपकी अग्रगण्य में उसे राजाधिरारियों के सिपुने कर दिया जाता था और वे लोग उसे कठोर अनुशासन में रखते थे। उन्हें यह जिन तक भूगा प्यासा भी रखा जाता था किन्तु युद्ध में ऐसा अन्तर आ पड़ने पर वे विनवित्त न हो और धैर्य से लड़ते रहे। शिष्या भी यहाँ युवकों के साथ खेलें और व्यायाम में भाग लेती थीं। वीर्य वर की अग्रगण्य में उनका निरुप्राय ३० वर्ष के युवकों के साथ किया जाता था जिससे उनकी मत्तान बलवान होती थी। उन्हें यह भी सिखाया जाता था कि उनके पति तथा पुत्र ठनक नहीं बल्कि देश के हैं। अतः युद्ध के अन्तर पर वे उन्हें लड़ने के लिये विरग करती थीं। युद्ध में उनकी मृत्यु हो जाना भी दुःख की बात नहीं समझती जाती थी, बल्कि युद्ध में हार कर लौट आना दुःख की बात समझती जाती थी। इसी कारण से स्वार्थी के लोगों की सम्मत् यूनान में आर बाहर भी पौरता के लिये धाक बनी हुई थी।

### युद्ध अन्य बातें—

इतिहास तथा सम्मत् के आरम्भिक काल में ही यूनान में पादुओं का प्रयाग आरम्भ हो गया था। इससे अन्त जिन कालों में बिबाकीरों का यूनान बिना है वे प्रायः सभी कालों के काल और टांग आदि पन्निने काल में है। यह सब ही माल काल में लगे थे। इससे भी होकर परिचित है। किन्तु यूनान में काल के स्थान पर एक नया प्रकृतिक हुआ तथा यह सब काल और अन्त इन पर निरिवन कर के स्थान ले रहा। किन्तु यह

कल्पना कर लेते हैं कि भारत के लोगों का 'यवनो' से परिचय चतुर्थ शताब्दी ई० पू० के आत में अर्थात् सिकंदर द्वारा किये गये भारत पर आक्रमण के बाद हुआ जबकि उसके साथ बहुत से यूनानी सैनिक आये थे तथा जब सिकंदर के बाद भारत की उत्तर पश्चिमी सीमा पर कई यवन राज्य स्थापित हुए तथा इस मायता के आधार पर भारत के उत्त प्राचीन ग्रंथ पुराणादि सिकंदर के आक्रमण के बाद के काल के माने जाते हैं परंतु यह मत भ्रमात्मक तथा असत्य सिद्ध होता है।

पश्चिमो एशिया के प्राचीन भूगोल से ज्ञान होना है कि एशिया माइनर या यह पश्चिमी तट जो पश्चिममें ऐजियन सागर तक चला गया है तथा जिसने पूर में लीडिया नाम का राज्य था, आस पास के कुछ द्वीपों सहित 'आयोनिया' कहलाता था। यह नाम इस कारण पड़ा कि वहाँ यूनानकी एक जाति ने जो 'आयोनियन' अथवा आयोनीय कह जाती थी अपनी बस्तियाँ बसा ली थीं। इस भागमें १२ अच्छे नगर बताये जाते हैं।

प्राचीन काल में यूनान में बसी हुई चार मुख्य जातियों में से एक आयोनीय भी थी। अन्य जातियाँ आयाटिक, डोरिक या डोरियन तथा एचियन थीं। प्रारम्भ में बताया जा चुका है कि यूनान की जिन सबसे पुरानी जाति का पता चलता है वह पेन्थसगोइ थीं। उसके बाद एचियन जाति की प्रधानता हुई और फिर हेलेनीस लोग प्रधान हुए। ये हेलेनीज लोग किंसा एक जाति विशेष के थे अथवा यूनान के समस्त निवासी उस समय हेलेनीज कहलाते थे यह स्पष्ट नहीं होता। कुछ लोग एचियन लोगों की ही हेलेनीज मतलाते हैं। किन्तु ऐसा जान पड़ता है कि यूनान में हेलेनीज लोगों की प्रधानता होने से पहले ही वहाँ के लोगों ने आस पास कुछ बस्तियाँ बसा ली थीं और ये लोग आयोनीय जाति के थे जिसके कारण उनकी बस्तियों का देश 'आयोनिया' कहलाता था। ऐसा जान पड़ता है उस समय समस्त यूनान में भी आयोनीय जाति की ही प्रधानता थी, क्योंकि इतिहास पूर्वकाल में यूनानियों के लिए 'आयोनीय' नाम का ही अधिक उपयोग मिलता है। ये आयोनीय लोग 'यवन' को अपना आदि पुरुष मानते थे। यह 'यवन' अवश्य ही कोई अधिक प्राचीन तथा शक्तिशाली व्यक्ति रहा होगा क्योंकि उसका नाम यहूदियों की पुरानी धर्म पुस्तक 'ओल्ड टेस्टामेंट' (जेनेसिस १०—२) में भी आया है। यहूदी लोग 'यवनी' अथवा 'आयोनी' शब्द को समस्त यूनानी जाति के लिए प्रयुक्त करते थे। बाद में पारस के लोग उन्हें 'यौन' कहते थे।<sup>1</sup> यह शब्द दारा के शिलालेखों में प्रयुक्त हुआ है जो ईसा से लगभग ५०० वर्ष पूर्व के समझे जाते हैं।

#### 1 Encyclopedia Britannica Ionia

In view of the name of the Ionian Sea which was ancient it is possible that the mainland of Greece was once known as Ionia  
• its inhabitants as Ionians

यूनान के कवि होमर ने भी 'आपोनियम' शब्द का प्रयोग किया है जो मूलतः एटिका ( यूनान के दक्षिणी भाग ) के निवासियों के लिये आया जान पड़ता है। हेरोडोटस ने लिखा है कि आपोनियन लोगों का प्रारम्भिक निवास उत्तर पूर्वी पल्पोनेसस ( उत्तरी यूनान ) था जहाँ से एचियन लोगों ने उन्हें भगा दिया और वे एटिका प्रान्त में जाकर बसे और फिर वहाँ से पश्चिमी एशिया ( एशिया माइनर ) में जा बसे।

इससे शत हात है कि आपोनीय जाति यूनान की प्राचीन जाति थी जो एचियन जाति से भी पूर्व से वहाँ बनी हुई थी। वह वहाँ की एक प्रधान जाति भी थी जिसके कारण समस्त यूनान को भी उसी के नाम पर 'यवन' तथा 'यून' कहा जाना था और इसी जाति के कारण इस देश का नाम 'यूनान' पड़ा जो आज तक प्रचलित है। उनका यही नाम यूरदियों तथा फारस के लोगों में भी प्रचलित था और वहाँ से यह नाम भारत में आया होगा। इस प्रकार भारत के प्राचीन ग्रंथों में 'यवन' नाम होना इस बात का द्योतक नहीं है कि भारतीयों ने यह नाम सिक्खर के आक्रमण के बाद ही जाना। उससे द्वाजरो वर्ष पूर्व से ही भारत के लोग 'यवन' नाम से परिचित थे।

भारतीय प्रविद्ध वैयाकरण पाणिनी सिक्खर और चन्द्रगुप्त के काल से काफी पहले हुआ है—वह भी यवनों से परिचित था। रामायण तथा महाभारत में उनके नामों के उल्लेख से ऐसा जान पड़ता है कि भारत के लोग उनसे भलीभाँति परिचित थे। ऊपर ब्रह्माण्ड पुराण का जो उल्लेख किया गया है उससे अनुमान होता है कि उस समय में भी ( इक्ष्वाकु वंशी सगर भीमर से भी बड़े पीढ़ी पूर्व हुए ) यवन लोग भारत के उत्तर पश्चिम के प्रदेशों में बसे थे और सम्भवतः आर्य धर्मिय माने जाते थे। श्री पोलार्क की पुस्तक 'इंडिया इन ग्रीस' के आधार पर ऐसा अनुमान किया गया है कि सगर के काल तक यवन जाति के लोग जो पूरा आर्य तथा धर्मिय थे और संस्कृत भाषा बोलते थे—भारत के उत्तरी पश्चिमी देशों में बसे थे।<sup>1</sup> सगर के बहुत काल बाद ये यवन लोग यूनान में गये और यूनान में बिना देश पर उन्होंने अपना अधिकार स्थापना कर आपोनिया अथवा यवन देश हुआ। सम्भव है इस कथन में कुछ सत्यता हो। कई यूरोपीय इतिहासकार भी इस बात को मानते हैं कि प्राचीन काल में, यवन एशिया से भाग्यो की जो एक शाखा पश्चिम की ओर गये वह यूनान में भी पहुँची थी। कुछ भी तो इतना अन्वय ही जान पड़ता है कि भारत के लोग सिक्खर के आक्रमण के बाद से 'यवन' शब्द से परिचित नहीं हुए बल्कि वे उस काल से बहुत पूर्व से 'यवन' जाति के

लोगों से तथा उनके देश से भलीभाँति परिचित थे। यह सम्भव है कि पारस वालों का तथा भारतवासियों का भी पहिले पहल परिचय आयोनीय जाति के उन लोगों से हुआ हो जो पश्चिमी एशिया के उपनिवेशों में बसे हुए थे तथा इसी कारण उन्होंने यूनान के सभी निवासियों को 'थवन' कहना शुरू कर दिया हो।

### धर्म पर प्रभाव—

ऐसा समझा जाता है कि यूनान का धर्म बाहरी प्रभावों का मिश्रण है अर्थात् उस धर्म पर मिस्र, श्याम, पारस तथा भारत आदि अनेक देशों का प्रभाव है। हेरोडोटस का यह स्पष्ट मत था कि देवताओं के बारे में यूनानियों के बहुत से विद्वानों तथा धर्म के बारे में अनेक बातें एक दम मिश्रण वालों से उधार ली गई थीं। उसका यह भी स्पष्ट विचार था कि तिथि पत्र भी यूनान ने मिश्रण वालों से ही उधार लिया। इसी प्रकार यूनान का हेरीक्लीस देवता राम के मल्लार्त देवता का रूप माना जाता है। यूनानी देवता डायोनियस के सम्बन्ध में श्री प्रोक्टर का विचार है कि यह देवता वहा पारस से या एशिया से पहुँचा। उसने समान य अथेस में कई उत्सव मनाये जाते थे।

यूनान के कई देवताओं पर भारत का भी प्रभाव दिखाई देता है। 'यूरेनस' देवता के सम्बन्ध में अनुमान है कि वह 'वदग' का ही रूप है। प्राचीन भारतमें वदग की पूजा सर्वोच्च देवता के रूप में होती थी। यहीं से भारत के निवासी जिनमें पणि जाति के लोग मुख्य थे, वदग की पूजा को पश्चिमी एशिया में ले गये और वहा से वह यूनान पहुँची। यह 'वदग' देवता भारत से चलकर सम्भवत पहले इरान में पहुँचा जहाँ वह 'वरेन' बना फिर आगे पश्चिमी एशिया तक पहुँचते पहुँचते वह 'ओरेनस' बना और यूनान में पहुँचकर 'यूरेनस' होगया। इसी प्रकार यूनानी देवता जियस, मिनर्वा और डेलियोस क्रमशः इन्द्र, उषा और सूर्य के रूपांतर माने जाते हैं।

### दर्शन पर प्रभाव—

यूनान के दर्शन पर भारत का प्रभाव और अधिक स्पष्ट दिखाई देता है। विद्वानों का अनुमान है कि यूनानी दार्शनिक हेराक्लीटस, एपीक्यूरस आदि के दार्शनिक सिद्धांत भारतीय मुख्य दर्शन से प्रभावित हैं तथा प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक पथागोरस ( ६ वीं शताब्दी ६० पू० ) भी सात्य दर्शन से प्रभावित हुआ था। पथागोरस के चरित्र लेखक ने लिखा है कि उसने मिस्र और असीरिया जाने के अतिरिक्त ब्राह्मणों की भी सगति की थी। सम्भवत पुनः न के सिवा उसने भारतीय ब्राह्मणों से ही ली होगी, यह भी वही दिखाने का भी विरोधी बताया जाता है। कुछ लोगों का अनुमान है कि भारतीय दार्शनिक

निकों की विचारधारा ने सम्भवतः फारस के लोगों द्वारा यूनान में प्रवेश किया होगा, क्योंकि फारस के लोगों के साथ यूनान का व्यापारिक आदान-प्रदान तो होता ही था, विचारों का भी आदान-प्रदान चलता था। पथागोरस के सिद्धान्तों में मुख्य हैं आत्मा का पुनर्जन्म, पाँच मौलिक तत्व, धीव का ईश्वर-सान्निध्य प्राप्त करना आदि और ये सिद्धान्त भारतीयों में प्रचलित दार्शनिक सिद्धान्तों का पूर्णतया अनुसरण करते हैं। पुनर्जन्म के सम्बन्ध में पथागोरस ने जो मत प्रकट किया है उससे पूर्व पाश्चात्य देशों में उक्त मत किसी ने प्रकट नहीं किया था। यूनान में यह सिद्धान्त विदेशों से आया, इसे यूनानी विद्वानों ने भी स्वीकार किया है। अनेक लेखकों ने बताया है कि पथागोरस तथा अन्य यूनानी दार्शनिकों ने भारत की यात्रा भी की थी।

मेक्समूलर का कथन है कि मुकरात के समय ( ४६६-३६६ ई० पू० ) में भारतीय दार्शनिक लोग अथेस नगर में आते जाते थे तथा एक भारतीय दार्शनिक का अथेस में मुकरात के साथ विचार विनिमय भी हुआ था।

मुकरात के बाद प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो या अक्लातून हुआ ( ४२७-३४५ ई० पू० ) जिसका यूरोप के राजनीतिक विचारों के इतिहास में अन्यन्त उच्च स्थान है। प्लेटो के ऊपर भारतीय अध्यात्म तत्व का विशेष रूप से प्रभाव पड़ा है। इस बात को मेक्समूलर हमसन आदि विद्वानों ने एक मत से स्वीकार किया है। एक अन्य विद्वान उर्विक ने लिखा है कि प्लेटो ने अपने 'रिपब्लिक' नामक ग्रन्थ में जिस सिद्धान्त की स्थापना की है वह भारतीय सिद्धान्त की प्रतिचित्रि मात्र है। यह मानता था कि कर्मों के अनुसार मनुष्य की आत्मा पशु-योनि में तथा पशु की आत्मा मनुष्य-योनि में जा सकती है। इस प्रकार अपने ज्ञान सिद्धान्त के साथ कर्मवाद के सिद्धान्त को मिला कर एक तर्कपूर्ण दृष्टान्त की रचना की जो दृष्टान्त पूज्यता भारतीय है। उपनिषदों में भीय को रधी तथा इन्द्रियों का अन्त के रूप में वर्णित किया गया है ( पृष्ठ १, ३, ३४ ) प्लेटो ने भी अपने एक ग्रन्थ में इसी रूपक का प्रयोग किया है।

दूसरी शताब्दी ई० पू० में प्लेटो के 'न्यू प्लेटानिज्म' अर्थात् अभिनव प्लेटोवाद का सिद्धान्त चलता जिसमें प्लेटो के दार्शनिक सिद्धान्त का प्रतिवाद किया गया है। उगो कहा कि सा आत्मा में शुद्ध हो चुकी है और शरीर पर अज्ञानात्मिक भी मोह नहीं है वे फिर से शरीर धारण नहीं करेंगी। यह भी और कुछ नहीं उपनिषदों के मोक्ष और मोक्ष मार्ग निर्वाण की प्रतिचित्रि मात्र है। यथावत् ही ही माना है कि प्लेटो ने उपनिषदों के लक्षण ही अपना यह सिद्धान्त के लिए लक्षण प्राप्त की थी।

टिप्पणी—

यूनानी सिद्धान्त के सम्बन्ध में द्रोणीय का मत है कि पश्चिम और उत्तर गयी विचारधारा ( पश्चिम ) का प्रभाव यूनानी विचारधारा को प्रभावित हुए यूनान में आये थे तथा

वे अपने साथ एक लिपि भी लाये और यूनानियों ने उन्हीं अक्षरों को अपना लिया। अथ लोगों के मतानुसार अक्षरों का आविष्कार श्याम (सीरिया) के लोगों ने किया। वहाँ अल्फा या पुलिस् का अथ ब्रैल, चेटा या वेथ वा अथ मरान और गाया या गिमेल का अर्थ ऊट होता था। पहले ये शब्द चित्रोंके रूप में लिखे जाते थे जैसे चेटा (मकान) एक त्रिभुज के आकार का बनाया जाता था। प्रारम्भ में ये अक्षर केवल व्यञ्जनों के लिये बनाये गये थे। यूनानियों ने उनमें स्वर भी जोड़े।

यहूदी लोग इन अक्षरों को दाहिनी से बाई ओर को लिखते थे। यूनानियों ने जब पहले पहल इन अक्षरों को अपनाया तो उन्होंने इन अक्षरों को दायें बायें दोनों ओर से लिखना आरम्भ किया अर्थात् पहले दाहिनी ओर से बाई ओर को लिखते थे और एक पक्ति समाप्त हो जाने पर उसके नीचे दूसरी पक्ति बायें से शुरू करके दाहिनी ओर लाते थे और तीसरी पक्ति फिर दाहिनी से बाई ओर को ले जाते थे और चौथी पक्ति फिर बाई ओर से दाहिनी ओर लाते थे। बहुत समय बाद उन्होंने बाई ओर से दाहिनी ओर को लिखने का सिद्धांत अन्तिम रूप से निश्चित किया। सम्भव है इस सिद्धांत पर भी भारत का प्रभाव पड़ा हो, क्योंकि भारत की लिपि जहाँ तक शत हो सका है, प्रारम्भ से ही बाई ओर से दाहिनी ओर लिखी जाती रही है।

#### अन्य प्रभाव—

यूनान का 'मना' शब्द जो चढ़ी तौल का एक माप है भारत से गया जान पड़ता है। श्रुग्वेद (८, १४, २) में 'मना' शब्द आया है जो सोने की ताल के लिये आया हुआ जान पड़ता है। यूनान में यह शब्द सम्भवतः हीब्रू (यहूदी) भाषा के द्वारा पहुँचा जान पड़ता है। श्री अविनाश चन्द्र दास का विचार है कि मना एक सोने का सिक्का था जो पणियों के द्वारा बेबीलोन और असीरिया में ले जाया गया है और वहाँ से आगे चलकर यह यूनान की मुद्रा प्रणाली में सम्मिलित हो गया। असीरिया के पुराने लेखाओं में 'मना' शब्द का प्रयोग काफी मात्रा में मिलता है। अतः वहाँ पर पणियों द्वारा उठने ले जाये जाने की कल्पना अधिक तर्कसंगत जान पड़ती है।

इस प्रकार भारत से अत्यधिक दूर होने पर भी यूनान पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से भारत का तथा भारतीय सभ्यता का प्रभाव बड़ी मात्रा में निश्चिन्त देता है तथा इन दोनों देशों का व्यापारिक सम्बन्ध भी प्राचीन काल से शत होता है।







एक नया देश है  
 पृथ्वी

मानविय—एकलम आर एनए ७ एएए नालिकर नालिरी से

## अध्याय ८

# रोम की प्राचीन सभ्यता

प्राचीन सभ्यताओं के काल क्रम में रोम सबसे अंतमें आता है, क्योंकि सुमेर, मिस्र आदि की सभ्यताएँ लगभग ३४ हजार वर्ष की पुरानी हो चुकी थीं, तब रोम की सभ्यता का आरम्भ हो रहा था, किन्तु यूरोप के इतिहासकार रोम की सभ्यता तथा उसके इतिहास की गणना पुरानी सभ्यता तथा पुराने इतिहास में करते हैं, कारण कि यूरोप में यूनान तथा रोम दो ही ऐसे देश हैं जिनकी सभ्यता अपेक्षाकृत पुरानी है शेष। देशों ने इन्हीं देशों से सभ्यता का पाठ पढ़ा। रोम का महत्त्व इस कारण भी है कि यूरोपीय महाद्वीप की सभ्यता पर यूनान से भी अधिक प्रभाव रोम का है। रोम के ही राजनियमों (कानून) के आधार पर यूरोपीय देशों के राजनियम बने और बाद में रोम के ही गिरजे ने—धर्म ने—सभ्यता यूरोप को एकता के सूत्रमें बाँधा। यूरोप के प्रायः प्रत्येक देश की शासक नवदत्त में रोम की सीनेट (परामर्श समिति) की भूँक मिलनी है।

रोम के इतिहास की एक विशेषता यह है कि यह किसी एक बड़े देश का इतिहास नहीं है बल्कि एक ऐसे नगर का इतिहास है जो धीरे-धीरे बढ़कर इतना शक्तिशाली हो गया कि उसने अपने को समस्त इटली प्रायद्वीप का ही नहीं बल्कि समस्त भूमध्यसागर के प्रायः के देशों का तथा यूरोप के एक बड़े भाग का अधिपति बना लिया। रोम नगर एक बड़े साम्राज्य में परिवर्तित हो गया और यह साम्राज्य कई शताब्दियों तक चलता रहा।

रोम का इतिहास हजार आठ सौ ६० पूर्व तक पहुँचता है। उस समय उत्तर इटली में जो जातियाँ बसी हुई थीं वे पेल्ट जाति के लोगों से मिलती जुलती थीं तथा प्रायः उत्तरी इटली में Po नदी की घाटी में बसी हुई थीं। इसमें पूर्व में एड्रियाटिक सागर से कुछ जातियाँ आकर थीं जिनका सम्बन्ध तीन भाग किया जाते हैं। पहिले इटालिका या इटली के लोग आये ताँ दक्षिणी प्रायद्वीप में बस गये। इनमें अभिन्नता, सेमिताइक तथा एट्रिन आदि जातियाँ थीं। फिर एस्कुर जाति के लोग आये जो एशिया माइनर से आये सम्बन्ध करते हैं। कुछ लोगों का अनुमान है कि ये लोग १००० ई० पूर्व के सम्बन्ध रोम में आये हैं। ये लोग अधिपति कृषक तथा व्यापारी थे और यद्यपि ये लोग समुद्र में नौतानियों का व्यवसाय, किन्तु इन्हीं नौतानियों की निधि अर्जतली थी। इन से गोदा कुछ समय तक इटली पर अपना प्रभुत्व रहा। इनका सम्बन्ध जातियों का लोग आये जिन्होंने

दक्षिणी इटली में अपने वृद्ध से उपनिवेश प्रसा लिये, यहां तक कि दक्षिणी इटली का नाम ही 'वृद्धतर यूनान' पड़ गया। ये लोग अपने साथ ऐसी सभ्यता लाये थे जो उस समय इटली में बसे हुए लोगों की सभ्यतासे कहीं ऊँची थी। यूनानी इतिहासकारों ने तो अपनी इस ऊँची सभ्यता के गम में इटली में बसे हुए इटालियन जाति के लोगों को 'बनर आदिवासी' कहा है।

इटालियनों की लैटिन जाति इटली प्रायद्वीप के दक्षिण में टाइबर नदी के मुहाने के पास रोमी का नाम करती थी। यहीं पर सात छोटी-छोटी पहाड़ियों के बीच में एक नगर की उत्पत्ति हुई जो 'रोम' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

रोमके लोग जब कुछ दिनों बाद शक्तिशाली हुए तो उन्होंने प्रचलित किम्बदन्तियों के आधार पर अपनी उत्पत्ति के विषय में एक कथा बनाली। प्रायः प्रत्येक देश में अपने आदि पुरुषों का सम्बन्ध देवताओं से जोड़ने की प्रथा देखी जाती है—संभवतः इस कारण कि अपनी जाति तथा अपने पूर्वजों के प्रति लोगों में आदर भावना रहे। इसी कारण रोमस और रोमुलस नाम के इन दो व्यक्तियों को, जो रोम नगरके संस्थापक माने जाते हैं, ट्रीजन युद्ध के प्रसिद्ध वीर एनियस का वंशज बताया गया और यह एनियास देवता जुपिटर तथा देवी हेल्न का पुत्र बताया गया। ट्रीजन युद्ध के पश्चात् एनियास नाम का यादवा घूमते-घूमते इटली में आ पहुँचा था। इस कारण इसका नाम रोम नगर के संस्थापकों से जोड़ दिया गया।

रोम के संस्थापकों की उत्पत्ति-कथा संक्षेप में इस प्रकार है। वीर एनियास ने इटली में पहुँचकर अल्बा नगर में एक राजपुत्र की स्थापना की। इसी वंश में नुमिटर नाम का एक राजा हुआ। इसके छोटे भाई एमुलियस ने उसे गद्दी से उतार दिया। फिर उसने नुमिटर के पुत्र को मरवा डाला और पुत्री सिल्विया को एक मंदिर में बंद कर दिया। यहीं पर सिल्विया ने दो बच्चे एक साथ हुए जिनका पिता युद्ध का देवता मार्स था। गद्दी पर बरतदारी अधिकार करने वाले एमुलियस ने जब सिल्विया के बच्चे पैदा होने का समाचार सुना तो उगने तुरंत सिल्विया और उसके दोनों बच्चों को टाइबर नदी में फेंकना किया जो उस समय बड़ से भरपूर थी। सिल्विया तो नदी में उतरकर मर गई, किन्तु दोनों बच्चे त्रिगी प्रहार बच गए और किनारे पर आ लगे। वंश कुछ समय तक मादा मेढ़िका उतकी देखभाल करती रही। फिर जगत् में घूमते हुए एक गधरिये ने इन्हें देखा और वह उन्हें उठाकर अपने घर ले गया। गधरिये की पत्नी ने इनके नाम रोमस और रोमुलस रखे। ये बच्चे बड़े वीर और साहसी हुए। बड़े होने पर उन्होंने अपनी माता के चरण एमुलियस को मार डाले और अपने ताना नुमिटर को फिर गद्दी पर बिठाया। फिर इन दोनों भाइयों ने टाइबर नदी के पास ही छद्म पर धेड़ने हुए आकर किनारे लगे थे—सात पहाड़ियों के बीच में जिनके नाम पेंटाइन, अमर्टाइन, वेपिगे-

लाइन आदि हैं—एक स्वतंत्र नगर बनाया जो रोमुल्स के नाम पर रोम कहलाया। रोमस इससे पूर्व ही आपसी युद्ध में मारा जा चुका था। एक अन्य कथा के अनुसार नगर का नाम रोम समोन नदी के कारण पड़ा जो टाइबर का ही पुराना नाम था। अनुमानत रोम की स्थापना ७५३ ई० पू० में हुई थी।

### इतिहास—

सन् ७५३ ई० पू० से ही रोम के इतिहास का पता चलता है। पहला राजा रोमुल्स ही था। उसने अपने आस पास बसने वाले लैटिन जाति के लोगों को पराजित किया और कई छोटे छोटे ग्रामों को रोम की सीमा में सम्मिलित कर लिया। उसने ७१६ ई० पू० तक राज्य किया तथा रोम को एक अच्छा नगर बना दिया।

रोमुल्स की मृत्यु के एक वर्ष बाद दूसरा राजा चुना गया जिसका नाम नुमा पेंगुलियस था। यह सब प्रकार के कानूनों का पटित था परन्तु स्वार्थहीन होने के कारण एकान्त जीवन व्यतीत करता था। लोगों के बहुत आग्रह करने पर ही उसने राज बनना स्वीकार किया। राजा बनने पर उसने प्रत्येक मनुष्य को अपनी अपनी भूमि की सीमा बाधने का आदेश दिया। यह सीमा पवित्र किये हुए पत्थरों में बनाई जाती थी। इसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी भूमि को सुरक्षित समझने लगा। नुमा का राज्य पानी लग्ना और शान्तिपूर्ण रहा। जब उसकी मृत्यु हुई तो लोगों ने बड़ा विलाप किया।

इसके बाद भी राजाओं का चुनाव इसी प्रकार होता रहा और बीच बीच में सीनेट अर्थात् राजा की परामर्श समिति शासन काय करती रही। नुमा के पचात् ५ राजा और हुए जिन्होंने लगभग २०० वर्ष अर्थात् ५१० ई० पू० तक राज्य किया। इनके समय में रोम की सातों पहाड़ियों के चारों ओर एक बड़ी दीवार बनवाई गई जो कई शताब्दियों तक रोम नगर की सीमा का काम देती रही। इसी समय तक रोम की आबादी भी बढ़ते-बढ़ते ८० हजार के लगभग हो गई थी।

इन राजाओं के समय में रोम में एक प्रकार से नियमित शासन प्रथा का आरम्भ हो गया था। राजा की सहायता के लिए एक परामर्श समिति होती थी जो 'सीनेट' कहलाती थी। इसमें नगर के पुत्र हुए बड़े बड़े मनुष्य रहते थे जिसकी संख्या १०० होती थी। इस सीनेट की स्थापना उपर्युक्त राजा रोमुल्स ने ही शासन प्रथम में अपना सहायता के लिये की थी। - २ में जब सेनाएँ नावों की एक और जाति लोग में विभाजित की गई थीनेट की संख्या २०० कर दी गई और कुछ मनुष्य का ३०० तक बढ़ा दी - । इनमें १२ व अधिरिक्त नागरिकों की एक बड़ी संख्या भी रोम में होती थी। इसे 'कॉन्सिलियम कूरिआटो' (बड़ी नागरिक संख्या) कहते थे। इसमें रोम नगर के सभी नागरिक भाग लेते थे तथा नगर के महत्त्व विचारों का अन्तिम निष्पत्ती का प्रयोग करते थे।

था। ये दोनों सभायें ही यूरोप में जन तन्त्रात्मक शासन प्रणाली के आधार हैं तथा इहीं का प्रचार अन्य देशों में हुआ।

### जनतन्त्र की स्थापना—

रोमना सातवाँ राजा लुसियस मुपवस था। वह बड़ा क्रूर और अत्याचारी था। अतः रोम के नागरिकों ने अप्रसन्न होकर उसे गद्दी से उतार दिया और साथ ही भविष्य में किसी को भी राजा न बनाने का निश्चय किया।

इस प्रकार ५१० ई०पू० में रोम में जनतन्त्र की स्थापना हो गई। यह जनतन्त्र कई सौ वर्ष तक (लगभग ५०० वर्ष तक) चलता रहा। अतः एक राजा की जगह दो अधिकारी चुने जाने लगे, जिससे सत्ता एक व्यक्ति के हाथ में न रहे। ये लोग मन्ट्रिस्ट्रेट अथवा 'कौंसल' कहलाते थे। पहले-पहल चुने जाने वाले दो कौंसिलों में एक का नाम ब्रूटस था। इसने राजा को हटाने में प्रमुख भाग लिया था और उसे रोम छोड़कर भागने के लिये विवश किया था। ये कौंसल केवल एक वर्ष के लिये चुने जाते थे। एक साल के पदचात उन्हें अपने पद से अलग हो जाना पड़ता था, परन्तु उस अवधि में वे पूरा अधिकार सम्पन्न होते थे। उनकी सहायता के लिये परामश समिति भी रहती थी। ये समस्त नियम एक साथ दो कौंसल रखना, उनका कार्य काल एक वर्ष रखना तथा उनकी सहायता के लिये परामश समिति रखना इसीलिये बनाये गये थे जिससे शक्तिका विभाजन रहे तथा किसी एक व्यक्ति को निरकुश बनने का अवसर न मिल सके। फिर भी आगे चलकर ऐसे कई अवसर आये—जैसा कि आगे के विवरण से स्पष्ट होगा जब इन कौंसिलों ने एक घबरावट भरी घटना पद छोड़ने से इंकार कर दिया तथा सत्ता अपने ही हाथ में रखी। एक बार तो एक कौंसल लगातार ४-५ वर्ष तक अपने पद पर बना रहा। ये कौंसल लोग परामश-समिति के अध्यक्ष भी होते थे तथा न्याय भी करते थे। युद्ध के समय प्रायः उनको सेनापति भी बना दिया जाता था। इसी प्रकार युद्ध जैसे विदेशी अन्तर्गत पर जन शक्ति निर्णय की आवश्यकता होती थी तो सीनेट किसी एक पत्रान और योग्य व्यक्ति को डिक्टेटर अर्थात् सर्वाधिकारी नियत कर देती थी। ऐसे ही अन्तर्गत पर उन्हें निरकुश बन जाने का अवसर मिल जाता था, क्योंकि सेना और सत्ता उन्हीं के हाथ में रहती थी। कौंसलों का चुनाव प्रायः उच्च घरानों के लोगों में ही होता था, साधारण श्रेणीका कोई व्यक्ति कौंसल नहीं बन सकता था। आगे चलकर इसी प्रश्न को लेकर संपन्न सदा हुआ और तब साधारण श्रेणी के लोग भी कौंसल बनाये जाने लगे।

कौंसलों तथा सीनेट के ऊपर नई नागरिक सभा समझी जाती थी जिसे सर्वाधिकार प्राप्त थे। यदि कोई नागरिक कौंसलों के निर्णय से असन्तुष्ट होता तो वह

अपने मामले की असील इस बड़ी सभा में कर सकता था। किन्तु इस बड़ी सभा को सर्वापरि अधिहार थोड़े ही दिन तक प्राप्त रह सके—कुछ दिन बाद परामर्श समिति अथवा सीनेट ने अधिक शक्ति प्राप्त कर ली तथा बड़ी सभा अथवा 'कमिटिया' के अधिकार कम कर दिये गये। अन्त में साम्राज्य का उद्भव हुआ और जनतंत्र समाप्त हो गया। इन समस्त भ्रमों में लगभग ५०० वर्ष लगे।

जिस समय जनतंत्र की स्थापना हुई और ब्रूटस एक कौंसल था, उस समय यहि पृथक् राजा लूसियस सुपरबस ने आसपास के कुछ राजाओं से मिलकर एक बड़ी सेना तैयार कर ली और रोम पर आक्रमण कर दिया। उसकी सेना रोम में प्रवेश करने के लिये टाइबर नदी के उस पार तक आ पहुँची थी और रोम में भारी घबड़ाहट फैल रही थी। परन्तु तभी हारेस नामक एक वीर ने नदी के पुल के अगले द्वार पर खड़े होकर उड़ी देर तक शत्रु सेना को रोक रखा और इसी बीच में रोम के निवासियों ने नदी का पुल तोड़ डाला और इस प्रकार शत्रुओं से रोम की रक्षा हो गई। हारेस की यह देशभक्ति तथा वीरता रोम के इतिहास में प्रसिद्ध है।

इसी समय की देशभक्ति तथा शायदशक्ति का एक और उदाहरण उल्लेखनीय है। राजा सुपरबस के उस पक्षपात में रोम के भी बहुत से लोग—जो कौंसलों के व्यवहार से असन्तुष्ट थे—सम्मिलित हो गये। यह सामन्त लोग भी जो जनतंत्र के सिद्धांतन विरोधी थे उससे साय हो गये थे। ये लोग राजा सुपरबस को ही फिर गद्दी पर बिठाना चाहते थे। परन्तु यह पक्षपात निम्न हो गया और बहुत से पक्षपातकारी रोम में ही निरन्तर कर लिये गये। जब इन लोगों को शाय के लिये कौंसल ब्रूटस के सामने उपस्थित किया गया तो उसने बड़े आदर से देखा कि उसके ही दा पुत्र भी पक्षपातकारियों में शामिल हैं, परन्तु यह शाय के पक्ष से विचलित न हुआ तथा अपने कर्तव्य की ओर अधिक ध्यान देकर उसने अपने पक्षपातकारियों के साथ अपने दोनों पुत्रों को भी मृत्यु दण्ड सुना दिया। उसने सांगे ही उसके दोनों पुत्रों का भी पक्ष किया गया। ऐसा ही पक्षपात रहित तथा देशभक्ति पूरा कार्यों के कारण रोम के लोग बहुत समय तक अपने जनतंत्र की रक्षा कर सके तथा उन्नति करने गये। ये लोग अपने कर्तव्य, शाय तथा देशभक्ति को ही सर्वोपरि समझ देते थे।

#### यम संघर्ष—

यद्यपि रोम के लोग एक साथ रहते, एक साथ मुझों में भाग ली तथा एक साथ बड़ी सभा की बैठकों में बैठते थे, फिर भी उनही अलग दो दुर्ग भेदों में भिन्न भिन्न थी। पहली भेदों में वे लोग थे जो धारण से अलग राजाओं के साथ के उच्च अधिकारियों के पक्ष में थे। दूसरे अलग पक्ष पर तो था या और दूसरों को पक्ष भागने से

छोटा समझते थे। इन्हें कुछ विशेषाधिकार भी प्राप्त थे। वे 'पेट्रिशियन' अथवा साम त कहलाते थे।

शैप निवासी जो साधारण स्थिति के थे 'प्लेबियन' कहलाते थे। उन्हें कौंसलों के चुनाव में मत देने का तो अधिकार था, परन्तु वे लोग कौंसल पद के लिये उम्मेदवार के रूपमें लड़े न हो सकते थे। उनके साथ कुछ अन्य बातों में भी भेदभाव का अर्थात् किया जाता था। उनके लिये ऋण के नियम भिन्न थे जो अधिक कठोर थे। यदि वे लोग नियत समय पर ऋण न चुका पाते तो उन्हें ऋणदाता का दास बनना पड़ता था। सुद्धों में जीती हुई भूमि में भी उनका कोई भाग न रहता है वह केवल पेट्रिशियन लोगों में ही बांट दी जाती थी। किन्तु सुद्धमें मुख्य भाग इन साधारण श्रेणी के लोगों को ही लेना पड़ता था। पेट्रिशियन लोग इन साधारण श्रेणीके लोगों से विवाहादि सम्बन्ध भी न करते थे। इस प्रकार इन साधारण लोगों की एक अलग ही जाति बन गई थी।

इन विपमताओं के कारण प्लेबियन अथवा साधारण श्रेणी के लोग बड़े दुःखी थे। बहुत दिनों तक तो वे इन भेदभावोंको सहन करते रहे, परन्तु अन्त में उनका धैर्य समाप्त हो गया तथा वे उन बातों का विरोध करने लगे। उन्होंने भिन्नताओं को दूर करने के लिये अधिकारियों से प्रार्थना की परन्तु कोई सुनवाई न हुई। अन्त में ये लोग रोम को छोड़कर बाहर चले गये और एक अलग पहाड़ी पर जाकर बस गये (४६४ ई० पू०)। अत्र एक कठिन समस्या उत्पन्न हो गई। रोम नगर जन साधारण के बिना नहीं रह सकता था। सुद्ध आदि का अन्तर आ पड़ने पर रईस लोग लड़ने के लिये नहीं जा सकते थे। अन्ध अन्ध प्रकार के काय भी साधारण लोगों के बिना चलना कठिन था। अन्त सीनेट ने अपने दो सभासदों को प्लेबियनों के पास भेजा कि वे उन्हें मनाकर रोम में वापस लावें। इसका फलस्वरूप दोनों दलों में एक समझौता हो गया। समझौते की एक शर्त यह थी कि साधारण लोगों के लिये उन्हीं के वर्ग के मजिस्ट्रेट अलग नियुक्त किये जावेंगे। इस प्रकार बनाय गये मजिस्ट्रेट 'ट्रिब्यून' कहलाने लगे।

पेट्रिशियन अथवा विशेषाधिकार प्राप्त लोगों पर साधारण वर्ग के लोगों की यह विजय रोम के इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है। इससे उन्हें आगे लड़ने का रास्ता खुल गया और लड़ाई में उन्हें विजय मिलती गई। कुछ दिनों बाद ट्रिब्यूनों की संख्या बढ़ाकर दस कर दी गई और उनके अधिकारों में भी वृद्धि होती गई यद्यपि उनके निगम केवल साधारण श्रेणी के लोगों के लिये ही होते थे। राम में एक प्रकार से अब द्वेष शासन आरम्भ हो गया था और वह द्वेष शासन जातव्य के अन्तिम समय तक चली रहा, आगे चलकर सम्राट भी इस साधारण श्रेणी में से ही बने।

कुछ समय पश्चात् प्लेबो ने फिर अलग होने की धमकी दी और उन्हें फिर विजय प्राप्त हुई। अब ट्रिब्यूनों के निगम की मानना सब लोगों के लिये आवश्यक हो गया।

इस प्रकार दोनों दलों में समानता आती गई। फिर एक टिबून के प्रस्ताव पर दोनों वर्गों में विवाद होना भी उचित मान लिया गया। अंत में लोगों ने एक अन्तिम और सबसे बड़ी असमानता—कौन्सिल चुने जाने का अधिकार न होना—भी दूर करने का प्रयत्न किया। इस पर निश्चय हुआ कि नौ कौन्सिलों के स्थान पर एक ऐसा 'टिबूनल' स्थापित किया जाय जिसके तीन सदस्य हों और ये सदस्य दोनों वर्गों में से हो सकते हैं। इस प्रकार ३०० ई० पू० तक रोम के नौ दलों में बिना रक्तपात के ही बहुत कुछ समानता स्थापित हो गई जिससे रोम सुन्दर तथा समृद्ध बना। इतिहास में ऐसे महत्वपूर्ण परिवर्तन इतनी शान्ति से बहुत कम हुए हैं।

### रोम की प्रजासत्ता—

रोमन लोगों द्वारा आपसी मतभेद दूर करके सुव्यवस्था होने का एक परिणाम यह हुआ कि आसपास की जातियों पर वे सहज ही प्रभुत्व प्राप्त कर सके। इन दिनों रोम में सबसे बलवान जाति एस्कियों की थी जो न तो रोम के उत्तर में और समुद्र के किनारे की नदी के किनारे पर नहीं हुई थी। इस जाति के लोग धन, कृषि-कौशल और अनेक बातों में रोमियों से भी जागे बढ़ हुए थे और व्यापार में भी कुशल थे। किन्तु बड़े ठाण्डे छांटने रियासतों के बंट जाने के कारण वे रोम वालों का दमने में असमर्थ रहे थे। युद्ध में भी वे रोम वालों से हार गये और इस प्रकार रोमियों ने एस्कियों तथा लोगों पर प्रधानता प्राप्त कर ली। रोम आगे पश्चिम की लैटिन रियासतों का मित्र था और उन्हीं की सहायता से वह एस्कियों तथा अन्य जातियों का हरा गया। रोम वालों ने लैटिन जाति के ही वे और उन्हीं प्रधान समझे जाते थे। समताहीन जाति के लोगों से यद्यपि रोम वाले बड़े धार हारे भी परन्तु ५० वर्ष की लम्बी लड़ाई के बाद अंत में उनकी विजय हुई। इसके बाद गाल लोग भी जो आल्प्स पर्वत के दक्षिण में रहते थे तथा बड़े धार रोमियों पर हमले करके उन्हें भारी क्षति पहुँचा चुके थे रोमियों द्वारा हरा दिये गये। इस प्रकार ३०० ई० पू० के लगभग समस्त इटली में रोम का ही प्राधेय हो गया। तबला तक का समस्त इटाली उनके ही अधिकार में आ गया था। आस-पास के बहुत से उपनिवेश भी उनके ही हो गये थे।

### रोम और यूनान का सम्पर्क—

आस-पास की जातियों पर प्रभुत्व प्राप्त कर लेने के पश्चात् रोम वालों का सम्पर्क यूनानियों से हुआ। जब रोम वालों ने सैनिकों को हथकर अथवा शान्तिपूर्ण विधि उभय पक्षों तक विस्तार के सम्बन्ध का पत्र हो चुका था और उससे सैनिकों ने मित्र शिल्पियों पर अधिकार कर लिया था। इस समय तक यूनानियों के युवा बालक हुए अनेकों उपनिवेशों और शिवालयों—जिन्हें स्तूप, मन्दिर, देवदाल आदि पर रोमियों



ने अपना अधिकार कर लिया था। यूनानी गियासतें अभी तक दूरा समस्त घटनाओं को चुपचाप देखती रही थीं, परन्तु अब रोम की दिन दिन वृद्धि देखकर उन्हें भय हो रहा था। सगर का अरसर भी शीघ्र ही आगया। २८२ ई० पू० में रोम की सेनाओं ने टेरेंटस नाम की एक यूनानी गियासत में सधि की शर्तों के विरुद्ध प्रवेश किया। इस पर टेरेंटस ने एक दृमरी यूनानी गियासत एविरस से सहायता मागी। एविरस का राजा इस पर एक बड़ी सेना लेकर इटली की ओर चला। रोमनों ने भी अच्छी तैयारियाँ की और यूनानी सेनाओं पर आक्रमण किया। किन्तु यूनानी लोग एक प्रकार का व्यूह बनाकर लड़ते थे जिसे फेलेस कहते थे। रोमन सेनाओं ने सात बार यूनानी सेनाओं पर आक्रमण किया परन्तु हर बार उन्हें विफलता के साथ पीठे लौटना पड़ा। अन्त में यूनानी सेना के हाथियों ने—जिन्हें रोमनों ने अब तक न देखा था और जिन्हें युद्ध में देखकर वे बहुत डर गये थे, आगे बढ़कर थकी हुई रोमन सेनाओं को कुचल दिया। सात हजार रोमन सैनिक मारे गये और दो हजार बंदी बना लिये गये। यूनान के केवल दो हजार सैनिक मरे। सधि की बातचीत हुई पर सधि न हो सकी। तीन वर्ष बाद फिर लड़ाई शुरू हुई। इस समय में रोम वालों ने अपनी सेना सुगठित करली थी। अब उन्होंने यूनानियों को हरा दिया। उनकी शक्तियों पर फिर रोम वालों का अधिकार हो गया।

इन युद्धों के साथ ही रोम के प्राचीन सदाचार मय धार्मिक और सच्चे जीवन का अन्त होता है। यह युग रोम के इतिहास में 'सुनहरा युग' कहलाता है। इस समय तक उनका रहन सहन मिल्खुल सादा था, उनमें छल-कपट का भाव न था, उनमें वीरता और देशभक्ति थी, बर्न अपालन के लिये माता, बंधु, पिता-पुत्र, सबका मोह त्याग देने की भावना थी। कई रोमन कौशल युद्ध में सत्रसे आगे रह कर देश के लिये बलिदान हो गये। लड़ाई में भी रोम के लोग अभी तक नीति और सच्चाई से काम लेते थे। परन्तु आगे उनके इन गुणों का लोप होता गया और उनके दम में परिवर्तन होता गया।

### रोम और कारथेज—

यूनान से झगड़ा निवटने के बाद रोम वालों का सामना एक दूरे प्रचल शत्रु से हुआ—यह था कारथेज। यह विनिशियन जाति के लोगों का बसाया हुआ एक उपनिवेश था जो रोम से लगभग १०० वर्ष पूर्व उत्तरी अफ्रीका के तट पर बसाया गया था। शीघ्र ही अपना व्यापार क्षेत्र बढ़ाकर यह दमन व तथा समृद्ध हो गया। समस्त उत्तरी अफ्रीका, स्पेन का आधा दक्षिणी भाग, कार्थेजिया, सार्डिनिया तथा सिसिली के बहुत से भागों पर उसने अपना अधिकार भी कर लिया था। उसकी व्यापारिक बलियाँ समस्त भूमध्यसागर में फैली हुई थीं जिनका केन्द्र माल्टा था।

विनिशियन लोगों का मुख्य ध्येय तथा धंधा व्यापार-व्यवसाय था। राजनीतिक बातों से वे विशेष सम्यक न रहते थे। कारथेज के लोग भी अपने व्यापार की वृद्धि की ओर

ही अधिक ध्यान देते थे। वहा का शासन-प्रणय भी भुरपन व्यापारियों के ही हाथ में था। अतः यद्यपि बेलोग रोम की बढ़ती हुई शक्ति से सशक थे फिर भी समय बहुत दिनों तक टन्ता रहा।

किन्तु अत्र कारथेज और रोम दोनों में भूमधनवागर पर आधिपत्य स्थापित करनेकी प्रतिद्वन्दिता आरम्भ हो गई थी। दोनों ही अरने अस्तित्व के लिये उसे आवश्यक समझते थे। अतः समय अधिक दिन तरुन टलसकता था। दोनों में युद्ध का अवसर शीघ्र ही आ गया।

इटली और सिसली के बीच में स्थित मेसिना नामक एक छोटे शहरके प्रान्तको लेकर रोम और कारथेज में संघर्ष आरम्भ हो गया। दोनों ने अपनी अपनी सेनायें वहा भेजीं (२६४ ई०पू०) और लड़ाई शुरू हो गई। तब तीन मास तक यह लड़ाई चलती रही परन्तु हार जीत किसी की न हुई। परन्तु इस युद्ध में रोम वालों का यह अनुमान हो गया कि कारथेज वालों को हारने के लिये एक अच्छे समुद्री वेड़े की आवश्यकता है, क्योंकि कारथेज वालों की अच्छी शक्ति उनका जहाजी वेड़ा था। अतः रोम वालों ने शीघ्र ही एक अच्छा जहाजी वेड़ा तैयार कर लिया और एक युद्ध में कारथेज वालों का हरा भी दिया।

परन्तु युद्ध चलता रहा। इस समय कारथेज वालों का एक याग्य सेनापति मित गया—वह था हेमिलकार। उसने अपनी सेनाओं का मुटुद सगठन पर २५६ ई० पू० में रोम की सेनाओं को पूर्णतया पराजित कर दिया और रामन कौसल रेगुलस को जो रोम की सेनाओं का सेनापति भी था—गिरफ्तार कर लिया। वेकड़ों रामनों को उसने अपने देवता पर बलि चढ़ाया। इससे रोम वालों को बड़ी निराशा हुई फिर भी उन्होंने धैर्य रखा और अपनी सेना पुनः सगठित की और पाच वर्ष बाद फिर कारथेज पर आक्रमण किया। रोमने कारथेजी सेना को हराकर उसके १०० हाथी छीन लिये परन्तु कारथेज ने हार न मानी। रोम की सेनाओं ने अत्र कारथेज पर घेरा डाल दिया जो दस वर्ष तक चला रहा। परन्तु कोई फल न निकला, क्योंकि कभी रोम की सेनायें हारती कभी कारथेज की। अतः रोम के नागरिकों ने रोम से मारते शरणा में सेना में भर्ती होकर युद्ध के लिये प्रस्थान कर दिया। वे अपने देशकी रक्षा के लिये जो जान सलदाने का विरिचय किये हुए थे। इन लोगों के प्रवेश करने के कारण अत्र में कारथेजी सेना पराजित हुई (२४० ई० पू०) और उसे शर्ष करनी पड़ी। उ होने गिमली को लाली करना और युद्ध का हरबाता देना शर्षकार किया। इस प्रकार २२ वर्ष बाद रोम और कारथेज का युद्ध समाप्त हुआ। ये युद्ध 'पूजिक युद्ध' कहलाने हैं। यह प्रथम प्जिक युद्ध था।

२१८ ई० पू० तक स्थिति थी। इस समय में रोम ने आन्ध्र प्रदेश तक अपना विस्तार बढ़ा दिया था और प्रायः व मुठ भान पर भी उनका अधिकार हो गया था।

अब उ'होंने सिसली के पास के दूसरे टापू सार्डीनिया पर भी अधिकार करना चाहा । इस पर फिर झगड़ा शुरू हो गया । सार्डीनियों में कारथेज वालों की आबादी काफी थी । उ'होंने रोमन सेनाओं के विरुद्ध विद्रोह कर दिया । रोम ने विद्रोह सेना के बल पर दबाया और सैनिकों 'कारथेजियों' को पकड़कर दास बना लिया । इस पर कारथेज ने अपनी सेनाएँ बढ़ा भेजीं । इस बार उनका सेनापति हेमिलकार का वीर पुत्र हेनिवाल था ।

हेनिवाल एक वीर और कुशल सेनापति था । उसने यह ज्ञान लिया कि अब रोम वालों से समुद्र में लड़ना ठीक न होगा, क्योंकि उ'होंने अपना जहाजी वेड़ा मजबूत कर लिया था । अतः उसने रोम पर एक टेढ़े माग से आक्रमण करने की योजना बनाई । यह एक बड़ी सेना लेकर पहले स्पन पहुँचा फिर वहाँ से पगेनीज नामक पवन श्रेणी, रोम नामक तीव्र नदी और आल्स सरीयों के दुर्मेय पर्वत को भी पार कर इटली की सीमा पर आ पहुँचा । माग की कठिनाइयों को पार करने में उसकी भारी क्षति हुई, हजारों सैनिक माग में ही मर गये, फिर भी उसकी यह कठिन यात्रा सैनिक दृष्टि से बड़ी महत्वपूर्ण समझी जाती है ।

हेनिवाल के इटली तक आ पहुँचने की खबर सुनकर रोम में भारी घबराहट फैल गई । फिर भी उ'होंने धैर्य से काम लिया और हेनिवाल को गकने के लिये एक बड़ी सेना उधर भेजी । इस प्रकार दूसरा प्यूनिक युद्ध शुरू हो गया जो एक एक कर २१८ ई० पू० २०१ ई० पू० तक चलता रहा ।

रोम ने हेनिवाल के मुकामिले के लिये जो सेना भेजी वह हेनिवाल की सेना से ५६ गुनी बड़ी थी । रोम का उस समय का कौंसिल सिपियो इस बड़ी सेना का सेनापति बनाया गया । कारथेजी सैनिक त्रिना पूरे सार्व सामान के बिना चीन और त्रिना लगाम के घोड़ों पर लड़ रहे थे । फिर भी उ'होंने रामनों के बीचमें घुसकर उन्हें तितर-बितर कर दिया । कौंसिल सिपियो भी बुरी तरह घायल हुआ और मरते मरते बचा । रोम की भारी हानि हुई और इटली का समस्त उत्तरी भाग हेनिवाल ने अधिकार में चला गया ।

रोम वालों ने फिर नई सेनाएँ तैयार करके भेजीं, फिर घोर युद्ध हुआ । युद्ध रुकने पर रोम वालों ने देखा कि उनके १५ हजार सैनिक समर-भूमि में पड़े हैं । इससे रोम में भारी शोक छा गया । हेनिवाल अब रोम से केवल ८० मील दूर रह गया था । अतः रोम में भारी घबराहट भी फैली हुई थी ।

परन्तु इसी समय युद्ध का प्रथम अप्रत्याशित रूप से बदल गया । हेनिवाल ने रोम की ओर आगे बढ़ने का इरादा बदलकर इटली के लोगों को अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न आरम्भ किया । इसी बीच रोम ने फिर हेनिवाल से दो गुनी सेना युद्ध में भेज दी परन्तु

यह सेना भी सुरी तरह पराजित हुई और उनके ५० हजार सैनिक मारे गये। रोम में हाहाकार मच गया, फिर भी रोम वालों ने हिम्मत न हारी। उन्होंने फिर नई सेना तैयार की। इधर इतने युद्धों के बाद हेनिवाल की शक्ति कमजोर जाती चली गयी। उसका भाई नई सेना लेकर स्पेन के मार्ग में ही हेनिवाल की सहायता के लिये आ रहा था, परन्तु रोम वालों ने उधर भी एक बड़ी सेना भेजकर उसका मार्ग रोक दिया। फिर रोम वालों ने कई युक्तियों से उसे हरा दिया और उसका सिर काटकर हेनिवाल के पहाव में फेंकवा दिया। उसे देखकर हेनिवाल गोक में डूब गया। उसे अब दिग्गामी देने लगा कि उसका भाग्य सूर्य अब अन्नाचल की ओर आ रहा है।

इसी समय रोम ने एक और नयी युक्ति की। उसने हेनिवाल का सीधा मुकाबिला न करके एक बड़ी सेना कारथेज पर अधिकार करने के लिये भेज दी। यह सेना पूरा सेनापति सिपियो के पुत्र के नेतृत्व में थी। इसका नाम भी सिपियो ही था। इस सेना को सहज में ही सफलता मिलनी गई, क्योंकि कारथेज की बहुत बड़ी सेना हेनिवाल के साथ होने के कारण कारथेज में बहुत कम सेना थी। कारथेज वालों ने अब हेनिवाल को बचस मुलाया और उस पर लौटकर अपने देश की ओर आना पड़ा। उस इटली छोड़ते देगजर समस्त इटली में तथा विगेजर रोम में भारी हर्ष मनाता गया।

आगे की कथा सधर में बंदी जा सकती है। २०२ ई० पू० में हेनिवाल कारथेजमें पहुँच गया और वहाँ सिपियो ( कनिष्ठ ) की सेना से उसका मुकाबिला हुआ। मरकर युद्ध हुआ पर अन्त में हेनिवाल हार गया और उसे युद्ध से भागना पड़ा। कारथेज को शक्ति की प्रायश्चात करनी पड़ी। शक्ति की शर्तें बड़ी कठोर थीं। कारथेज को अपना सारा सशस्त्री बेटा रोम को सौंप देना पड़ा और उन बेटों का सबसे सामने ही अग्नि में भस्म कर दिया गया। इतने कारथेज की शक्ति सग के लिये नाश होगी। हेनिवाल एक दूसरे देशमें चला गया और कुछ वर्ष बाद उसने विजय की कीर्ति आशा न देगजर स्थानि से मानहत्या करली। इस प्रकार दूसरा मूलिक युद्ध राम की विजय तथा हेनिवाल के सेनापति की पराजय के साथ समाप्त हुआ।

परन्तु रोम को इतने से ही सन्तुष्ट न हुए। वे कारथेज के मरने का अब नाम निश्चय ही मिटा देना चाहते थे। दूसरी सन्तुष्टि १०० पू० के मध्य में राम ने एक बहादा विजय कर अपनी सेना फिर कारथेज में भेज दी। युद्ध न चाहते हुए भी कारथेज को युद्ध करना पड़ा, परन्तु उसकी छाती भी सना हार गई। रोमन सैनिकों ने नगरको घेर कर घटा, मनमानी हथकौड़ी की और अन्त में समस्त नगर में आग लगाकर अपने इस प्रबल प्रतिद्वन्द्वी को सग के लिये नाश कर दिया। कारथेज का नष्ट होना आज भी विस्मय है और इसके बिना सग के गौरव की चार दिशाएँ हैं।

दोषों को भुलाकर शोक के आँसू बहाये, क्योंकि उसने जो कुछ किया था रोम की भलाइ के लिये किया था, अपने किसी किसी स्वार्थ के लिये नहीं।

मुल्य की मूल्य होने पर रोम में फिर अन्यथा पैल गई। कई जगह उपद्रव हुए। लोग मुल्य के समान ही किसी डिक्टेटर की आवश्यकता का अनुभव कर रहे थे। जनतन् तथा सीनेटने शासन को वे असफल मानने लगे थे और इतने बड़े देश के लिये शासन-शक्ति के द्वा-भूत होने की आवश्यकता समझ रहे थे। रोम वालों की दृष्टि किसी ऐसे व्यक्ति पर जा रही थी जो अनुभवी हो और किसी युद्ध का विजेता हो क्योंकि रोम में विजेता को बड़े आदर की दृष्टि से देगा जाता था। सबकी दृष्टि पोम्पी (पोम्पियस) पर गई उसे ही कौंसल चुन लिया गया। उसने भी जनता की आशाओं को पूरा किया। चारों ओर के उपद्रवियों को हराकर उसने राज्य में शांति स्थापित की। इससे खाने पीने की वस्तुएँ जो तेज़ होती जा रही थी सस्ती हो गई और लोग चैन में रहने लगे।

किन्तु रोम में दलचन्दियों का जोर अब भी था। बहुत लोग पोम्पी के भी विरुद्ध थे और उससे विरुद्ध पढ़यन कर रहे थे। इस समय रोम में कई योग्य और प्रसिद्ध व्यक्ति भी थे। सिस्रो नाम का एक प्रसिद्ध वकील था जो रोम का सबसे अच्छा वक्ता समझा जाता था। उसके भाषणों का रोम की जनता पर भारी प्रभाव पड़ता था। पर तु आपसी कलह और दलचन्दियों के कारण उसे देश निकाले का दण्ड मिला।

### जूलियस सीजर—

एक दूसरा व्यक्ति भी इसी समय धीरे धीरे प्रसिद्ध हो रहा था। यह भी बड़ा चतुर और प्रभावशाली वक्ता था। नाम था जूलियस सीजर। ६६ ई० पू० में सीजर कौंसल चुन लिया गया। उसने पोम्पी के बहुत से प्रस्ताव मानकर उनके अनुसार कार्य किया। इसी समय उत्तर के गाल और अन्य लोगों ने रोम पर आक्रमण शुरू कर दिये। उनसे मुकाबिले के लिये कौंसल सीजर को एक बड़ी सेना देकर भेजा गया। सीजर भी यही चाहता था। उसने कई लड़ाइयों में गालों तथा अन्य लोगों को हराया। उसने कई ऐसी विषयों प्राप्त कीं जिनके कारण उसका नाम प्रसिद्ध विश्व विजेताओं में गिना जाता है। तरह-तरह की युक्तियों से उसने शत्रुओं की लाखोंकी सेनाओं को हराया। वह भावीसियों जर्मनों, वेल्जियनों को हराता हुआ ६४ ई० पू० में इङ्ग्लैंड तक पहुँचा और वहाँ के लोगों ने भी उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। इङ्ग्लैंड के इतिहास में सीजरका यह आक्रमण बड़ा महत्वपूर्ण समझा जाता है, क्योंकि उसने इङ्ग्लैंड के लोगों का सम्बन्ध की भी कई बातें खिन्नाई। गाल लोगों ने भी रोम का प्रभुत्व स्वीकार किया और उस पर गर्ज करने परने लगे। उसने इङ्ग्लैंड, फ्रांस आदि सड़कें भी बनवाई और रोमन रीति रिवाज और सम्बन्ध को वहाँ फैलाने सिगार्यी। यहाँ से फ्रांस में तथा यूरोप में रोमन सम्बन्ध का प्रसार और विस्तार हुआ। इसी कारण जूलियस सीजर का बड़ा महत्व है।

बहुत समय तक पाप्पी, सीजर और क्रैसस नाम के एक व्यक्ति में बाँपी मेल रहा परन्तु धीरे धीरे यह मैत्री शिथिल पड़ती गई। पाप्पी और क्रैसस ने सीजर का महत्त्व बढ़ते देख अपने-अपने को पांच वर्ष के लिये स्वन और सीरिया का शासक नियुक्त करा लिया। किन्तु शीघ्र ही क्रैसस एक शत्रु द्वारा मार डाला गया। पाप्पी फिर रोम में ही आकर रहने लगा। वह सीजर की उन्नति देखकर उससे ईर्ष्या करने लगा था। शीघ्र ही पाप्पी और सीजर में भगड़ा आरम्भ हो गया। सीजर ने जब अपनी विजय-यात्रा के पश्चात् रोम में प्रवेश किया तो पाप्पी ने एक सेना लेकर उसे रोकने का प्रयत्न किया (४८ ई० पू०)। किन्तु इस घट्ट मुठमें पाप्पी की हार हुई और उसे रोम छोड़कर भागना पड़ा। सीजर ने समस्त रोम तथा इटली पर शीघ्र ही अधिकार कर लिया। फिर वह पाप्पी का पीछा करता हुआ यूनान तक पहुँचा और वहाँ भी उसे हराया। कुछ समय बाद पाप्पी के ही एक सैनिक अधिकारी ने उसकी हत्या कर दी और उसका सिर सीजर के पास भिन्नवा किया गया। सीजर अपने इस पुराने परम मित्र और हाथ के परम शत्रु का इस प्रकार दुःखद अन्त देकर रो पड़ा।

रोमन प्रजातंत्र का अन्त—

सीजर की अनुपस्थिति में ही रोम की सीनेटने उसे पांच वर्षों के लिये कौंसल नियुक्त कर दिया था और इस प्रकार वह सिधियुक्त भी रोम का सर्वोच्च अधिकारी बन गया। रोम और इटली पर उसका सैनिक अधिकार था ही। जब वह मिन, असीया आदि होता हुआ तथा सब जगह शांति स्थापित करता हुआ रोम की आर पानस लौटा तो सीनेट के सम्मोह उसकी अगुवानी के लिये पहुँचे और उससे प्रकारिके उमि / सीजर को) इस रूप के लिये डिक्टेटर नियुक्त कर दिया गया है, परन्तु सीजर को सीनेट की आज्ञा की आज्ञाकारी न थी। समस्त शक्ति सीजर के ही हाथ में थी। रोम में अब वही प्रधान था और उसका कोई प्रतिद्वन्दी न रह गया था। मेना भी उसमें प्रसन्न थी और उसी के नेतृत्व में रहना पसन्द करती थी।

सीजर ने रोम में आकर रोम से शासन प्रारम्भ का मुधारने की ओर ध्यान दिया। रोम नगर में अब ४५ लाख मनुष्य आ बसे थे। रोम पर भागों में बंट दिया गया तथा वहाँ की शासक व्यवस्था में भी सुधार किया गया। जनता में भी शान्ति स्थापन के कारण सीजर ने प्रचलित कलेक्टर (दाता) में भी सुधार किया। अती लक्ष्य वहाँ पर वर्ष ३६६ दिन का माना जाता था। उसे छौर वर्षों से मिन ने लिये वर्ष ३६६ दिन का कर दिया गया।

४६ ई० पू० में सीजर ही रोम का प्रथम कौंसल तथा डिक्टेटर था। एक प्रकाश से वह पूरा शासन तथा नियुक्त करता था। इसमें पूरा पाप्पी भी अपने कौंसल रह चुका था। परन्तु वह ६०० वर्षों के शासन का अन्त कराने का

साहस न कर सका था। परन्तु सीजर अत्र केवल कौंसल न रह गया था, वह बिना मुकुट का राजा ही था तथा वह केन्द्र कौंसल न रहकर सम्राट बनना भी चाहता था। अतः उसने प्रजातन्त्र के अन्त की घोषणा कर दी तथा अपने को सम्राट घोषित कर दिया। प्राचीन काल के ७ राजाओं के पास अत्र आठवीं मूर्ति जूलियस सीजर की स्थापित करा दी गई। ५०० वर्ष के प्रजातन्त्र के इतिहास को उपेक्षित कर दिया गया और अन्तिम राजा सुप्रवस से सीजर के समय के इतिहास को जोड़ दिया गया। सीजर ने पुराने राजाओं के समान पोशाक पहनना भी आरम्भ कर दिया। वह सिर पर मुकुट भी धारण करने लगा। उसने सोने के नये सिक्के चलाये जिनपर अपनी मुकुट सहित मूर्ति अंकित कराई। सीनेट की बैठकों में भी वह सोने की कुर्सी पर बैठता था। वह सब प्रकार बाकायदा सम्राट बन गया था।

किन्तु सीजर की इस वृद्धि से द्वेष रखनेवाले भी बहुत लोग थे। पिछले राजा सुप्रवस का अन्त करने वालों में ब्रूटस नाम का व्यक्ति प्रधान था। संयोग से दस बार भी एक ब्रूटस मौजूद था जो सीजर का कृपा पात्र होते हुए उसका शत्रु बन गया। ४४ ई० पू० में मार्चमास में एक दिन सीजर को नियमित रूप से सम्राट की पत्नी दिये जाने के लिये नियत किया गया। सीजर वड़े ठाट नाट से पालकी में बैठकर सीनेट भवन में आया जहाँ ठासव होने वाला था। किन्तु उसका वह बैठने ही दूसरा दृश्य सामने आया। एक सुनियोजित षडयंत्र के अनुसार उस पर चारों ओर से तलवारें चमकने लगीं। हथियार चलाने वाले लोगों में ब्रूटस को भी देखकर सीजर ने आश्चर्य से केवल इतना ही कहा— 'मन्डा, ब्रूटस तू भी है' कि इसी समय उस पर हथियारों की वर्षा होने लगी जिससे वहाँ पर उसका प्राण लक्ष हो गया। एक महान विजेता तथा महान सम्राट का इस प्रकार अन्त हुआ। उसकी अवस्था उस समय केवल ५६ वर्ष की थी।

किन्तु जिस उद्देश्य से सीजर की हत्या की गयी थी वह सिद्ध न हुआ। रोम में फिर प्रजातन्त्र की स्थापना न हो सकी। सीजर ने अपने एक भानजे को उत्तराधिकारी नियत कर दिया था, उस समय वह बालक ही था। अतः कुछ दिन रोम में अशांति रही परन्तु बपरक होकर वही 'आगस्टस' नाम से दूसरा प्रसिद्ध और महान सम्राट हुआ। फिर तो सम्राटों की परम्परा ही चल पड़ी जो ५२० तक चलती रही। इन सम्राटों के काल में रोम यूरोप में एक प्रबल शक्ति के रूप में रहा तथा रोम की सम्रता का प्रसार यूरोप में सर्वत्र हुआ। प्रजातन्त्र की समाप्ति ने साथ ही रोम में एक युग की समाप्ति हो गयी।

### रोम की सभ्यता—

जैसा कि पूर्व में कहा गया है सभ्यता की दृष्टि से रोम कुछ आगे बढ़ा हुआ था। रोम के निवासियों के प्रारम्भिक स्वरुप ही तथैव पत्र-पालन से या फिर युद्ध। का

से उन लोगोंको अधिक प्रेम न था। अतः कला पिउड़ी हुई रही। जो कलायें वहाँ पहुँची वे बाहर से आई। रोम का साहित्य कुठ भी न था, न नाटक में न दृश्यन। उस समय के अयेस का तथा रोम का कोई मुकाबिला न था। रोम वालों का धर्म भी सबुचिन तथा गुन था ही मा।

### समाज—

रोम में अमीर और गरीबों में—पत्रीशियन और खेवियनों में प्रायः अर्थ होता रहता था। इसी भिन्नता को मिटाने तथा समस्त जातियों में एकता के भाव उत्पन्न करने के लिये ८ वीं शताब्दी ३० पू० के अन्त में राम के द्वितीय राजा नूमा ने रोम के समस्त समाज का विभाजन स्ववर्गियों के आधार पर किया था, जैसे चडर, उरार, चन म्बवघापी, रगरेब, कुम्हार, चात्रा चत्राने वाले आदि। यह भी आज्ञा दी गई कि लोग अपने ही रामन एम्फन, सेबाहन आदि न कटकर सुनार, टहार, रट्ट आदि बराबसायिक नामों से पुकारें। किन्तु पातीन भन् किसी न किसी रूप में चडते ही रह।

### रहन सहन—

राम वालों के घर आरम्भ में बहुत सीधे छाने में जिनमें प्रायः एक फाटा या कमरा रहता था और एक खोद घर जो धुँएँ से काला रहता था। घीने-घीरे जब रोम युद्धों में विजयी होने लगा और उसकी समृद्धि बढ़ी तब मरानों के टग में भी परिवर्तन होने लगा। पहले लोग स्नान बहुत कम करते थे, परन्तु अब अधिक करने लगे। मोहन में भी सुधार हुआ। पदके के लोग प्रायः रोटी और प्याज खाते थे, अब मांस में पद दूध, मरलन, छाग मांसी आदि शामिल हो गये जिससे मोहन अधिक उत्तम हो गया। इसी प्रकार पहले जहाँ अतिथि के आने पर उसका बटने के लिये भेड़ की गाना बिछा देते थे वहाँ अब अच्छे पत्र बिछाने लगे। मांस, पत्र आदि सभी बातों में इस प्रकार सुधार हुआ।

धूमरे देशों पर विजय प्राप्त होने पर उन देशों के बहुत से लोग रोम में टागों के रूप में आ गये। ये लोग रोम वालों के छोटे काम-काज करने में और सब प्रकार नहाने मजदूरी भी करते थे। शीम हो गायों की संगत के दिग्गज से ही शर्मा के लानों की विदति गी-बड़ी संगत का ज्ञान लगी। जब तक पर में दस गाय न हो तब तक काह रोमवासी नर्विषन नहीं समझा जाता था।

रोम के रथा पुरपद रड द। याप परिनिन थे। एक शरीर से चिनी हुई कापेट और दूधम उमरे ऊपर एक कपड। बाहर निकाने पर अथवा विरार अथगरी पर में लोग शरीर पर एक कपड अर्थात् दीन, या लौन य प अतिउते थे दानु हगे केक रोम वासी ही परत कर मजते थे, हानी के उम नगरी के विषयी नरी। प्ररान में



यहाँ सुद, कैची, वस्त्र आदि वस्तुएँ न थीं। कैची रोम में शायद ३०० ई० पू० के लगभग सिसली से आई। अतः वहाँ के प्रारम्भिक वस्त्र कुछ भद्दे से ही रहते होंगे। वस्त्र प्रायः ऊन के होते थे। पैरों में बंधे लोग कद्दू तरह के जूते पहनते थे। स्त्रियाँ प्रायः यूनान से आये हुए सजावटदार जूते पहनती थीं जो सेटलस कहलाते थे।

विवाह के समय बधू सफेद रंग की लम्बी पोशाक पहनती थी और उसके ऊपर झुपट्टा बाँधती थी। वह एक पीले रंग की तकाव भी डालती थी और वैसे ही रंग के जूते पहनती थी। तब वह धार्मिक कृत्यों में भाग लेती थी और घर के हाथ में हाथ डालकर बेदी की परिक्रमा करती थी। विवाह के पश्चात् बधू को घर एक कुंजी भेंट करता था जिसका अर्थ यह होता था कि वह घर की मालकिन हुई। फिर समस्त नाते रिश्तेदारों की दावत होती थी। गाने भी गाये जाते थे। पश्चात्, बधू नये परिवार की एक सम्माननीय सदस्या बन जाती थी। फिर भी उसकी स्थिति पति से नीची समझी जाती थी—यद्यपि घर के प्रबंध में बड़ी मालकिन होती थी। पति की मृत्यु होने पर वह उसकी जायदाद तथा रुपये पैसे की वारिस समझी जाती थी।

ई० पू० द्वितीय शताब्दी में रोम की सामाजिक अवस्था काफी बदल गई। अत्र स्त्रियाँ भी जो अभी तक घरों में ही रहती थीं—बाहर जाने लगीं और सार्वजनिक जीवन में भाग लेने का आग्रह करने लगीं। इस परिवर्तन का एक विशेष कारण था। जब तक कारथेज से युद्ध चलते रहे, रोम के पुरुष और स्त्रियाँ ने अपने दैनिक जीवन की अनेक आवश्यकताओं को कम करके बिसी तरह दिन गुजारे, युद्ध के कारण आर्थिक स्थिति भी भिगड़ गई थी। अतः तब यह फानूस घोषणा गया था कि काइ स्त्री रंग विरगे वस्त्र न पहने तथा गहने न बनवाये। युद्ध के दिनोंमें तो ऐसे अनेक बंधन उठाने पड़े लिये परन्तु युद्ध के पश्चात् जब कारथेज के नाश हो जाने के कारण वे लोग निश्चित हो गये थे—ऐसे बंधनों को मानना उनके लिये कठिन हो गया। युद्धों के बाद रोम की सम्पत्ति भी बढ़ी—अतः घर बड़े बनने लगे, गलियारों चौड़ी होने लगीं तथा सभी प्रकार से लोगों के रहन सहन में काफी अंतर आ गया।

### शिक्षा और साहित्य—

रोम में पहले के लोग प्रायः खेती बारी ही करते थे। उन्हें नाचने-गाने का भी शौक था। फिर वे लोग पढ़ना लिखना और गिनना भी सीखने लगे। किन्तु उनका मानसिक विकास तब तक अधिक नहीं हुआ जब तक कि वे लोग यूनानियों के सम्पर्क में न आये। जब उन्हें यह शांति हुआ कि दूसरे लोग सम्पत्ता में उनसे कितने बढ़े-चढ़े हैं तो वे शीघ्रता से सब प्रकार की विद्याय सीखने लगे। रोम में टानटरी टन की चिकित्सा का प्रारम्भ करने वाला पहला व्यक्ति एक यूनानी था जो तीसरी शताब्दी ई० पू० के अन्त

में वहाँ आकर रहने लगा था। इस समय वहाँ स्कूलों में पढ़ाने के लिये एक क़िताब बनी जो होमर कृत आडेसी नामक वीर काव्य के आधार पर बनाई गई थी। लगभग इसी समय कानून की पढ़ाई के लिये भी वहाँ एक स्कूल खुला।

रोम का प्रमुख गद्य-लेखक और इतिहासकार क्विंटस फेबियस था, जिसने रोम का इतिहास एनियास के इटली आगमन के समय से लेकर द्वितीय कारथेज युद्ध तक का लिखा। यश का प्रमुख कवि टिटस मैकियस था जिसने तीन अठ्ठे नाटक भी लिखे हैं। विस्सरो वहाँ का दूसरा प्रमुख लेखक और कवि था। अप एग्लो और क्विंटा में वेले रियस, लुक्रेटियस, होरेस आदि प्रमुख हैं।

### देवी-देवता—

रोमवासी अनेक देवी-देवताओं की पूजा करते थे। रोम के संस्थापक रोमस और रोमुलस को जिस मादा भेड़िये ने पाला था उसे भी एक देवी मान लिया गया और उसे भेड़ों के रखक एक देवता की पत्नी बना दिया गया। रोमवासियों के देवताओं का राजा जुपिटर था और मुख्य देवी थी मिनर्वा। रोमों की रक्षा तथा युद्ध का देवता मार्स था। ओगस समृद्धि बढ़ाने वाली देवी थी जो गेतों की बोनो के देवता सेटरनस की पत्नी थी। आग का देवता वल्केनस और पानी तथा समुद्र का देवता नेपचूनस था। धूलों भी एक देवी थी। इन सब देवों देवताओं के नाम पर समय-समय पर उभर मनाये जाते थे तथा कई मंदिर बने हुए थे।

### शिल्प—

शिल्प-कला में रोम की एट्रस्कन जाति बारी आग बढ़ी हुई थी। उनकी सम्पत्ता के जो चिह्न इटली में खाने से मिले हैं वे उनकी निपुणता का पता देते हैं। उन्होंने कौलों तथा दलदलों से पानी निकालकर कृषि के लिये भूमि निकाल ली थी, नदियों के घाट पर घड़े घड़े बाँध बनाये थे, नहरें भी बनाई थी तथा पत्थर के ऊबे-ऊँचे भवन बने किये थे जिनमें उत्तम कोटि का शिल्प काय था। गुणाई में उनकी जो मूर्तियाँ बनी हैं उनकी बारीगरी भी उत्तम है। अनुमान किता जाता है कि एट्रस्कन लोग इटली में १००० ई० पू० के लगभग आकर रहे थे।

### कानून—

रोम में शासन के धमकने ही कुछ कानून प्राचीन हानक काय माला है। कुछ राजाओं ने कानूनों में सुधार भी किये। प्रजापति की स्थापना के बाद ४६२ ई० पू० में लैकी के डिप्लू ने प्रस्ताव किया कि राज के समस्त शासनिक व्यवस्था किये जाकर प्रजापति का दिनांक काय रहे, जिससे सब लोग उनसे परिचित हो सकें। अर एक महीना के अन्दर उनका उद्देश्य पूर्ण करने के लिये कानून नये। उक्त कानून (११२)

के प्रस्ताव के अनुसार १० सदस्यों की एक कमेटी की रिपोर्ट पर बहुत से राजनियम प्रकाशित कर दिये गये ( ४५१ ई०पू० ) । कुछ नियम इस प्रकार थे—पिता अपने पुत्र को किसी का दास बनाकर बेच सकता है, पर तु उस पुत्र को उत्तराधिकार न रहेगा । किसी नागरिक को यह अधिकार न होगा कि बिना कर दिये भूमि का मालिक बन जाये, कोई विदेशी व्यक्ति रोममें भूमि का मालिक न हो सकेगा, श्रमिकका सुद १० प्रतिशत से अधिक न होगा आदि । इसी कानून समूह में धीरे धीरे सुधार होते गये और फिर इन्हीं के आधार पर यूरोप के अ्य देशों ने अपने-अपने यहाँ कानून बनाये तथा रोम में उक्त कानूनों का प्रकाशन यूरोप के आधुनिक राजनियमों का मूल होने के कारण महत्वपूर्ण समझा जाता है । इन कानूनों का मुख्य आधार यह था कि किसी भी मामले में प्रथम जाँच होना आवश्यक है । गवाहिया और समूत भी होना चाहिये, यायाधीशोंको अपनी ओर से कानून न बनाकर निश्चित राजनियमों के अनुसार याय कार्य करना चाहिये । ये ही सिद्धांत आज के राजनियमों के आधार हैं । अतः राजनियमों के क्षेत्र में यूरोप को रोम की देन महत्वपूर्ण है ।

### पचांग सुधार—

रोम में पचांग ( तिथि पत्र ) का आरम्भ शायद पट्रस्कन लोगों ने लिया था । बाद में समय-समय पर इसमें कई सुधार किये जाते रहे । सुधारों का आरम्भ राजतथकात् से ही हो गया था । रोम में प्रारम्भिक काल में वर्ष का विभाजन १० महीनों में किया गया था । पहिला महीना माच होता था जिसका नाम मार्स नामक देवता के नाम पर रखा गया था । किंतु रोम के दूसरे राजा तुमा ने इस विभाजन को दोयसुक्त बनाकर दो महीने जनवरी और फरवरी के नाम से और जोड़ दिये और तब वर्षका प्रारम्भ जनवरी से होने लगा । इस प्रकार सितम्बर अर्थात् सातवा महीना नवा महीना बन गया और इन्हीं प्रकार आठवा, नवा और दसवां महीना दसवां, ग्यारहवा और बारहवा महीना बन गया और महीनों के ये ही नाम आज तक चले आते हैं । प्रथम मास का नाम जनवरी दो मुख वाले जेनस देवता के नाम पर रखा गया, क्योंकि प्रथम मास बीते हुए वर्ष तथा प्रारम्भ होने वाले वर्ष दोनों को मिलाता है अर्थात् उगना मुख दोनों ओर होता है । फरवरी फेब्रुवा ( शुद्धीकरण का उत्सव ) के नाम पर रखा गया था । बाद में जूलियस सीजर ने भी इस तिथि पत्र में सुधार किये और उस समय तक प्रचलित ३५५ दिन के वर्ष के रखाव पर उसने सूर्य की गति के अनुसार ३६५ १/४ दिन का वर्ष नियत किया । उसका यह सुधार भी आज तक मान्य समझा जाता है ।

### खेल—

शुरू में रोमवासी भेड़ चरनी आदि की हड्डियों को उछालने का खेल खेलते थे । ये हड्डी को उखाटकर फिर उभे हाथ में पकड़ते थे । बाद में सर्कस के कई खेल शुरू हुए

बैसे दो या चार घोड़ों से चलने वाले रथों की दौड़, पैदल दौड़, मुक्केबाजी, कुत्ती, माल्य केंटना आदि। इन खेलों का देखने लिए एक विशाल अग्राड़ा भी बनाया गया जिसके दाहिने ओर दशक बैठते थे। यह कोलासियम कहलाता था तथा इसके खण्डहर रोम में अब तक भी मौजूद हैं।

बसन्त ऋतु में नाच, नाटक, दासतों आदि का आयोजन किया जाता था और पाँच दिन तक इस उत्सव में घूमघाम रहती थी।

### अन्तिम सरकार—

किसी रोमनासी की मृत्यु एक महान् की घटना समझी जाती थी। शव को नहलाया जाता था तथा उस पर कुछ लेपन भी किया जाता था। उसका मुल में एक छोटा-सा सिफा रख दिया जाता था जो चैरोन नाम के उस नाव वाले का घर समझा जाता था जो उस मृत मनुष्य की आत्मा को नीचे की दुनिया (मृत्युलोक) की नदियों के पार ले जाता था। मृतक को एक बड़ा चोंगा पहनाया जाता था। लेप क बाद शरीर पर में ही रखा जाता था और आठवें दिन उसे जलाने या गाढ़ने के लिये ले लाया जाता था। शव के पीछे बाने वाले चलते थे और उनके पीछे शोक मनाने वाले। अर्थात् निकट सम्बन्धी ही उठाने थे। जूलियस सीजर की अर्थात् रोम के मन्दिरों में न उठाई थी।

अर्थात् के पीछे जाने दिग्देशर लोग काले या नीले रंग पहनकर चलते थे। मृतक के पुत्र मृत्यु पर नकाब डाल लेते थे और पुत्रियां अपने नाक बिल्वर लेती थीं। य सब लाग अर्थात् के साथ विन्यास करते जाते थे। टिपरी अरनी छाती भी पीठनी थीं और मुँह भी नोचनी जाती थी। मृतक को नगर की सीमा के बाहर गाड़ा अथवा जलाया जाता था। प्रारम्भिक काल में रोम के मृतकों को गाढ़ने की प्रथा थी। बाद में जलाने की प्रथा प्रचलित हुई। जलाने की दशा में शव को पन्ना सहित लकड़ियों की एक चौगूरी बिठा कर रखा जाता था और सबसे निकट-सम्बन्धी बिठा में आग लगाया था। उस समय वह अपना मुँह पीछे की ओर कर लेता था। जब जिन्हा बल्लने लगती थी तो उसमें सुगन्धित द्रव्य तेल आद्याय तथा यश आदि छाने जाते थे। कभी कभी किसी दाग की अथवा पत्र की बलि भी बढ़ाई जाती थी। जिन्हा पूरे कर म बल्ल चुकन पर उमर शकन ठिड़की जाती थी। जिन्हा अग्नि पर एक पात्र में रखी जाती थी। पुनः दिन उस पात्र पर एक ठिड़का लगा और तब वह पात्र पारिवारिक अनुष्ठान के पत्र पर विन्यास में किसी ताल पर रख दिया जाता था। अन्यान्य स पर लीजने पर नाना विन्यास एक प्रकार की सुदीक्षा भा करते थे तथा पत्रों को धूम्रित तक उड़ा डुराय जाता था।

गाढ़ने की अथवा में उल्लेख पर प्रायः कर बनाई जाती थी अथवा एक ताल बना दिया जाता था और उसमें एक लेप दिया जाता था। गाढ़ने की उमर का— ७५ वर्ष किसी मृत्यु की ही नहीं हो—रविवर समझा जाता था और उस अवधि पर

वाले को दण्ड दिया जाता था। यदि कोई व्यक्ति क्रम में से मृतक को या उसकी हड्डियों को निकालता था तो उसे मृत्यु दण्ड तक दिया जा सकता था। रिस्तेदारों द्वारा क्रम पर फूल, दूध शराब आदि वस्तुएँ चढ़ाई जाती थीं।

### भारत से सम्बन्ध—

रोम की सभ्यता प्राचीन देशोंमें सबसे बाद की अर्थात् सातवीं आठवीं शताब्दी ई० पू० की है जबकि भारत की सभ्यता सबसे प्राचीन सिद्ध होती है जो कि सहस्रों वर्ष पूर्व की है। अन रोम की सभ्यता पर भारत का प्रभाव होने का प्रश्न ही नहीं उठता। रोम भारत से बहुत दूर पर भी पढ़ जाता है। फिर भी रोम की सभ्यता पर भारत का कुछ अप्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई देता है जो मिस्र तथा यूनान के द्वारा वहाँ पहुँचा होगा जिन पर कि भारतीय सभ्यता का काफी प्रभाव था। रोम की कई बातें—विशेषतः अन्तिम सरनार की प्रथायें, मृतक को स्नान कराना, जलाना, दाह के बाद साय जाने वालों का तथा मृतक के मकान का शुद्धीकरण आदि भारतीय सभ्यता से प्रभावित जान पड़ती हैं, क्योंकि ये क्रियायें भारतमें आज तक सर्वत्र प्रचलित हैं। कुछ लोगों का मत है कि एट्रस्कन जाति जो प्राचीन काल में रोम में पहुँची एक आर्य जाति थी। प्राचीन काल में कई आर्य जातियाँ यूरोप तक पहुँची थीं।

रोम का प्रधान देवता जूपिटर माना जाता था जो विद्वानों के अनुसार भारतीय द्यौष पितर का ही रूपांतर मात्र था। १ रोम के इतिहास के प्रारम्भ काल से ही उसका भारत के साथ व्यापारिक सम्बन्ध होने का पता चलता है। भारतीय सागर के यात्रा वर्णन वाली पुस्तक 'पेरिप्लस' में रोम के साथ दक्षिण भारत के व्यापार का विस्तृत वर्णन है। दक्षिण भारत में (मदुरा तथा अन्य स्थानों पर) अनेक रोमन शिबड़े मिले हैं जो इन दोनों देशों के व्यापारिक सम्बन्ध के ही सूचक हैं।

यह व्यापारिक सम्बन्ध दिन दिन बढ़ता गया। द्वितीय शताब्दी ई० पू० में जब रोम ने कारथेन को नष्ट कर दिया तथा रोम में समृद्धि का युग आया तब यहाँ के स्त्री पुरुषों में विलासिता अधिक बढ़ गई थी तथा यह विलासिता का सामान—मलमल

१ प्रो० मैक्समूलर कहते हैं यदि मुझसे पूछा जाय कि उन्नत शताब्दी में मनुष्य जाति के प्राचीन इतिहास के विषय में सबसे अधिक आवश्यक कौनसी बात विदित हुई है तो इसका उत्तर में नीचे लिखी पंक्ति में दूँगा —

संस्कृत—द्यौष पितर, यूनानी जिउस पौटर, लैटिन जूपिटर ( प्राचीन भारतवर्ष की सभ्यता का इतिहास सर रमेसचन्द्र दत्त अनुवादक बाबू गोपाल दास )

मोती-मसाले, इत्र तथा अन्य सुगन्धित द्रव्य, तरह तरह के वस्त्र, आभूषण आदि अधिकतर भारत से ही वहाँ पहुँचते थे। इस बात का कुछ अनुमान हम रोम के इतिहासकार प्लिनी के उन विलासमय उद्गारों से कर सकते हैं जो उद्योग भारतीय विलासिता की वस्तुओं के बदले भारत की ओर रोम से सुनर्ग की धारा बहती हुई बहाकर प्रकट किये हैं। प्लिनी (प्रथम शताब्दी ईस्वी) ने इस बात का प्रबल विरोध प्रकट किया है कि रोम का सारा सोना भारत की जेब में चला जाता है और बदले में अनुरपादक विलासिता की वस्तुएँ मँगाई जाती हैं। उसने बताया है कि भारतवर्ष रोम से हर साल साढ़े पाँच करोड़ का सोना खींच लेता है और यह कीमत रोम वालों को विरोधत स्त्रियों की खातिर चुकानी पड़ती है। रोम लोगों की दिदुरान की वस्तुओं का प्रति बदती हुई वचि को देकर अनेक लोगों को तो मर डर हाने लगा था कि रोम वहाँ दिनालिया उहो छाय।

इस प्रकार प्राचीन रोम से भारत का व्यापारिक सम्बन्ध तो था ही उससे पून कुछ सांस्कृतिक सम्बन्ध भी अवश्य रूप से रहा दिग्नाइ देता है।



## अध्याय ६

# भारत की प्राचीन सभ्यता

### (१) आर्य और वनका साहित्य

भारत में सभ्यता का प्रारम्भ ऐसे सुदूर अतीत काल में हुआ था जिस पर यूरोपियन विद्वानों को सहज में विश्वास करना कठिन होता है। किन्तु भारतीय जनों की यह परम्परागत धारणा रही है कि गण्डार को सभ्यता का पाठ भारत ने ही पढ़ाया तथा भारत सभ्यता में जगद्गुरु है। पिछले अन्वयों में अन्वय देशों की सभ्यताओं पर भारत का जो प्रभाव लिखा गया है, उससे भारतीय विश्वास की सत्यता ही प्रमाणित होती है।

यह तो मानना पड़ता है कि सभ्यता का विकास भारत में भी अन्वय देशों के समान धीरे धीरे हुआ। अन्वयकों तथा पुरातत्वविदों ने जहाँ तक पता लगाया है भारत के प्राचीनतम निवासी भी पूरव पाषाण काल तथा उत्तरपाषाण काल की अवस्थाओं से गुजर कर ही धातु-युग सभ्यता में आये श्राव्य हुए हैं। पूरव पाषाण काल में वे गुफाओं में रहते थे तथा आग्नेय करके अन्न का दूध मूल फल खाकर निर्वाह करते थे। इसका पता उन अनेक गुफाओं से चलता है जो मद्रास प्रांत में करनूल जिले में, उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले में तथा अन्वय कर्ष स्थानों पर मिली हैं। मिर्जापुर से रीवाँ जाने वाली सड़क पर मिर्जापुर से ४५ मील पर ऐसी अनेक गुफायें सड़क के पास ही विद्यमान हैं जो बहुत पुरानी समझी जाती हैं। खैरापुर प्रांत में सावरमती और माही नदियों की घाटियों में ६००० सालों के आदि पाषाण युग के जो हथियार मिले हैं उनसे उन्होंने अनुमान लगाया है कि शायद २३ लाख वर्ष पूर्व मनुष्य उन स्थानों में निवास करता रहा होगा। मद्रास के विंगल्लय जिले में, उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले में तथा मध्यप्रदेश के कुछ स्थानों में भी पुराने ढग के पत्थर के हथियार प्राप्त हुए हैं।

इसके पश्चात् भारतीय मानव ने विकास की दूसरी मजिल की ओर पग बढ़ाया। प्राचीन काल के भड़े हथियारों की जगह अब उनके हथियार अधिक मुकीले तथा सुन्दर बनने लगे। ये लोग हथियारों को रंगद्वार चिकने बनाना सीख गये थे। यह नव पाषाण युग था। उन्हें अग्नि का ज्ञान भी समभवत इसी नव पाषाण काल में हो गया

था और वे अपना भोजन अथवा आग पर पका कर खाने लगे थे। चीने-चीने उड़ोने गाय, बैल, भेड़, बकरी, घोड़ा आदि पशुओं को पाठना गुरु किया और फिर बैलों की सहायता से खेती भी करने लगे। रहने के लिए गुफाओं के स्थान पर वे अथवा घास पूस के झोपड़े बनाने लगे थे। अपना शरीर भी वे अद पट्टों के पत्तों तथा छाल आदि से ढकने लगे थे। बन्दल बसन तथा भोजन के लिये कद-मूल पत्त आदि का ज्ञान प्राचीन प्रयोगों में मिलता है। सम्भवतः इस नव पाषाण काल के अन्तिम भाग में उड़ोने धातुओं का ज्ञान भी ज्ञान लिया था। सारा की चमक ने उन्हें आकर्षित किया होगा और धार धार व साने का उपयोग करने बनाने के लिये करना सीखा गया। इसी प्रकार अथ धातुओं विद्यापरतौव का उपयोग व सीखा गया और उसका हथियार बनाने लगे। बाद में किसी काल में वे लाहा तथा अन्य धातुओं का उपयोग भी जान गया और उनसे वे अनेक प्रकार की वस्तुएँ बनाने लगे।

### भारत के प्राचीन निवासी कौन थे ?

भारत के प्राचीन निवासी कौन थे, किस जाति के थे, उनसे उत्पन्न आन भारत में हैं अथवा उत ही गये आदि बातों पर सम्भवतः इतिहास के विद्वानों में मतभेद है। कुछ समय पूर्व तक भारत के इतिहासकार प्राचीन भारत में दो या तीन जातियों का ही निवास मानते थे—आर्य, काल और द्रविड़। इनमें भी यूरोपीय विद्वानों ने यह मत प्रकटित किया था कि द्रविड़ और कोल नहीं की भूमि व मूल निवासी हैं तथा आर्य लोग बहुत बाद में बाहर वहाँ से इस देश में आये। परन्तु नव नव विद्वानों तथा नये नये अनुसंधानों पर काम पर उड़ोने कुछ नये निष्कर्ष निकाले हैं और यह मत स्थिर किया है कि भारत में रहने वाली सभी जातियाँ मूलतः बाहर से आये हैं और कोल और द्रविड़ों से भी पूर्व वहाँ कद जातियाँ बाहर से आकर रह चुकी थीं।

पहले नेग्रिटोजाति के लोग आये जो सगर की एक विशाल जाति नीग्रो या हथियारों की एक शाखा थे। वे लोग काले रंग, नाटक और माट होठ वाले थे। वे लोग अफ्रीका से बाहर आये और इराक व मध्य-जट से हाथ हुए भारत में आये और पश्चिम तथा दक्षिण भारत में बसे। धार चीर के लोग उत्तर भाग तक फैले गये और फिर वहाँ से मगध और हिन्दुस्तान के द्वीपों की ओर बढ़कर सिन्धु-सिन्धु और युगिनी द्वीपों तक जा पहुँचे। इन जितों अस्मान आदि धातुओं में का लोग बने हुए हैं वे भी इसी जाति के माने जाते हैं।

इसके बाद आस्ट्रीक या आर्य जाति के लोग आये। इस जाति का जन्म आर्यवृत इत करण पदा कि यह प्रयाग का एक संसार व अग्निशोक आर्यवृत के परिचय में पारे गयी है। संभवतः यह है कि इस जाति के लोग उत्तर में परिचय की ओर से—



सम्भवत फिलिस्तीन से आये और इन्होंने भारत में नेग्रिटो लोगों को नष्ट प्राय कर दिया। सयाल, मु डा, शबर आदि भारत के जंगली लोग इसी जाति के समझे जाते हैं। इस जाति के लोग भारत से आगे बढ़कर आस्ट्रेलिया तक पहुँचे जहाँ उनके वंशज आज भी आस्ट्रेलिया के आदिवासियों के रूप में जीवित हैं। ये लोग अब भी पूर्वी द्वीप समूह तक फैले हुए हैं। भारत में ये लोग अन्य जातियों में मिल गये और कुछ इतिहासकारों ने अनुमान किया है कि चन्द्रमा को देखकर तिथि गिनने की प्रथा आग्नेय सभ्यता की ही देन है तथा पूर्ण चन्द्र के लिए 'शका' शब्द भी आग्नेय मण्डार का है। पत्थर के खण्ड को देवता मानने की प्रथा भी आस्ट्रिकों ने ही चलाई। ये अनुमान कहीं तक ठीक हैं कहना कठिन है।

अस्ट्रिक लोगों के बाद 'मंगोलायड' या किरात लोग आये। ये लांग पूरव की ओर से ब्रह्मपुत्र नदी और उसकी सहायक नदियों के किनारे-किनारे आये। इन्होंने आसाम, भूटान और नेपाल में ऋही-बड़ी बस्तियाँ तथा हिमालय के दक्षिणी छेद में काश्मीर तक तथा उसके भी नीचे मोहंजोदड़ो तक फैल गये। इन्हीं में से कुछ लोग मध्यप्रदेश और उत्तर तक फैल गये। उत्तर के आदिवासी इन विद्वानों के अनुसार इसी किरात जाति के हैं।

गिर द्रविड़ लोग आये जो भारत में सम्भवत भूमध्य सागर से या एशिया माइनर ( लघु एशिया अथवा पूर्वी भूमध्य सागर का तटवर्ती प्रदेश ) से आये और भारत में बस गये। भारत में आने से पूर्व ( ३५०० ई०पू० के लगभग ) इनके कुछ समुदाय इरान और इराक में बस चुके थे तथा भारतमें मोहंजोदड़ो और हरप्पा की नगरी सभ्यता के निर्माता यही लोग थे। अन्तमें आर्य लोग आये जो गौर वण, ऊँचे कद और बड़ी नुकीली नाक वाले थे। ये लोग उत्तर भारत में तथा विशेषकर पश्चिमी भारत में बस गये।

उक्त मत कुछ नृवश शास्त्रियों ने अर्थात् मनुष्य जाति की नस्लों को पहचानने वालों ने भारत में बसी हुई भिन्न भिन्न नस्लों की जाँच के परचात् स्थिर किया है। इनमें विशेषकर यूरोप के लोग हैं। किन्तु यदि इस मत को माना जाय तो भारत के मूल निवासी कोई रहते ही नहीं और भारत की इस सुन्नल सफला भूमि में कोई मनुष्य सृष्टि क्यों उत्पन्न नहीं हुई तथा बाहर के देशों में क्यों उत्पन्न हो गई यह समझना कठिन हो जाता है।

अनेक विद्वानों की मान्यता है कि मानव सृष्टि पहले एशिया में तथा भारत में हुई थी। अंग्रेजी के सद्म ग्रन्थ 'एनसाइक्लोपीडिया' ब्रिटानिया के अनुसार एशिया ही मनुष्य जाति की उत्पत्ति का सबसे अधिक सम्भव क्षेत्र है।<sup>1</sup> अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध लेखक

<sup>1</sup> It follows naturally that Asia is the most likely place of beginning Ency Britania India

एच० बी० वेल्स ने भी हमारे सदृश मनुष्य का जन्म दक्षिणी एशिया (भारत) या उत्तरी अफ्रीका बताया है। 2 गोदावरी और नर्मदा के तीरों पर मिली हुई अनेक चतुर्भुजों की प्राचीनता का देखने हुए प्रतीत होता है कि भारत में यूरोप से भी पहिले मनुष्य का प्रारम्भ हो चुका था। 3 भारत में अनेक स्थानों पर प्राचीन गुरायें मिली हैं जिनका उल्लेख किया जा चुका है। वे आग्नि मनुष्य के ही निवास मानी जाती हैं, क्योंकि उनमें मनुष्य के निवास के अनेक चिह्न दीवारों पर बने हुए चित्र, औजार आदि पाये गये हैं। पत्थर के पुराने तथा भदे दग के औजार अन्य अनेक स्थानों पर भी मिले हैं। हाँ सबसे बड़ी प्रमाणित होता है कि आग्नि मनुष्य की उत्पत्ति भारत में ही हुई थी तथा यही उसने अपनी सभ्यता का धीरे-धीरे विस्तार किया। अब उक्त नये सिद्धान्त कि भारत में सभी जातियाँ साहर से आई, तथ्यों के विपरीत तथा युद्ध से भी अगम्य हैं। ये सिद्धान्त कुछ थोड़े से तथा अनिश्चित आकारों पर गढ़े किये गये ज्ञान पड़ते हैं एवं भ्रामक तथा तथ्यहीन हैं।

### द्रविणों की समस्या —

द्रविणों के सम्बन्ध में कुछ इतिहासकारों की सम्मति का उल्लेख ऊपर किया गया है। भारत में द्रविड़ कौट थे और वहाँ से आये यह प्रश्न भी विद्वानों ने अथ अथक प्रश्नों के समान उल्लेख में टाल रखा है। कुछ जिन पूर्व तक विद्वानों का मत था कि द्रविड़ लोग दक्षिण भारत के मूल निवासी थे और उनकी अपनी विशिष्ट सभ्यता थी जो उत्तर के आर्यों से भिन्न थी। फिर कुछ यूरोपीय विद्वानों—कीट, हाल्डरनेस, मोल्म आदि ने ऐमा किया मराठीय की यात्रा की जो दक्षिण भारत में लेकर अफ्रीका, आस्ट्रेलिया आदि तक गेला हुआ बताया गया और कहा गया कि इस समस्त प्रदेश में द्रविड़ों का निवास था और दक्षिण भारत में द्रविड़ लोग भी दूरी में हैं। यह सिद्धान्त भी समझ में आने योग्य था। किन्तु इससे बाद जो नये नये मत द्रविड़ों के सम्बन्ध में प्रकट किये गये हैं वे अथवा तथा युद्ध से अगम्य सिद्धांतों के हैं। प्रो० पेरी और हावेल आदि विद्वानों का विचार है कि द्रविण लोग पहिले भूमध्यसागर के पूर्वी तट पर स्थित एशिया माइनर में अथवा सीट, साइप्रस आदि एशियन सागर के द्वीपों में रहा करने थे और मूनान की प्राचीन जातियों के साथ सम्बन्ध रखते थे। यहाँ से वे लोग जा तो बर्बरता और विषय के सार से या फिर समुद्र के मार्ग से दक्षिण भारत में पहुँचे और वहाँ बस

गये । स्थल मार्ग से आने वाले सिद्धांत के समर्थक यह प्रमाण देते हैं कि दक्षिण-पश्चिम के एक भाग में जो ब्राह्मण भाषा बोलੀ जाती है और जो द्रविण भाषा से मिलती-जुलती मानी जाती है वह उन्हीं लोगों की है जो इस द्रविड़ टोली में से छूट गये थे तथा दक्षिण-पश्चिम में बस गये । इन लोगों का यह भी कथन है कि सिंधु घाटी में जितने प्राचीन नगरी सभ्यता का उद्घाटन हुआ है वह भी इन्हीं द्रविड़ों की है । श्री वेनेडी तथा डॉ० सुनीतिबुमाग चटर्जी भी अनुमान करते हैं कि द्रविड़ों ने पूर्व में प्रारम्भ में भूमध्यसागर के किनारे रहते थे और वहाँ से वे लोग भारतवर्ष में आये । इससे लगभग ३५०० ई० पू० में वे लोग भूमध्यसागर से भारत की ओर चले । रास्ते में इनकी शाखाएँ इराक और इरान में भी रह गईं जिन्होंने इराक में सुमेरी सभ्यता की नींव डाली और वहाँ से जो लोग भारत में आये उन्होंने महाराष्ट्र, हरप्पा आदि स्थानों में सिंधु सभ्यता की स्थापना की ।

इनके विपरीत अन्य विद्वानों का अनुमान है कि द्रविड़ लोग दक्षिण भारत के निवासी थे जहाँ से वे समस्त उत्तरी भारत में फैले तथा उन्हीं लोगों ने सिंधु घाटी में भी अपनी सभ्यता का प्रसार किया । इस प्रकार वे लोग भी सिंधु सभ्यता को द्रविड़ सभ्यता ही मानते हैं ।

दक्षिण भारत के कुछ इतिहास लेखकों का मत है कि द्रविड़ लोग उत्तर पश्चिम की ओर से भारत आये थे और उन्हीं अपने से पहिले भारत में आये हुए कोलों को अपदस्थ कर देश के उपजाऊ प्रदेशों पर अपना अविचार कर लिया । इनके मतानुसार कोल लोग हिमालय के उत्तरी-पूर्वी दरों से भारत में आये थे । बाद में जब द्रविड़ों ने उन्हें भगाया तब कोल लोगों ने जंगलों और पहाड़ों में भागकर शरण ली ।

श्री कनक समाई का मत था कि द्रविड़ लोग मंगोल जाति के थे और वे तिब्बत से चलकर बंगाल की खाड़ी को पार कर भारत के दक्षिण के प्रायद्वीप में जा पहुँचे और वहाँ पर बस गये ।

इस प्रकार द्रविड़ों के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न विद्वानों ने भिन्न भिन्न प्रकार के अनुमान लगाये हैं । किन्तु कुछ ऐसे भी विद्वान हैं जो उक्त सभी अनुमानों के विरुद्ध अपना मत रखते हैं । कुछ विद्वानों का कथन है कि जिन ब्राह्मण लोगों को द्रविड़ों की टोली के अवशेष बनाकर द्रविड़ों के एशिया माइनर में भारत में आने का सिद्धांत प्रस्तुत किया गया है, उन ब्राह्मण लोगों में तथा द्रविड़ों में नस्ल की भिन्नता है अर्थात् वे भिन्न भिन्न नस्लों के सिद्ध हुए हैं । कनक हो-द्विज यतारते हैं कि ब्राह्मण लोग तुर्क मंगोल जाति के

☞ सङ्कति के चार अर्थात् श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' ।

। प्राचीन भारत—मूल स्वरूप श्री निवासचारी तथा श्री रामस्वामी आशगर

(द्वितीय अनुसंधान) पृष्ठ २० ।

ये सिद्ध उन्होंने द्रविड़ों से हारने के बाद उनसे सम्बन्ध स्थापित कर दिया था और इस कारण उनकी भाषा पर द्रविड़ भाषाका कुछ प्रभाव पड़ा है। श्रीयूट साहस्रायन का कथन है कि द्रविड़ लगभग एशिया तक फैले थे और आर्यों का सम्पर्क उनके पूर्व-वर्ण स्वार्थिण से हुआ था। वहीं द्रविड़ों का पराजित करके तथा उनका स्थान ले आया था भारत की आर्य नया भारत में आने।<sup>७</sup>

सिद्ध भारतीय इतिहास और परम्परा इन सभी सिद्धांतोंके विरुद्ध हैं। इस परम्परा के अनुसार द्रविड़ लोग दक्षिण भारत के ही मूल निवासी हैं तथा वहीं पर उनकी सभ्यता का विकास हुआ। प्राचीन तामिल ग्रंथों में इस बात का कभी उल्लेख नहीं मिलता कि द्रविड़ लोग इस देश में कहीं आये थे। प्राचीन तामिल ग्रंथोंमें न सिद्ध देशकी ही तामिलों की आदि मूल माना गया है और इनमें तामिल देश के जीवन, प्राकृतिक एवं भौगोलिक अन्वय का वर्णन मिलता है। श्री अरुणचन्द्र के कथनानुसार आर्यों के प्राचीन ग्रंथों में इतना सब कुछ अवलोकित है कि वैदिक काल में ही व्यापक और दक्षिण देश में व्यापक सम्बन्धपारित हो चुका था। अथर्व वेदिका में भी दक्षिण का नाम मिलता है।<sup>८</sup> वैदिक काल में ही दक्षिण भारत के जलो और नदों पर उत्तरी भारत में पहुँच चुके थे और वहाँ प्रचुर मात्रा में उनका उपनाम माना था।

अथर्व वेदिका का अर्थ है कि द्रविड़ लोग भारत में देने आये और प्राकृतिक काल से निवृत्त होते हैं कि उनके सम्बन्ध में यह कथना सम्भव नहीं कि वे उत्तर से आकर वहीं रहे—यह देश के आदि निवासी मान्य होते हैं उन्हें बाद ऐसी प्रथा या ऐसे कार्य आचर-नित्य नहीं हैं जिनसे यह कहा जा सके कि वे उत्तर से आकर यहाँ रहे थे और न किसी दूसरी व्यक्ति साथ ही उनका सम्बन्ध मान्य होता है।

इसी प्रकार सर एच. रिसेले X का कथन है कि द्रविड़ लोग इसी देश की निन्दी से उभरे हैं और मूल रूप में वे सिंधु से गंगा की घाटी तक के प्रदेश में रहते थे।

इस प्रकार उत्तर का से ही दक्षिण भारतमें वा वापि निवास करती है वह द्रविड़ जाति के नाम से प्रसिद्ध है। मनुस्मृति आदि प्राचीन भारतीय ग्रंथों में भी द्रविड़ों की गंगा नदीवासीत्वों में ही उल्लेख है। पुराणों के अनुसार ता दक्षिण भारतके सभी निवासी आर्यों की सन्तान थे। यह तक कि शक्य सब राधा भी आप सम्बन्ध था, पुत्र्य स्त्री का पौत्र था। कुछ भी हो द्रविड़ लोग उत्तर में दक्षिण ही मूल निवासी हैं तथा यह सिद्धांत कि वे उत्तर के किसी देश से भारत में आये प्राचीन सिद्धांतों की निषेध करना मात्र है जो मान्य होने वाले नहीं मान्य पत्नी।

७ नया एशिया का इतिहास—यूट साहस्रायन।

८ तामिल इतिहास और संस्कृति—श्री अरुणचन्द्र।

X *The People of India*, Sir H. P. S.

गये। स्थल मार्ग से आने वाले सिद्धांत के समर्थक यह प्रमाण देते हैं कि मद्राचिस्तान के एक भाग में जो ब्राहुइ भाषा बोली जाती है और जो द्रविण भाषा से मिलती-जुलती मानी जाती है वह उहीं लोगों की है जो इस द्रविड़ टोली में से छूट गये थे तथा मद्राचिस्तान में बस गये। इन लोगों का यह भी कथन है कि सिंधु घाटी म जिस प्राचीन नगरी सभ्यता का उद्घाटन हुआ है वह भी इन्हीं द्रविड़ों की है। श्री वेनेडी तथा डा० सुनीतिकुमार चटर्जी भी अनुमान करते हैं कि द्रविड़ों के पू्वज प्रारम्भ म भूमध्यसागर के किनारे रूते थे और वहाँ से ये लोग भारतवर्ष में आये। इसा से लगभग ३५०० इ० पू० में ये लोग भूमध्यसागर से भारत की ओर चले। रास्ते में इनकी शाखायें ईराक और ईरान में भी रह गई जिन्होंने ईराक म सुमेरी सभ्यता की नींव डाली और वहाँ से जा लोग भारत में आये उन्होंने मङ्गोल्टा, हरप्पा आदि स्थानों में सिंधु सभ्यता की स्थापना की।<sup>१</sup>

इनके विपरीत अन्य विद्वानों का अनुमान है कि द्रविड़ लोग दक्षिण भारत के निवासी थे जहाँ से वे समस्त उत्तरी भारत में फैले तथा उहाँ लोगों ने सिंधु घाटी में भी अपनी सभ्यता का प्रसार किया। इस प्रकार ये लोग भी सिंधु सभ्यता को द्रविड़ सभ्यता ही मानते हैं।

दक्षिण भारत के कुछ इतिहास लेखकों का मत है कि द्रविड़ लोग उत्तर पश्चिम की ओर से भारत आये थे और उन्होंने अपने से पहिंचे भारत में आये हुए कोलों को अपद्रव्य कर देश के उपजाऊ प्रदेशों पर अपना अधिकार कर लिया। इनके मतानुसार कोल लग हिमालय के उत्तरी-पूर्वी दरों से भारत में आये थे। बाद में जब द्रविड़ों ने उन्हें भगाया तब कोल लोगों ने जंगलों और पहाड़ों में भागकर शरण ली।<sup>१</sup>

श्री कनक समाई का मत था कि द्रविड़ लोग मंगोल जाति के थे और वे तिब्बत से चत्रर बगाल की खाड़ी को पार कर भारत के दक्षिण के प्रायद्वीप में जा पहुँचे और वही पर बस गये।

इस प्रकार द्रविड़ों ने सभ्य घ में भिन्न भिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न प्रकार के अनुमान लगाये हैं। किन्तु कुछ ऐसे भी विद्वान हैं जो उक्त सभी अनुमानों के विरुद्ध अपना मत रखते हैं। कुछ विद्वानों का कथन है कि जिन ब्राहुइ लोगों को द्रविड़ों की टोली के अवशेष बताकर द्रविड़ों के एशिया माइनर से भारत में आने का सिद्धांत प्रस्तुत किया गया है, उन ब्राहुइ लोगों में तथा द्रविड़ों में नस्ल की भिन्नता है अर्थात् वे भिन्न भिन्न नस्लों के सिद्ध हुए हैं। फलतः होन्डविच बताते हैं कि ब्राहुइ लोग तुर्क मंगोल जाति के

☉ सस्कृति के चार अध्याय श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'।

१ प्राचीन भारत—मूल लेखक श्री निवासचारी तथा श्री रामस्वामी आयरर  
(द्विती अनुवाद) पृष्ठ २०।



विदेशी विद्वानों को भूमध्यसागर, एजियन सागर, सुमेर, बड़चिस्तान आदि स्थानों में द्रविड़ सभ्यता के जो चिह्न दिखाई दिये हैं उसका कारण यही है कि द्रविड़ लोग अत्यन्त प्राचीन काल से कुशल नाविक रहे हैं तथा उनका व्यापार दूर-दूर के देशों से था। प्राचीन तामिल साहित्य में समुद्री व्यापार का पर्याप्त उल्लेख मिलता है। अत्यन्त प्राचीन काल में भी वे लगान्दिया, मिस्र तथा यूनान और रोम तक से व्यापार करते थे। यह भी माना जाता है कि ३००० पृ० द्वितीय सहस्राब्दी में मिस्रका राजा दक्षिण भारत में मलमल, आबूस, दालचीनी तथा अन्य वस्तुएँ मँगाता था। ऐसी अवस्था में द्रविड़ों का निरन्तर आवागमन उक्त दूर दूर के देशों में रहता होगा। यह भी सम्भव है कि उनकी कुछ टोलियों किसी समय स्थल मार्ग से भी भारत वापस आइ हों तथा उनमें से कुछ लोग सुमेर, बड़चिस्तान तथा सिंध में रह गये हों तथा उन देशों की सभ्यता पर इस प्रकार इनका कुछ प्रभाव पड़ा हो। किन्तु वे मूल निवासी दक्षिण भारत के ही हैं।

क्या आर्य बाहर से आये ?

दूसरी बड़ी समस्या है आर्यों की। यूरोपीय विद्वानों की मान्यता है कि द्रविड़ों के बाद आर्य-जाति के लोग भारत में आये और उन्होंने द्रविड़ों को हराकर दक्षिण की ओर दकेल दिया। ये आर्य लोग १५००-३००० पृ० के लगभग भारत के उत्तर पश्चिमी देशों के मार्ग से भारत में आये थे अर्थात् आर्य लोगों को भारत में आये डेढ़ से दो हजार वर्ष ईसा पूर्व से अधिक नहीं हुआ।<sup>1</sup> ये लोग मानते हैं कि इन आर्यों के विशिष्ट गुणों का निर्माण इसा से लगभग ३००० हजार वर्ष पूर्व यूराल पहाड़ के दक्षिण के प्रदेश में हो चुका था। वहाँ से उनके कुछ समुदाय पश्चिम की ओर गये और पोलैण्ड होकर सारे यूरोप में फैले। इनकी दूसरी शाखा यूराल पर्वत के दक्षिण में स्थित अपने मूल स्थान को छोड़कर मध्य एशिया में अथवा काकेशस प्रदेश से होती हुई मेसोपोटामिया में चली गई। फिर वहाँ से कुछ कबीले पूर्व की ओर बढ़कर ईराक में फैले और कुछ अन्य कबीले पूर्वी इरान में होते हुए भारत में बढ़ आये जहाँ वे वैदिक आर्यों के रूप में प्रकट हुए।

यद्यपि इन प्रश्नों के सम्बन्ध में कुछ मतभेद हैं किन्तु यूरोपीय विद्वानों का बहुत बड़ा बहुमत इसी पक्ष का रहा है और उन्होंने अपने मतको बार-बार तथा इतनी दृढ़ता

1 Sometime after 2000 B C the Sanskrit speaking Aryans separated from their kinsmen on the plateau of Iran and began to enter India from North West - History of Mankind II Webster p 68

The nature of our source does not permit any accurate dating of this event (invasion by Aryan tribes) but a general opinion based on such evidence as is available places it about the middle of second millennium B C or the centuries immediately following

से दुहराया है कि इतिहासकारों में यही मत मायता प्राप्त कर चुका है तथा अनेक प्रसिद्ध भारतीय इतिहास लेखक भी इसी मत का समर्थन करते हैं तथा उसे ठीक मानते हैं ।<sup>१</sup> इतना ही नहीं इसने विद्वद् मत रखने वाले को भारतीय सभ्यता का अनुचित पक्षपाती तथा इतिहास से अनभिज्ञ अथवा ऐतिहासिक सत्यों की उपेक्षा करनेवाला कहा जाता है तथा उसके मत की कोई सत्य नहीं समझी जाती ।<sup>२</sup>

भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति पर सबसे बड़ा प्रभाव आय जाति का ही है । अतः यह प्रश्न कि आय कौन थे और कहाँ से आये उड़ा महत्वपूर्ण बन जाता है तथा गम्भीर विचार के योग्य है । इसी कारण यहाँ इस प्रश्न पर कुछ विस्तृत विवेचन तथा विचार किया जाना उचित जान पड़ता है ।

आर्य लोग भारत के मूल निवासी नहीं हैं तथा वे बाहर से इस देश में आये इस मत के मुख्य प्रवर्तक तथा जन्मदाता सुप्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान सर विलियम जोन्स तथा जर्मन विद्वान डा० मेक्समूलर माने जाते हैं । इनका उक्त सिद्धान्त पाश्चात्य भाषा विज्ञान पर आधारित माना जाता है और इसी कारण इस तर्क की सत्य भी मानी जाती है । उनके मत का निष्कर्ष यह है कि उत्तरी भारत से लेकर यूरोप के पश्चिम में आयरलैण्ड तक बोली जाने वाली प्रायः सभी प्रमुख भाषाओं के शब्दों में संस्कृत के शब्दों से समानता पाई जाती है तथा भारत एवं इरान की प्राचीन भाषाओं में ऋग्वेद तथा अवेस्ता की भाषाओं में—तो बहुत अधिक समानता दिखाई देती है । इससे स्पष्ट है कि इन

१ आर्यों का आदि स्थान कहाँ था इस प्रश्न पर तो काफी उहस रही है लेकिन इतना तो निश्चित जान पड़ता है कि आर्य भारतवर्ष में और पश्चिमी एशियामें एक साथ प्रविष्ट हुए और इरानी और भारतीय आर्य करीब २५०० ई० पू० में अलग हुए । भारतीय आर्यों ने इस देश में २००० ई० पू० और १४०० ई० पू० के बीच अफगानिस्तान और हिन्दूकुश के रास्ते से होकर प्रवेश किया और सबसे पहले वे सिन्ध घाटी की उपरली घाटी में बसे । बाद में वे धीरे धीरे आगे बढ़ते हुए गंगा की घाटी में बसे ।

प्राचीन भारतीय पेशभूषा—डा० मोतीचन्द

आर्य कदा से आये यह कहना तो कठिन है पर वे आये कब्र कहाँ बाहर से । वे अपने भाई ईरानी आर्यों को पीछे इरान में छोड़ते सप्त सिंधु में आ बसे ।

—सांस्कृतिक भारत—भगवानशरण उपाध्याय पृष्ठ २६

० कुछ भारतीय विद्वान यह निरास करत हैं कि आय भारत भूमि के आदि निवासी थे उनका मूल स्थान बाहर कहीं न था—परन्तु इस तर्क की विशेष सत्य नहीं है । अनेक प्रुटियों के कारण यह मत शक्य न हो सता ।

—प्राचीन भारत का इतिहास—भगवानशरण उपाध्याय



समस्त भाषाओं की जन्मदात्री कोई एक ही भाषा रही होगी अर्थात् इन भाषा-भाषियों के पूर्वज आरम्भ में एक ही स्थान पर एक ही छत के नीचे रहे होंगे और एक ही भाषा बोलते रहे होंगे। बाद में जीवन यापन की कठिनाइयों के कारण वे वहाँ से चले दिये और भिन्न-भिन्न शाखाओं में विभक्त हो गये। इनमें से कोई शाखा पूरब की ओर गई और कोई पश्चिम की ओर। पश्चिम की ओर जानेवाली शाखा यूरोप तक पहुँची और पूरब की ओर जानेवाली शाखा भारत में आई और पञ्जाब तथा आसपास के क्षेत्रों में बस गई। प्रो० मेक्समूलर के शब्दों में 'किन्तो प्रागैतिहासिक काल में एक ऐसा समय था जबकि भारतीयों, इरानियों, यूनानियों, रोमनों, रूसियों, वेदों और जर्मनों के पूर्वज एक ही छत के नीचे रहते थे।

इस मत के अनुसार प्रायः समस्त यूरोप के लोग उसी परिवार से निकले हैं जिस परिवार के भारतीयों हैं। भारत की ओर आने वाली शाखा की एक टुकड़ी इरान में रह गई। इसी कारण इरान और भारत की प्राचीन भाषाओं—वेद की संस्कृत और अवेस्ता की वेद—में बहुत अधिक साम्य है। पहले इस भाषा परिवार का नाम इण्डो-जर्मन रखा गया था, परन्तु अब यह नाम यूरोप के बहुत से लोगों को पसन्द न आया तो उसका नाम 'इण्डो यूरोपियन' कर दिया गया। ये समस्त जातियाँ इण्डो यूरोपियन जातियाँ और इनकी भाषा इण्डो यूरोपियन भाषा कहलाने लगी। इन्हीं जातियों को बहुत से लोग आर्य भी कहने लगे और इस प्रकार यूरोप की अनेक जातियाँ आर्य मानी जाने लगीं।

यह यह स्मरण रखने योग्य है कि आज के वैज्ञानिक युग में वैज्ञानिक आधार पर प्रस्तुत किये गये मत का ही विशेष आदर होता है। भाषा विज्ञान भी एक विज्ञान है। अतः भाषा विज्ञान के आधार पर प्रस्तुत किये गये आर्यों के मूल स्थान सम्बन्धी उक्त सिद्धान्त को समस्त यूरोपीय विद्वानों ने ही नहीं सभ्यता भर के और भारतवर्ष के भी विद्वानों ने सहज ही स्वीकार कर लिया और आज भी यही सिद्धान्त इतिहासकारों में सबसे अधिक मान्य है।

**आर्यों का आदिस्थान कहाँ ?—**

दूसरा प्रश्न यह था कि आगरि यह स्थान कौन-सा था जहाँ अलग अलग होने से पूर्व उक्त समस्त जातियों के पूर्वज एक साथ रहते थे। यह प्रश्न भी भाषा विज्ञान के नाम पर हल किया गया। कहा गया कि उक्त इण्डो यूरोपियन जाति ( हिन्दुस्थान से यूरोप तक फैली हुई होने के कारण यह नाम रखा गया) अथवा आर्य जाति के लोगों का तथा उत्तरी संस्कृति का सबसे अधिक परिचय हमें वेद तथा अवेस्ता से ही मिलता है तथा भारतीय और इरानी ये दो ही मुख्य जातियाँ हैं जिन्होंने पूर्वजों का एक ही इतिहास बहुत समय तक रखा जा पा रहा है। अतः उनका आदिम स्थान किसी ऐसी

जगह रहा होगा जो भारत और इरान के—वेद और अवेस्ता की माया बोलनेवाले लोगों के—दोनों के ही निकट रहा होगा। ऐसा स्थान मध्य एशिया ही हो सकता है। यही से एक शाखा इरान गई होगी, दूसरी भारत चली आई होगी और तीसरी पश्चिमकी ओर चल पड़ी होगी और चलते-चलते यूरोप के पश्चिमी देशों तक पहुँच गई होगी।

एशिया में हिन्दूकुश पहाड़ के उस पार कास्पियन समुद्र के नीचे पामीर पर्वत की उपत्यका है। यह प्रान्त भारत और इरान दोनों ओर जाने के लिये सुविधाएँ देता है तथा वहाँ से यूरोप जाने के लिये भी मार्ग है। अतः यह निश्चित मान लिया गया कि मध्य एशिया का यही प्रदेश आर्योंका मूल स्थान रहा होगा। इस प्रकार मध्यएशिया का सिद्धांत चल पड़ा।

कुछ विद्वानों का मत है कि इस मध्य एशिया से बाहर जानेवाली आर्यों की पहली दो ही मुराब शाखाएँ थीं जिनमें से एक यूरोप की ओर चली गई और दूसरी भारत की ओर आई, और जो शायद भारत की ओर आई उसी के कुछ लोग इरान में छूट गये अथवा रह गये। इसी कारण भारतीय और ईरानी आर्यों की भाषा में, उपासना विधि में तथा विश्वासों में सबसे अधिक साम्य है। दोनों ही मूर्तियों के दिव्य तत्वों, सूर्य, अग्नि, वायु, चन्द्रमा आदि को देवता मानकर पूजा करते थे।

कई इतिहासकार मेक्समूलर के इस सिद्धांत को तो स्वीकार करते हैं कि भारतीय, ईरानी तथा यूरोपीय आर्यों के पूर्वज प्रारम्भ में एक साथ रहे होंगे, किन्तु वे उस स्थान को मध्यएशिया में न मानकर कौड़े अथवा स्थान मानते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि यह स्थान कृष्ण सागर (ब्लैक-सी) के उत्तर का प्रशस्त यूरोपीय मैदान था तथा कुछ का कथन है कि यह स्थान दक्षिणी रूस के स्टेपीज में है। 1 हाल में रूस के एक पुरातत्व विद ने यह सिद्ध किया है कि आज जाति के पूरज पूर्वी यूरोप के स्टेपीज अथवा दक्षिण रूस के कोसस्मिया प्रांत में रहते थे जहाँ से चलकर वे मध्य एशिया में गये और वहाँ से भारत आदि देशों में गये। 2 श्री गाइगर तथा कुछ अन्य लेखक इन आधार पर कि

1 *The original home of Aryans appears to have been Southern Russia from which they spread out in several directions. The Indo Aryans and Iranians on the other hand moved eastward across the Steppes where they proceeded to found there two great nations in India and Iran—Lucy Brill Vol VII India ancient history*

2 *Pecan's Archaeological Discoveries in Chorasmia in connection with some problems of ancient history of India—by Dr S P Tolstov (Modern Review December 1953)*

आर्य तथा जमन भाषाओं में अधिक साम्य है—आर्यों का मूल निवास पश्चिमी जर्मनी अथवा जर्मनी और स्वीडन नावों का अंतरीप मानते हैं तथा गाइल्स के मत से वह भू-भाग आस्ट्रिया और बाहेमिया का सम्मिलित भू-भाग है। अथ लोंगों की राय में यूरोप के उत्तर में यूराल पहाड़ से लेकर अटलांटिक महासागर तक जो लम्बा मैदान है उसी में आर्य जाति और भाषा का विकास हुआ। कुछ लेखकों के अनुसार मध्य तथा पूर्वी यूरोप से अर्ध गुमकड़, अर्ध स्थायी विरस लोग दलों में दक्षिण और पश्चिम, दक्षिण पूव और उत्तर पश्चिम में चल पड़े और प्राचीन काल की ग्रीक, थ्रेसियन, फीजियन, आर्मीनियन, आर्य (हिन्दी ईरान) जमन, केव्ट तथा इटालनी संस्कृति स्थापित की। बाद में हिन्दी यूरोपीय लोगों से हिन्दी इरानी दल अलग हो गया और एक भिन्न जलयापु वाले देश की ओर चल पड़ा। श्री ह्यू विंकेलर नामक जर्मन पुरातत्वज्ञ जिन्होंने मितन्नी (बोगजकोई) के सुप्रसिद्ध लेख में अनुसंधान किया आर्यों को उत्तरी मेसोपोटामिया अर्थात् मितन्नी का ही मूल निवासी मानते हैं और हिताइत लोगों के साथ भी उनका सम्बन्ध बताते हैं। इसी प्रकार प्रो० वाडेल आर्य लोगों को सुमेरी मानते हैं क्योंकि सुमेर में भी आर्य प्रभाव दिखायी देता है।

तात्पर्य, यूरोपीय विद्वानों को एशिया में अथवा यूरोप में जहाँ कहीं भी प्राचीन आर्यों के जीवन से मिलते जुलते कुछ चिह्न दिखाई देते हैं अथवा आर्य सभ्यता का कुछ प्रभाव दिखाई देता है वही वे आर्यों के मूल निवास की कल्पना कर बैठते हैं और एक नया सिद्धांत खड़ा कर देते हैं।

आर्य लोग मध्य एशिया से या अथ किसी स्थान से भारत में बन आये इस सम्बन्ध में भी इतिहासकारों ने अपने अपने मत प्रकट किये हैं जो बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। केम्ब्रिज इतिहास के लेखक श्री रेपसन का मत है कि वैदिक आर्य इसा से लगभग २५०० वर्ष पूर्व के आदर ही भारत में आये और तभी से भारतीय आर्यों का इतिहास आरम्भ होता है। +

कुछ लोगों का मत है कि आर्यों का भारत में आगमन दो दलों में हुआ। पहला दल जो प्रधान दल था, अफगानिस्तान तथा गैर पागो होता हुआ पञ्जाब चला आया और दूसरा दल गंग में चित्राल, गिलगिट और गंगातरी के दुर्गम भाग से हाता हुआ भारत में उतरा। यही दो दल सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी नाम से प्रसिद्ध हुए। ये बातें के लोग गंगा और जमुना के मध्यवर्ती प्रदेश में बस गये तथा पुरूरवा की कथा इसी प्रदेश से सम्बन्ध रखती है।

• प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास—श्री रामय रावत ।

+ Cambridge History of India - E J Rapson Vol I p 72

अधिकांश यूरोपीय इतिहासकार तो भारत में आर्यों का आगमन बाहर से हुआ मानते ही हैं। कुछ भारतीय विद्वान भी इसी मत का मानते हैं। इनमें प्रमुख स्वर्गीय लोनमाथ वाल गगाधर तिलक हैं। वे आर्यों का मूल स्थान मध्य एशिया नहीं किन्तु उत्तरी ध्रुव मानते हैं। उनसे कथन का सारांश यह है कि अति प्राचीन काल में उत्तरी ध्रुव प्रदेश इतना ठंडा नहीं था जितना कि वह आज है तथा निवास के योग्य था। बाद में जब हिमयुग में वहाँ पर वह ठण्ड असह्य हो गई तब आय लोग वहाँ से निकट पड़े और इधर उधर घूमते हुए तथा टहरते हुए भारत में आये। यह काल ८१० हजार वर्ष पूर्व था।

महाराष्ट्र के एक दूसरे विद्वान श्री नारायण राव पावगी का मत है कि आर्यों का मूल स्थान तो भारत ही था किन्तु सम्भवन उसके उपनिवेश उत्तरी ध्रुव तक बसे हुए थे और वही से लौट कर वे फिर भारत में आये थे।† काशी के विद्वान लेखक श्री सम्पूर्णानन्द का वही मत है कि आर्यों की आदि भूमि भारत की उत्तमिधु प्रदेश में थी जहाँ से सम्भव है आर्यों के कुछ दल किसी कारण से उत्तरी ध्रुव में पहुँच गये हों और फिर हिम युग के कारण वहाँ से लौटकर भारत आये हों। श्री राहुल साह्यायन का मत है कि भारतीय आय इस से डेढ़ हजार वर्ष पहले भारत पहुँचे।‡ यह मत यूरोप के लेखकों से मिलता-जुलता है।

कलकत्ता विद्यालय के पूर्व प्रोफेसर श्री अविनाशचन्द्र दास पहले भारतीय विद्वान हैं जिन्होंने ऋग्वेद के गहन अध्ययन तथा अन्य प्रमाणों एवं युक्तियों के आधार पर आर्यों के बाहर से आने के सिद्धान्त का तर्कपूर्ण खण्डन किया तथा अनेक युक्तियों से यह सिद्ध किया कि आर्य लोग कहीं बाहर से भारत में नहीं आये बल्कि भारत के उत्तमिधु प्रदेश के ही मूल निवासी थे। यही उनका मूल स्थान था। यही उनकी सम्पत्ता का विरासत हुआ था यही से वे भारत के अन्य प्रांतों में फैले। उन्होंने यह भी सिद्ध किया कि आर्य सम्पत्ता इस से डेढ़ दश हजार वर्ष पूर्व की नहीं, बल्कि २०-२५ हजार वर्ष पुरानी है। श्री सम्पूर्णानन्द भी इसी मत के समर्थक हैं तथा ओरक प्रांतों में उन्होंने श्री दास के मत को उचित माना है।

वालर में भारतीय परम्परा, ऋग्वेद के मंत्र साहित्यिक एवं अन्य प्रमाण श्री अविनाश चन्द्र दास के मत का ही समर्थन करते हैं। अतः यही मत सबसे अधिक युक्तियुक्त तथा तर्कपूर्ण दिखता देता है। आर्यों का सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद है। इसे वालर के सभी विद्वानों ने स्वीकार किया है। किन्तु ऋग्वेद में अथवा अन्य किसी प्राचीन ग्रन्थ में इस बात का कहीं उल्लेख नहीं मिलता, कोई खेत तक नहीं मिलता कि आर्य लोग उत्तमिधु

+ *The Aryavartie home and its colonies—N Pooji*

‡ मंत्र एशिया का इतिहास भाग २ अध्याय ५।

में जो भारत में उनका निवास स्थान था, वहीं बाहर से आकर उसे हों। प्रायः यह देखा जाता है कि जो जातिवा किसी एक देश से दूसरे देश में जाकर प्रसती हैं वे प्रायः अपने मूल-स्थान का स्मरण रगती हैं तथा उनकी परम्पराओं में भी यह बात चलती रहती है। प्राचीन सुमेर के लोगों में यह परम्परा सुदृढ़ थी कि उनके पूर्वज पूर्व दिशा के किसी देश से वहा पहुँचे थे तथा वे समुद्र के मार्ग से वहा आये थे। इरानी आर्यों के प्रायः अवेस्ता में भी ऐसे संकेत मिलते हैं कि उनका आदि स्थान वहीं और था। इसे उन्होंने 'आर्यान्म वेजो' कहा है किन्तु भारतीय आर्यों में ऐसी कोई परम्परा नहीं रही। वेदों में—विशेषतः ऋग्वेद में—सप्त सिंधु का देश ही उनका घर प्रतीत होता है। वे वहा की भूमि की, नदियों की स्तुति करते हैं। सिंधु की महिमा का उल्लेख ऋग्वेद के दशम मण्डल (सूक्त ७५ मंत्र ७) में मिलता है तथा सरस्वती का वणन अनेक स्थानों में (१३-११, ६-६१-२, ६-६१-१२, ७ ६५ ४) में मिलता है।।

फिर यदि भारत के वेदों में ऐसा उल्लेख नहीं है तो किसी अन्य देश के प्राचीन आर्यों में ही—जहाँ से भी आर्य आये हों—ऐसा उल्लेख मिलना चाहिये था अथवा ऐसी परम्परा होनी चाहिये थी कि वहाँ के आर्यों ने भारत को तथा अन्य देशों को जीता था तथा वहा सभ्यता का प्रसार किया था, किन्तु अन्य देश में भी न ऐसा कोई उल्लेख मिलता है, न ऐसी कोई परम्परा ही है। यदि यह माना जाय कि उस देश के—मध्य एशिया का अथवा अन्य किसी देश के जहाँ से भी आर्य बाहर गये सभी मनुष्य अपना देश छोड़कर बाहर चले गये थे अतः वहाँ परम्परा के लिये कोई स्थान ही नहीं रह गया था तो यह भी विचारणीय है कि वहा के एकदम सभी लोग अपना मूल स्थान क्यों छोड़ गये ? यह देश एतन्म आय शून्य क्यों हो गया ?

फिर यह बात भी विचारणीय है कि यदि अन्य लोग किसी बाहर के देश से भारत में आये होते तो लगभग १०० वर्ष की खोज ग्रीनके बाद कुछ तो प्रमाण ऐसे मिलते जिनसे उनका मूलस्थान निश्चिन्त रूप से बताया जा सकता, किन्तु उक्त सिद्धांत तो आज तक कबला न आधार पर ही चल रहा है, मध्य एशिया का सिद्धांत बहुमाय होते हुए भी अब भी सर्वमाय नहीं है और यूरोपीय विद्वान आर्यों के मूल स्थान का पता लगाने के लिये अब भी जगल में ही भटक रहे हैं।

एक अन्य दृष्टि से भी आर्यों के बाहर से आने के सिद्धांत का खण्डन होता है। ऋग्वेद (मण्डल १० सूक्त ७५) में यज्ञ की नदियों के नाम आये हैं यथा —

हम न गगे यमुने सरस्वति शुतुद्रिन्तोम सचता परुष्ण्या ।

अश्विन्त्या मग्द्वय विन्हावाजीकीये भृगुया मुनीमया ॥१०॥७५॥५॥

। आर्यों का आदि देश—भी सम्पूर्णानन्द ।

इस मंत्र में नदियों का क्रम गंगा, यमुना, सरस्वती, गतुद्रि (सतलज), परुष्णी (रावी) अमिस्नी (चनाब), मरुद्दृषा (व्यास) तथा वितस्ता (भेलम) मिश्रता है अर्थात् पूर्व से पश्चिम की ओर। यदि आर्य भारत में उत्तर पश्चिम की दिशा में आये होते तथा धीरे-धीरे पूर्व की ओर अर्थात् गंगा, जमुना की ओर बढ़े होते तो नदियों का क्रम उसी प्रकार से अपात् पश्चिम से पूर्व की ओर होना चाहिये था। उक्त मंत्र यही साबित करता है कि समस्त पञ्जाब तथा गंगा जमुना का प्रदेश प्रारम्भ से आर्यों का ही प्रदेश था।

नदियों के उक्त क्रम के अतिरिक्त कुछ ऐसे अथ उल्लेख भी मिलते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि गंगा-यमुना के दुआबे में प्राचीनकाल में आर्य सभ्यता का विस्तार था। भारत सरकार के सूचना-विभाग के एक लेख में भी कहा गया था कि—गंगा-यमुना के दोआब में प्राचीन आर्य सभ्यता का विस्तार था तथा यह विद्वानों करने के कारण मौजूद हैं कि कई प्राचीन नगर यमुना के उस पुराने मार्ग पर स्थित थे जहाँ अब पूर्वी यमुना नहर बहती है।<sup>1</sup>

इसी सम्बन्ध में विन्म सभ्यत् से ३-४ सौ वर्ष पूर्व के भारतीय विद्वानों के आचार पर मेगस्थनीज ने लिखा है—कहा जाता है कि भारत अनगिनत और विभिन्न जातियों से बसाया गया है इनमें से एक भी मूल में विदेशी नहीं थीं बल्कि उनकी सभ्यता इसी देश की थी।<sup>2</sup>

इस प्रकार भाषा विज्ञान पर आधारित कष्ट जाने वाला आर्यों के भारत में बाहर से आने का सिद्धांत वास्तव में दुनल आधारों पर स्थित एक कल्पना मात्र है तथा वास्तव में आर्य लोग भारत के ही मूल निवासी सिद्ध होते हैं।

इस सम्बन्ध में डा० सरयनारायण का विवेचन भी उल्लेखनीय है। उनका कथन है, "भाषा विशेषज्ञ यह सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं कि यदि बहुत नदी सरयामें आर्य धारे यूरोप में नहीं उसे तो उनकी भाषा कैसी कैसे? पर भाषा न इस प्रकार के लिये उससे जोलने वाले एक ही पूर्वजों का होना कुछ जरूरी नहीं है। यह निश्चित है कि प्राचीनकाल में भारत का वास्तव विशेषकर व्यापारिक सम्बन्ध दूर दूर के देशों से था। आर्य भाषा कुछ तो इस प्रकार नहर जा सकती थी और श्रवण ही गई भी होगी। दूसरे आर्यों के आदि निवास से समय समय पर कुछ लोग अन्तर्गत और इधर उधर

1 The early Aryan Civilisation flourished in the Ganga Jamna Doab There is reason to believe that several ancient towns lay on an old course of the Yamuna now followed by the Western Jamna Canal Some Ancient towns of the Punjab by Dr J D Sharma - Pre s note dated 21 S 1951

2 हमायुन देन—डा० सरयनारायण पृष्ठ ७३।

फैले। वे जहाँ पहुँचे वहाँ तालों की अपेक्षा अधिक सम्पन्न और जीवन समृद्ध के लिये अधिक समृद्ध थे। इसलिये उनकी धारणा फैल गई और आय भाषा सर्वत्र फैल गई।

उपयुक्त सभी प्रमाणों से यह बात सिद्ध होती है कि आर्यों का आदि निवास भारत का उत्तरपश्चिम प्रदेश है और वही से वे ईरान, इराक, सीरिया तथा उसके पश्चात् मिस्र, यूनान तथा यूरोप के अनेक देशों में फैले तथा प्रत्येक स्थान पर उन्होंने अपनी उच्च सभ्यता की छाप छोड़ी। यदि आज भी उन देशों की भाषाओं पर तथा उनकी सभ्यता पर आय भाषा तथा संस्कृत की छाप दिखाई देती है तो उसका कारण यही है कि आर्यों की भाषा तथा सभ्यता की उन विठड़े हुए लोगों की भाषा तथा सभ्यता पर इतनी गहरी छाप पड़ी कि उसके चिह्न आज तक स्पष्ट दिखाई देते हैं।

इस सम्बन्ध में कुछ विद्वानों ने यह शक उठाई कि भारत प्राचीन काल में भी धन धान्य से पूरित देश था फिर वहाँ से आय लोग इतनी बड़ी संख्या में अपना देश छोड़कर बाहर क्यों गये? यह शक अत्यन्त निर्वन्त है। आगे इसी अध्याय में उन कारणों पर प्रकाश डाला गया है जिनसे आर्यों के बहुत से दलों को विवश होकर देश से बाहर जाना पड़ा। इसके अतिरिक्त बहुत से लोग व्यापार न हेतु भी बाहर गये। हम सभी मानते हैं कि ईसवी सन् के प्रारम्भ के लगभग आर्यों द्वारा पूर्य की दिशा में बढ़कर नुमात्रा, जावा वालो, मलय आदि टापुओं और देशों में आर्य उपनिवेशों की स्थापना की गयी थी। क्या इस ऐतिहासिक तथ्य को असत्य ठहराया जा सकता है? तब क्या उस समय भारत में धन-धान्य की इतनी कमी हो गई थी कि लोगों को जीविकार्थ के लिये बाहर जाने के लिए विवश होना पड़ा। उन दिनों भारतकी जनसंख्या भी इतनी नहीं बढ़ी थी कि इस देशमें उन लोगों के लिये स्थान न रहा हो। वस्तु में वे व्यापार तथा अन्य कारणों से बाहर गये। इसी प्रकार अति प्राचीन काल में भी कुछ तो पारस्परिक संधय से बचने के लिये तथा कुछ व्यापारदि कारणों से बहुत से लोगों को देश से बाहर जाना पड़ा।

### पृथ्वी के दोहन की कथा—

आर्यों की आदि निवास भूमि यही थी और इसी भूमि पर उनकी सभ्यता का प्रारम्भिक विकास हुआ इसका आधार पुराणों में भी मिलता है। वायु पुराण (अध्याय ६२) में पृथ्वी के दोहन की कथा है जो वास्तव में सभ्यता के विकास—पृथ्वी से अनाज, मृत्तिका द्रव्य आदि प्राप्त करने—का ही एक रूपक है, क्योंकि भूमिसे कृषि द्वारा अन्न प्राप्त करना धातुओं का उपयोग करना यही सभ्यता की सीढ़ियाँ हैं। पुराणों की कथा इस प्रकार है कि एक बार राजा प्रथु, (मनु पुत्र इक्ष्वाकु के वंश के पाँचवें राजा जिन्होंने नाम पर ही इस भूमि का नाम पृथ्वी पड़ा) पृथ्वी को निरर्थक समझकर उसे मार डालना चाहते थे। तब पृथ्वी ने गौ रूप धारण कर लिया और प्रथु ने कहा—राजा! यदि तুম अपनी प्रजा

का कल्याण करना चाहते हो तो मुझे मत मारो—मैं अन्न रूप में परिणत हो जाऊँगी । तब परम ऐश्वर्यशाली प्रभु ने चातुष मनु को बटुड़ा बनाकर अपने करतल में अन्न रखि का पृथ्वी से दोहन किया । इसी प्रकार अनेक बार पृथ्वी का दोहन किया जाना वर्णित किया गया है । इसका अर्थ पृथ्वी से भिन्न-भिन्न वस्तुएँ—अन्न, सोना चांदी आदि तनिज पदार्थ प्राप्त किया जाना ही जान पड़ता है ।

पुराणों की उक्त कथा से यह भी ज्ञात होता है कि उन दिनों पृथ्वी प्रायः असमतल अर्थात् ऊँची नीची थी और जड़ा-जड़ा पृथ्वी एकसमान थी अथवा समतल बना ली गई थी, वरना प्रजा-जन आ-आकर अपने निवास बनाकर रहने लगे । ऐसा जान पड़ता है कि राजा प्रभु के समय तक मनुष्यों का आहार प्रायः फल मूल आदि ही रहा होगा, जिससे निर्वाह में कठिनाई हाती थी । किन्तु प्रभु के कार्यकाल में ही भूमि समतल की जाकर उसने योग्य बनाई गयी, फिर कृषि द्वारा अन्नोत्पादन किया गया तथा फिर भूमि के भीतर से अनेक प्रकार की धातुएँ भी प्राप्त की गई । इस प्रकार पृथ्वी का दोहन प्रारम्भ हुआ और यह दाहन आज तक उसी प्रकार चल रहा है । भूमि का दाहन राजा प्रभु के ही समय में आरम्भ होने के कारण इसका नाम पृथ्वी हुआ । धुगणों के अनुसार यह वैश्वत मनु के काल की घटना है । पाषाण युग के पश्चात् कृषि और धातु युग का यह प्रारम्भ जान पड़ता है ।

उक्त पौराणिक कथा का भी अर्थ यही निरलता है कि आर्य लोग सभ्यता के आरम्भ काल से—पाषाण युग से—इसी भूमि पर रहे हुए हैं तथा वहीं उनकी सभ्यता का विकास हुआ । इसका अर्थ भी यही है कि आर्यों का आगमन इस देश में बाहर कहीं से नहीं हुआ—वे आरम्भ से वहीं पर बसे थे ।

### धातु काल—

धातु युग भारत में कब और किन प्रकार आया इस सम्बन्ध में विद्वानों की भिन्न भिन्न कल्पनाएँ हैं । पहिले यह अनुमान था कि उत्तर भारत में पूव पाषाण काल तथा उत्तर पाषाण काल के पश्चात् ताम्र काल आया और उस के पश्चात् लौह युग आया—परन्तु दक्षिणी भारत में उत्तर पाषाण काल के पश्चात् जिसे नव पाषाण काल भी कहते हैं एक दस लाख का युग आ गया अर्थात् यहाँ ताम्र काल आया ही नहीं । इसका कारण यह था कि उत्तरी तथा मध्य भारत के कद स्थानों में तो ताम्रके हथियार, औजार मिलते थे अर्थात् उत्तरी भारत में कानपुर, पतहाड, मनपुरी, मथुरा आदि में तथा मध्य भारत के भी कुछ स्थानों में ताँबे की तलवारें, मालों की मूट्टे आदि पाई गई परन्तु दक्षिणी भारत में ऐसे कोई हथियार नहीं मिले हैं । परन्तु अब यह भी धारणा बदल गई है क्योंकि दक्षिणी भारत के भी कद स्थानों पर ताँबे और कसे के औजार मिले हैं और वे ऐसे



अब इस मत पर थोड़ी गभीरतासे विचार करने की आवश्यकता है। यह सत्य है कि ऋग्वेद किसी एक काल का अथवा किसी एक व्यक्ति का बनाया हुआ ग्रन्थ नहीं है, उसने भिन्न भिन्न सूक्त, चिनकी सत्त्वा एक सहस्र से अधिक है, भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न ऋषियों द्वारा तथा भिन्न-भिन्न समयों में बनाये गये हैं जिनके निर्माण काल में सौ दो सौ वर्षों का नहीं सहस्रों वर्षों का अन्तर रहा होगा। ऋग्वेद के कुछ मन्त्र विद्वानों द्वारा अत्यन्त प्राचीन बनाये जाते हैं। उदाहरणार्थ जिस मन्त्र में सरस्वती नदी का समुद्र में मिलना बताया गया है वह अधिक प्राचीन होगा, क्योंकि वह समुद्र आज का अरब सागर नहीं, बल्कि समुद्र था जो पूवकाल में राजपूताना के स्थान पर था और जिसका अन्तर्भाग ज भी सागर भ्रूल के रूप में मौजूद है। जैसा श्री अविनाश चन्द्र दास ने बताया है। दृङ्गलैण्ड के प्रसिद्ध लेखक एच० जे० वेन्स के मतानुसार वह समय ५० हजार वर्ष पूर्व से लेकर २५००० वर्ष पूर्व तक का था।

इसे दृष्टि में रखते हुए अब हम श्री मेन्समूलर के मत पर विचार करते हैं तो वह अत्यन्त सङ्कुचित तथा गिन्नल आधारों पर स्थित दिखाई देता है जैसा कि ऊपर कहा गया है। ऋग्वेद को अब संहिता रूप में प्राप्त होता है, भिन्न भिन्न ऋषियों द्वारा विभिन्न समयों तथा स्थानों पर बनाये हुए मन्त्रों का संग्रह है। श्री वेरीडेल कोय का भी मत है कि इन मन्त्रों का रचना बहुत दीर्घ समय तक तथा भिन्न भिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न समुदायों के ऋषियों द्वारा हुई तथा बाद में इन सब मन्त्रों का संग्रह हुआ। श्री विटर निश के मत से भी ऋग्वेदिक साहित्य के स्तरों में शताब्दियों का अन्तर है। यह अन्तर सौ दो सौ वर्ष का माना पर्याप्त नहीं बल्कि यह अन्तर सहस्रों वर्षों का रहा होगा क्योंकि जैसा कि सब उचित है वदों का संहिता रूप में संग्रह श्री कृष्ण द्वैयापन व्यास ने महाभारत के लगभग किया और यह काल कुछ विद्वानों के मत से डेढ़ हजार वर्ष पूर्व १००० पू० तथा अन्य विद्वानों के मत से ३००० ई० पू० था तथा यह भी शक्य होता है कि संहिताओं में कुछ मन्त्र ऐसे भी हैं जो संग्रह होने के थोड़े ही दिन पूर्व बनाये गये थे तथा इस प्रकार के प्राचीन मन्त्रों से सहस्रों वर्ष पीछे के हैं।

फिर ऋग्वेद के पश्चात् यजुर्वेद बना और इसके बनने का समय भी विद्वानों के मतानुसार ऋग्वेद से बहुत बाद का है क्योंकि दोनों वेदों को सामग्री को देखने हुए उनके काल में बहुत अन्तर होना स्पष्ट दिखाई देता है। यजुर्वेद काल में आर्य सभ्यता का उत्तम सतसिन्धु से हटकर पञ्चाल देश बन गया था। फिर सामवेद बना और फिर अथर्ववेद। अथर्ववेद की रचना बहुत बाद में हुई मानी जाती है फिर भी सम्भवतः यह ब्राह्मण ग्रन्थों के निर्माण के पूर्व ही बना था।

वेदों के पश्चात् ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना हुई और यह रचना उस समय में हुई जब लोगों को वेदों का अर्थ समझना ही कठिन हो गया था। ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना का उद्देश्य ही वैदिक कमवाण्ड को स्पष्ट करना तथा वैदिक मंत्रों की व्याख्या करना था। कितने ही स्थानों जो वेदों में गुह्य तथा अस्पष्ट थे ब्राह्मणों में कथा रूपमें स्पष्ट किये गये। इसका अर्थ ही यह है कि ब्राह्मण ग्रन्थों के निर्माण काल में वेद ग्रन्थ काफी प्राचीन हो चुके थे और उनका अर्थ समझना कठिन हो रहा था। यह काल सौ दो सौ वर्ष का अथवा दो चार पीढ़ी का नहीं हो सकता बल्कि सदियों वर्षों का ही रहा होगा। फिर ब्राह्मण ग्रन्थ भी एक-दो नहीं बल्कि अनेक हैं जो समूचे समूह एक साथ ही नहीं बन गये होंगे। उनके बनने में भी सैकड़ों वर्ष लगे होंगे। प्रत्येक वेद के अपने ब्राह्मण ग्रन्थ हैं जैसे ऋग्वेद के ऐतरेय तथा कौपीतकी एवं बजुर्वेद का शतपथ। यह भी ज्ञात होता है कि ब्राह्मण ग्रन्थों के निर्माण-काल में आप लोग प्रायः समस्त भारत से—गांधार और बाल्टीर से लेकर मगध और अजमेर तक—परिचित हो गये थे। अतः यह काठ भी वेदों के काल से काफी बाद का रहा होगा—सैकड़ों वर्ष बाद का।

ब्राह्मण ग्रन्थों के बाद आरम्भ होने लगे वेद-विद्वान्मान में ब्राह्मणों के जन्म में जुड़े हुए मिलते हैं परन्तु मूत्रा के ब्राह्मणों ने बहुत ज्ञान में बने होंगे। ब्राह्मणों तथा आर्यकों के बाद उपनिषदों का जन्म चला। इनमें दर्शन सम्बन्धी गहन चिन्तनपूर्ण विचार हैं। उपनिषद भी दो चार नहीं बल्कि अनेक हैं। मुख्य मुख्य उपनिषद ही १५-२० माने जाते हैं—ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, नन्दारण्यक, उद्देश्य आदि। ये उपनिषद भी एक साथ अथवा सौ पचास वर्षों में न बन गये होंगे।

उपनिषदों के बाद उस नये प्रकार के साहित्य का प्रारम्भ हुआ माना जाता है जो पूरा साहित्य कहलाता है—धर्मशास्त्र, श्रौतशास्त्र, गृह्यशास्त्र आदि के ग्रन्थ अलग-अलग बने। इनके बनने में भी काफी समय लगा होगा। इनके अतिरिक्त वे भी अनेक ग्रन्थ हैं जिनकी गणना 'वेदान्त' में की जाती है। निरुक्त, छन्द, वशातिर, व्याकरण आदि इनका निर्माण भी वेदों के अर्थ को स्पष्ट करने के उद्देश्य से ही हुआ था। इनमें से भी अधिकांश ग्रन्थों की रचना उदालाल ने पूरा ही चुकी थी। उदाहरणार्थ व्याकरण महर्षिद्विजा निरुक्त ६ वीं अथवा ७ वीं शताब्दी ई० पू० की रचना समझी जाती है। पाणिनि का मुसिद्ध व्याकरण, अष्टाध्यायी यत्रि ५ वीं शताब्दी ई० पू० की रचना समझी जाती है, परन्तु पाणिनि से भी पूर्व व्याकरण के अनेक रचयिता हो चुके थे—पास्ययान, भारद्वाज, इन्द्र, वृहस्पति, शाकल्य, व्यासिलाल, गार्ग्य, मालाया, सोनक, बहस्प आदि जिनका उल्लेख पाणिनि ने स्वयं अपने ग्रन्थ में किया है। इसी प्रकार वशातिर ग्रन्थों का रचना काल लोकमान्य तिलक के अनुसार १४०० ई० पू० है।

इस प्रकार ऋग्वेद से लेकर वेदांग ग्रन्थों तक एक विशाल साहित्य युद्ध के पूर्व तक निर्मित हो चुका था। उसार के किसी भी प्राचीन देश में उस प्राचीन काल में इतना साहित्य निर्मित नहीं हुआ। इस समस्त विशाल साहित्य को ५६ सौ वर्ष में निर्मित मानना अत्यन्त अनुदार तथा सङ्कुचित दृष्टिकोण का ही परिचायक है। श्री अविनाश चन्द्र दास वेदों से लेकर वेदांग तक का काल १५२० हजार वर्ष मानते हैं।<sup>1</sup>

यदि श्री दास के मत को अत्युक्तिपूर्ण भी माना जाय तब भी श्री मेक्समूलर का मत तो किसी प्रकार युद्धिगम्य तथा ग्राह्य नहीं है। इस काल की गणना कई अन्य विद्वानों ने भी विभिन्न आधारों पर की है। इनमें सबसे अधिक युद्धिगम्य सिद्धांत लोकमाय तिलक का है। उनका अनुमान श्री मेक्समूलर जैसा केवल कल्याण पर आधारित नहीं त्रिक ज्योतिष तथा गणित जैसे विज्ञान पर आधारित है। सद्येन में उनका तर्क यह है कि वेदों के रचना काल में नयी ही गणना मृगशिरा नक्षत्र से प्रारम्भ होती थी। आज के समान अग्निनी भरणीसे ही अर्थात् मृगशिरा ही सबसे पहला ज्ञान गिना जाता था तथा रात दिन प्रसर होना भी इसी ज्ञान के रूप में होता था। ज्योतिष के अनुसार वर्ष में दो बार रात दिन प्रसर होते हैं। २१ मार्च तथा २१-२२ सितम्बर को जबकि सूर्य पृथ्वी की भूमध्य रेखा के नीचे में आता है। इसी को वसन्त तथा शरद सम्रात कहते हैं। लोकमाय तिलक ने ज्योतिष के इस सिद्धांत के आधार पर कि एक नक्षत्र पर १००० वर्ष का काल विषुव सम्रात का काल होता है तथा ऋग्वेद में वसन्त सम्रात मृगशिरा नक्षत्र में होने का उल्लेख मिलता है यह निश्चित किया कि वेदों का रचना-काल लगभग ४५०० वर्ष ६० पू० है यह अनुमान न अत्युक्तिपूर्ण जान पड़ता है न सङ्कुचित।

भारत के एक अन्य ज्योतिषी का दावा है कि ऋग्वेद का रचना काल १५००० ६० पू० से बाद का नहीं हो सकता।<sup>2</sup> हिन्दी के विद्वान तथा अध्येक श्री भगवद्दत्त का दृढ़ विश्वास है कि इसा से लगभग ७ हजार वर्ष पूर्व ऋग्वेद के दशम मण्डल का नासदीय सूक्त तथा अन्य सूक्त अस्तित्व विद्यमान थे तथा इससे कम समय तो हो ही नहीं सकता।<sup>3</sup> श्री भगवन्तशरण उपाध्याय का मत है कि ३००० ६० पू० का समय ही ऋग्वेद की प्रारम्भिक श्रुचाओं के निर्माण का काल जान पड़ता है।<sup>4</sup> यद्यपि श्री उपाध्याय अन्यत्र<sup>5</sup> भारत में आर्या का आगमन १५०० ६० पू० में ही मानते हैं।

1 *Rigvedic India - Abinav Chandra Das Chapter XII*

2 श्री नेतारनाथ राज्यज्योतिषी — 'वेदों का काल निर्णय', दैनिक हिन्दुस्तान अगस्त १९६६

3 भारत का प्राचीन इतिहास — श्री भगवद्दत्त पृष्ठ ७८

4 भारत का प्राचीन इतिहास — श्री भगवन्तशरण उपाध्याय ऋग्वेद का काल परिशिष्ट पृष्ठ ३६

5 पारुतिक भारत — श्री भगवन्तशरण उपाध्याय पृष्ठ २४-२५

अनेक यूरोपीय विद्वानों ने भी ऋग्वेद के कालके समय के विचार किया है। प्रो० विन्सन उसे १२ वीं सदी ६०० पू० से २० वीं सदी ६०० पू० तक मानते हैं। श्री बुहलर तथा पिटर निश के अनुसार वैदिक साहित्य ३००० इ०पू० का है तथा भारतीय सस्कृति चार हजार वर्ष ६०० पू० की है। जर्मन विद्वान जैकोबी ने ज्योतिष गणना के ही आधार पर ऋग्वेद का रचना काल ६ हजार वर्ष ६०० पू० के लगभग निश्चित किया। यह मत लोकमाय तिलक के मत से मिलना सुलभ ही है, क्योंकि लोकमाय तिलक ऋग्वेद के अनेक मंत्रों का रचना-काल ४५०० इ०पू० से पूर्व का मानते हैं। अतः यूरोपीय विद्वानों में से श्री जैकोबी का मत अधिक साधारण तथा ग्राह्य है।

जैसा कि ऊपर कहा गया लोकमाय तिलक के मतानुसार जहाँ बहुत से मंत्रों का समय ४५०० इ० पू० का है वहीं अनेक मंत्रों का समय इससे बहुत पुराना है। उदाहरणार्थ ऋग्वेद के एक मंत्र ( ३३६-२ ) में कहा गया है कि बहुत प्राचीन काल में पूर्वज लोग वेद मंत्रों का गान करते थे। इसका अर्थ यह है कि ऋग्वेद के मंत्र निर्माता ऋषि अपने से भी बहुत पहले के काल की ओर संकेत करते हैं तथा इस प्रकार हमें बहुत पीछे की ओर ले जाते हैं। अगला यह कहा जा सकता है कि ऋग्वेद के बहुत से मंत्र बनने के समय से भी बहुत पूर्व कुछ प्राचीन ऋषियों द्वारा वेद मंत्र उताये जा चुके थे। तथा पुराने ऋषियों द्वारा उनका मान भी होता था। इस प्राचीन काल का अनुमान करना कठिन है।

इसी प्रकार ब्राह्मणों के रचना काल के सम्बन्ध में भी विद्वानों ने अनुमान लगाये हैं। लोकमाय तिलक के अनुसार ब्राह्मणों के कालमें कृत्तिका नक्षत्र से नक्षत्रों की गणना होने लगी थी तथा कृत्तिका नक्षत्र में ही रात दिन गणना होते थे और यह काल सगोल तथा ज्योतिष के सिद्धांतों के अनुसार आज से लगभग ४५०० वर्ष पुराने अथवा २५०० इ० पू० से २७०० इ० पू० तक के लगभग रहा होगा। श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य भी ब्राह्मणों का रचना काल २७०० इ० पू० के लगभग मानते हैं। श्री शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने ज्योतिष के आधार पर ही शतपथ ब्राह्मण का काल ३००० इ० पू० माना है।

### योगजकोई के लेख का महत्त्व—

ऋग्वेद की प्राचीनता के सम्बन्ध में इसी राताक्षी के प्रारम्भिक वर्षों में (१६०७ में) एक ऐसा प्रमाण उपलब्ध हुआ जिसकी उपेक्षा यूरोपीय इतिहासकार भी न कर सके तथा जिसके कारण उन्हें अपना मत बदलने के लिये बाध्य होना पड़ा। यह योगजकोई स्थान (सीरिया प्रदेश) में प्राप्त कुछ लेख जिनकी राजा का श्रेय एक जर्मन विद्वान ह्यू विन्डर को प्राप्त है। इतने दूर देशमें आर्या के इन्द्र, यम, मित्र और नासत्य के नाम देवदेव यूरोपीय विद्वान आश्चर्य चकित रह गये और उन्हें मानना पड़ा कि ये तो सभी

आर्य देवता हैं क्योंकि ऋग्वेद में उनके सम्बन्धमें अनेक मंत्र मिलते हैं । इससे यह बात निरिक्त रूप से प्रमाणित होगी कि ईसा से लगभग १॥ हजार वर्ष पूर्व अथवा आज से लगभग साठे तीन हजार वर्ष पूर्व पश्चिमी एशिया जैसे तुर्क देश में आर्य लोग मौजूद थे तथा अग्नेयसन्धियों की स्थापना कर चुके थे । यह भी स्पष्ट था कि पश्चिमी एशियाके इन आर्यों के देवता वे ही थे जिनका वगन ऋग्वेद में है । अतः ऋग्वेद का रचना काल इसमें बहुत पूर्व होना ही चाहिये, क्योंकि ऋग्वेदके रचना काल के न जाने कितने समय पश्चात् आय लोग भारत से चले होंगे, उ ह मार्ग में तथा पश्चिमी एशिया के छोर तक पहुँचने में तथा फिर वहाँ पर आगे राज्यों की स्थापना करने में न जाने कितना समय लगा होगा ।

इस योगजकोड़ के लेख ले यह भी स्पष्ट है कि जो विद्वानयह मानते हैं कि आय लोग ईसा से १ । हजार वर्ष पूर्व बाहर से भारतमें आये उनकी मान्यता कितनी निराधार तथा अशक्य है क्योंकि जब आर्यों की कुछ शाखायें भारत से चलकर लम्बा माग तय करती हुई लगभग १॥ हजार वर्ष पूर्व एशिया के पश्चिमी छोर पर जा पहुँची तो वे आय भारतमें तो उससे सैकड़ों या सन्धियों वर्ष पूर्व से रहते होंगे ।

एतद् एशिया में आर्य सभ्यता के उत्तम चिह्नों को देखकर कुछ विद्वानों ने अनुमान किया है कि यूरोप अथवा दक्षिणी रूस ही आर्यों का आदि स्थान था तथा वहाँ से वे एतद् एशिया होते हुए भारत की ओर बढ़े य तथा इसी यात्रामें अपने कुछ चिह्न एतद् एशिया में छोड़ गये अर्थात् पूरब की ओर यात्रा करते समय ही इस प्रदेश से भी उनका सम्पर्क हुआ था । परन्तु यह केवल उल्की गंगा बहाना है, क्योंकि इसका अर्थ तो यह होता है कि आर्यों का ऋग्वेद यूरोप में अथवा रूस में बन चुका था और इन्द्र, वसु, मित्र तथा नासत्य देवताओंकी कल्पना वही पर प्रकृतित हो चुकी थी । परन्तु यह मत मान्य नहीं हो सकता, क्योंकि प्रायः सभी विद्वान इस बात में सहमत हैं कि ऋग्वेद की रचना कम से कम उसके अभिधायक भाग की रचना पश्चात् अथवा उत्तमिषु प्रदेश में ही हुई थी । ऋग्वेद में कुछ ऐसे मंत्र अवसर मिलते हैं जिनका सम्बन्ध भारत के बाहर के प्रदेशों से ज्ञात होता है । लोकमान्य तिलक के मतानुसार अनेक मंत्रों में द्रव्य प्रदेश की अवस्थाओं का वर्णन है । कुछ विद्वानों ने ऋग्वेद में खाल्दिपा आदि देशों के शब्द भी लोभ निहाले हैं । इसका कारण, यही ज्ञात होता है कि भारत में जो आर्य जन बाहर गये वे अपने मूल देश से भी सम्पर्क बनाये रहे होंगे । अथवा यह भी सम्भव है कि भारत के कुछ ऋषि लोग भारत से बाहर गई आये हों तथा यहाँ लौटकर उहाँने कुछ मंत्र ऐसे बनाये जिनमें बाहर के देशों की भाषा अथवा अवस्था की भी कुछ झलक आ गई हो । भारत तथा अन्य देशोंमें बनामरिक सम्पर्क का भी यह परिणाम हो सकता है । परन्तु ऋग्वेद की रचना भारत से बाहर हुई मानना बुद्धिमत् नहीं है । ऋग्वेद में पश्चात् की

नदियों का सिंधु और सरस्वती का, गंगा और यमुनाका वर्णन उक्त मायना के विपरीत प्रमाण प्रस्तुत करता है। इन नदियों के तट पर हुए कुछ युद्धों का संकेत भी ऋग्वेद में मिलता है। अतः ऋग्वेद की रचना पंजाब में ही हुई मानना अधिक तर्कपूर्ण तथा उद्दिगम्य है। जब सप्त सिंधु प्रदेश में भारत में इंद्र, वरुण, मित्र तथा तथा नासत्य आदि देवताओं की कल्पना तथा उनकी उपासना परिवर्तन रूप ग्रहण कर चुकी होगी तभी भारत से कुछ आर्यदल परिचय की ओर गये होंगे और मुर लघु एशिया तक पहुँचकर भी उन्होंने अपनी उपासना पद्धति न बदली होगी। वे उ ही देवताओं की पूजा करते रहेंगे, तभी वहाँ के लेख म—सधिपत्र में—उक्त देवताओं का आवाहन किया जाना संभव है। इस दृष्टि से बोगजकाइ के लेख अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

### वेदों का सकलन—

यह संभव है कुछ यूरोपीय विद्वानों ने ऋग्वेदादि के संहिता रूप में सकलन को ही उनका निर्माण काल मान लिया हो। यद्यपि प्रो० मेक्स्मूर का कथन तो स्पष्ट ही है कि ऋग्वेद के कुछ मंत्रों का निर्माण १००० ई० पू० से ८०० ई० पू० तक तथा अन्य अधिक प्राचीन मंत्रों का निर्माण १२०० ई० पू० से १००० ई० पू० तक हुआ। फिर भी संभव है अन्य यूरोपीय विद्वानों ने इस मत का समर्थन यह मानकर किया हो कि वेदों का सकलन १५०० ई० पू०के लगभग हुआ माना जाता है जैसा कि पृथ में कहा जा चुका है। वेदोंका सकलन भी कृष्ण द्रोणायन व्यासने महाभारत काल के आस-पास किया या तथा यह काल कुछ विद्वानों की दृष्टि में ३००० ई० पू० तथा अन्य विद्वानों की दृष्टि में १५०० ई० पू० के लगभग है। परन्तु इस सम्प्रय में यह तथ्य ध्यान में रखने योग्य है कि कृष्ण द्रोणायन व्यासने वेदों का संस्मृत मात्र किया था—निर्माण नहीं। वेदों के मंत्रों का निर्माण ता व्यास से सहस्रों वर्ष पूर्व भिन्न भिन्न स्थानों पर किया गया था। सहस्रों वर्षों तक ये मंत्र “मनुष्य के मस्तिष्क की पुस्तक में सुरक्षित रहे” तथा जीवित रहे क्योंकि हमारे प्राचीन आर्य ऋषियोग लिखित को अपना मौखिक विद्या को ही अधिक महत्व देने थे। संहृत के जख्ययन-अध्यायन में यह परम्परा अब तक भी बहुत कुछ वैसी ही चली आ रही है। इस प्रकार ‘श्रुत’ रूप में ही वेदों के मंत्र एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक आते रहे और इसी गुरु शिष्य परम्परा से हमारी यह विद्या सुरक्षित तथा जीवित रही।

एत वेदों का ग्रन्थ रूप में संग्रह तथा संकलन भी अनेक बार हुआ होगा क्योंकि जब मंत्रों की संख्या अधिक बढ़ी तब उनका कथ्यथ रचना कठिन कार्य हो गया होगा फिर भी हमने पहले उनका संकलन कृष्ण द्रोणायन व्यास तथा उनके चार शिष्यों द्वारा ही किया जाने का उल्लेख किया है। यह भी पता चलता है कि व्यास के पञ्चान भी

वेदों का संकलन होता रहा, क्योंकि व्यास ने बाद पतञ्जलि तथा शौनके के काल में भी वेदों का संकलन होने का पता लगता है। शाक्य और वाष्क के संरक्षण जिन्हें कुछ विद्वान् ऋग्वेद की शाखाएँ मानते हैं शौनके के समय में ही हुए माने जाते हैं।

इस प्रकार वेदों का संकलन और संग्रह बहुत परशतपूर्वी काल तक चलता रहा पात्रु इसका यह अर्थ नहीं है कि वेदमंत्रों का निर्माण भी उसी काल में हुआ। वास्तव में वेदमंत्रों का निर्माण उनका संग्रह किये जाने के—जिसके कारण उनका नाम संहिता पड़ा—सहस्रों वर्षों पूर्व हो चुका था।

### वेद-कालीन आय सभ्यता —

इस प्रकार ऋग्वेद के निर्माण काल पर विचार करने के पश्चात् वैदिक सभ्यता पर प्रकाश डालना उचित होगा। ऋग्वेद के निर्माण का मध्यकाल ईसा पूर्व साढ़े चार हजार अथवा पाच हजार वर्ष पूर्व मानना युक्तिमग्न है। यह वही काल है जब सुमेरु, अक्काद, मिन्न आदि की सभ्यताएँ प्रारम्भिक अवस्था में थीं तथा उन्नति की ओर बढ़ रही थीं। परन्तु भारतीय सभ्यता इसी काल की सभ्यता नहीं है अर्थात् वेदों का निर्माण काल तथा भारतीय सभ्यता का विकास-काल एक ही बात नहीं है। वैदिक सभ्यता तो वास्तव में इससे बहुत प्राचीन है। इसका आरम्भ वेदों के निर्माण काल से सहस्रों वर्षों पूर्व हो चुका था। वेदों में तो हमें उस सभ्यता की एक मजकूर मात्र मिलती है और वेदों में हमें जिस सभ्यता के दर्शन होते हैं वह एक विकसित सभ्यता है जिसके विकास में भी सदृशान्तरियाँ लगी होंगी। लो० तिलक तथा प्रो० ब्लूम फील्ड का यह कथन सत्य ही है कि वेदों की भाषा इतनी आदिम काल की नहीं दिखाई देती कि जिसे आर्य सभ्यता के प्रारम्भिक काल की भाषा कहा जा सके, बल्कि इस रूप में भाषा का विकास होने में भी कई सहस्र वर्ष लगे होंगे। श्री सम्पूर्णानन्द जी का भी यही मत है कि ऋग्वेद की भाषा प्रौढ़ता यह बताती है कि वह गैंगारों की बोली १ यी बल्कि कई हजार वर्षों के परिभ्रम के बाद अपने तत्कालीन रूप को पहुँची थी। फिर जब वैदिक ऋषि अपने से भी पूरुव काठ की ओर सकेत करते हैं तो वे निःसन्देह हमें बहुत पूर्व की ओर ले जाते हैं। ऋग्वेद के मंत्रों से भी यह स्पष्ट है कि उन समय तक द्रव्य शास्त्र का भी निर्माण हो चुका होगा। प्रथम सूत्र के प्रारम्भ में उसके छन्द का नाम भी दिया हुआ मिलता है यगा गायत्री, अनुष्टुभ, त्रिष्टुभ, ऋक्षी आदि। पद्य ही छन्दों के लक्षण भी उस समय तक निरिवा हो चुक होंगे। अक्षरों की—उपमा स्वर आदि की—ता वेद-मंत्रों में भरमार है। यह भी भाषा की प्रौढ़ता की सूचक है। लो० तिलक का अनुमान है कि भाषा के विकास का यह काल ८ हजार वर्ष का होना चाहिये तथा इस प्रकार वैदिक सभ्यता का प्रारम्भ १० हजार वर्ष पूर्व तक माना जाना

चाहिये। अर्थात् भारतीय सभ्यता का प्रारम्भ सुमेर, बेबीलोन, मिस्र आदि की सभ्यताओं से कई सदस्य वर्ष पूर्व हो चुका था।

पूर्व में पृथ्वी दोहन की कथा में बताया गया है कि यह वर्णन उस समय का ज्ञात होता है कि जब पाषाण-युगकी समाप्ति हो रही थी तब इस देश में ऋषि एव घातु युग का प्रारम्भ हो रहा था। विद्वानों ने यह उत्तर पाषाण काल २५००० ई० पू० से १०००० ई० पू० तक का माना है। इस दृष्टि से भी भारतीय सभ्यता का प्रारम्भिक काल १०-१२ हजार वर्ष ई० पू० अथवा अब से १४ १५ हजार वर्ष पूर्व ही माना ही माना जाना चाहिये।

यहाँ यह भी स्मरण रखने योग्य है कि यद्यपि सभ्यता की आरंभ प्रगति की मजिलें सब देशों में प्रायः एक सी ही रही हैं—पूर्व पाषाण काल उत्तर पाषाण काल, घातु काल आदि परन्तु सभ्यता का विकास समस्त देशों में एक समान अथवा समानांतर रूप में नहीं हुआ। कोई जाति सभ्यतामें अधिक शीघ्र उन्नति कर गई, कोई पीछे रह गई तथा बहुत धीरे धीरे सभ्यता की अगली मजिलों तक पहुँची। उदाहरणार्थ मिस्र की सभ्यता ४-५ हजार ई० पू० में काफी उन्नत अवस्था को पहुँच गयी थी, परन्तु यूरोप के अधिकांश देश उस समय में पुरा पाषाण युग में ही रह रहे थे।

इसी प्रकार भारतीय सभ्यता जो कि मिस्र की सभ्यता से बहुत पुरानी है अब से १४-१५ हजार वर्ष पूर्व प्रारम्भ होकर १०-१२ हजार वर्ष पूर्व अर्थात् ८ १० हजार वर्ष ई० पू० में काफी उन्नत अवस्था को पहुँच चुकी होगी। वेद-मंत्रों में जिस सभ्यता के दर्शन हमें मिलते हैं उससे भी यही प्रकट होता है। यहाँ हमें यह अवश्य ध्यान में रखना चाहिये कि वेद-मंत्रों में जिस सभ्यता के दर्शन होते हैं वह उन मंत्रों के निर्माण-काल की ही सभ्यता नहीं है, बल्कि उससे काफी प्राचीन काल की सभ्यता है। वेद मंत्रों में अनेक बातें विभिन्न प्राचीन कालों की मिलती हैं जिनमें कुछ बातें अत्यंत प्राचीन काल की हैं तथा कुछ बातें मंत्रों के निर्माण काल की भी हो सकती हैं।

भारतीय सभ्यता का सबसे प्राचीन तथा प्रामाणिक ग्रंथ ऋग्वेद ही है जो बहुत कुछ अविच्छिन्न रूप में आज तक हमें प्राप्त है। अतः यहाँ हम प्रायः ऋग्वेदके मंत्रों के आधार पर ही आय सभ्यता अथवा भारतीय सभ्यता तथा उसकी उन्नतता का दायत करेंगे।

#### सामाजिक अवस्था —

ऋग्वेदिक काल में आयजन, जो अशुद्ध, यद्, तुल्य, पुत्र, भ्राता आदि समूहों में 'जन' कहते थे उठे हुए थे। पञ्चान में सुव्रत सरस्वती नदी के पास, तथा गंगा जमुना के दुआब में फैले हुए थे। कुछ आय जन अयासवा तथा उग्रवे आम मिथिला तक भी फैले हुए पाए जाते हैं।



इस समय तक—अथवा इससे बहुत पूर्व ही 'जन' दल का मुखिया 'राजा' कहलाने लगा था तथा उसका पद कुलामत बन गया था। राजा पर अमुश रखने के लिये 'समा' और 'समिति' नाम की दो संस्थाएँ भी हाती थीं।

इन लोगों में बहुत सी बातों में आपसी मतभेद भी हो जाते थे तथा लड़ाइयों भी हो जाती थीं। एक लड़ाई में दस राजा शामिल हुए थे। इसका वर्णन ऋग्वेद में काफी मिलता है (ऋ० ७।८३।४।८) तथा उसे 'दागराल' युद्ध कहा जाता है। इनमें भरता का राजा 'सुगस' विजयी हुआ था।

ऋग्वेद में दसवें मण्डल में सुप्रसिद्ध 'पुरुष सूक्त' है जिसमें कहा गया है कि परमेश्वर का मुग्न ब्राह्मण है, नाहु धत्रिय है, उर वैश्य है तथा परे शूद्र हैं। इससे अनुमान होता है कि आर्यों की चार प्रमुख जातियाँ ब्राह्मण, धत्रिय, वैश्य, शूद्र उस समय तक अस्तित्व में आ चुकी थीं। ब्राह्मणता स्थान सबसे ऊँचा माना जाता था और शूद्रका सबसे नीचा। कुछ विद्वानों का कथन है—जो वास्तव में यथाथ भी है कि पुरुष सूक्त का यह अर्थ नहीं समझना चाहिये कि उक्त सूक्त के समय से ही वर्ण व्यवस्था का आरम्भ होता है बल्कि वर्ण व्यवस्था का आरम्भ तो उससे बहुत पूर्व हो चुका होगा। पुरुष सूक्त में तो बसल उसका उल्लेख किया गया है। इसके विपरीत कुछ विद्वान 'पुरुष सूक्त' को बादमें जोड़ा गया मानते हैं तथा मानते हैं कि वर्ण व्यवस्था का प्रचार ऋग्वेद काल के बहुत बाद में हुआ। इस सम्बन्ध में कुछ करना कठिन है।

ऐसा जान पड़ता है कि ऋग्वैदिक काल में स्त्रियाँ काफी पढ़ी लिखी तथा विदुषी होती थीं। अनेक सूक्त महिला ऋषियों के बनाये हुए ऋग्वेद में मिलते हैं। १।१२६ की ऋषि रोमेशा, १०।४० की घोषा और ६।२८ की विश्वावारा १०।४६ की इन्द्राणी, १०।१६६ की पुलोमा कन्या शची ६।६ की अग्नि पुत्री अपाला है।

उत्तराधिनार के सम्बन्ध में भी ऋग्वैदिक काल में कुछ नियम दिखाई देते हैं। ऋ० ३।३।१२,२ में कहा गया है कि कन्या का अशुभ विना कन्या में जामाता द्वारा उत्तराधिनार पुत्र (धेवते) को अरना पुत्र बनाये तथा कन्या के पिता का वही दायभागी पुत्र हो। इसमें यह भी बताया गया है कि कन्या पर गोन के पुंगव को दी जाती है। यही व्यवस्था आगे मनु ने भी दी है। (मनु अ० ६।१०७) तथा आज तक प्रचलित है।

ऋ० १०।६।१।७ में पुत्र ७ हाथों की दशा में कन्या को ही पिता व धन का उत्तराधिनार होने तथा कन्या से उत्पन्न जाती के वारिस होने का वर्णन है। १०।८६ के मंत्र २२-२८ मन्त्र गोत्र में विशाद का उपदेश है।

**यज्ञों की प्रधानता—**

धैरिक आर्य यज्ञों के बड़े प्रेमी जान पड़ते हैं। ऋग्वेद के प्रथम मंत्र में ही अग्नि की स्तुति करते हुए उसे यज्ञ का देवता कहा गया है। विद्वानों का मत है कि उनका साध

धीन ही यज्ञमय बन गया था। वे यज्ञों के लिये यज्ञ करते थे, कीमारियों से बचने के लिये यज्ञ करते थे, शत्रुओं पर विजय जाने के लिए भी यज्ञ करते थे तथा परलोक में सुख पाने के लिये भी। यज्ञों के साथ पशु हिंसा भी की जाती थी परन्तु यह प्रारम्भिक काल की प्रथा जान पड़ती है। पश्चात् कालमें पशु हिंसा बहुत कम हो गई थी। यज्ञों के कारण ही जिसे कर्मजाण्ट भी कहा जाता था, आयों में अनेक मतभेद हुए तथा मतभेदों का अधिक बढ़ जाना पारस्परिक संघर्षों का कारण बना। इन मतभेदों तथा संघर्षों के कारण ही बहुत से आयों को स्वदेश छोड़कर बाहर जाने को विवश होना पड़ा।

यथादि घृत से ही होते थे। अतः ये लोग दूध से घी तैयार करना भलीभाँति जान गये थे। घृत का नाम ऋग्वेद में अनेक मंत्रों में ( १-१३४ ६, २ १०-४, ४-१० ६, ४-४८-५ आदि में ) आया है। 'जिघर्ष्यग्निं हविषा घृतेन' ( २ १० ४ ) में अग्नि को हविषा (चर्च) और घृतेन ( घी से ) जिघर्षि ( सींच कर बढ़ाता हूँ ) कहा गया है। उनके भोजन में भी घृत का काफी व्यवहार होता था। घृत और दूध उनके भोजन के मुख्य पदार्थ ही थे।

#### वस्त्राभूषण —

वैदिक काल के आर्य लोग वस्त्रों का उपयोग भलीभाँति जान गये थे। वस्त्र प्रायः सादा और बिना सिले होते थे। शरीर के ऊपरी भाग के लिये दुपट्टा होता था जिसे 'उत्तरीय' कहते थे। डा० मोतीचन्द का अनुमान है कि वैदिक आर्य तीन कपड़े पहिनते थे—नीवि, वासस और अबिवास। नीवि या परधान शायद टुंगी या तद्मन जैसा कोई वस्त्र था जिसे स्त्री और पुष्प समान रूप में व्यवहार में लाते थे। अबिवास शायद आधुनिक दुपट्टा या चादर का प्रारम्भिक रूप रहा हो।

कपड़े प्रायः ऊनी या अलसी के रेशे ( क्षुमा ) के बने होते थे। वस्त्रों की बुनाई से लोग भलीभाँति परिचित थे। एक मंत्र में ऋषि कहता है—'मैं धार्मिक कर्तव्यों का न ताना जानता हूँ न ताना। ऋ० १०।१३०।१ में कपड़ा बुनने का स्वप्न उल्लेख मिलता है। 'तनुभि र्त' का अर्थ तनुओं से व्याप्त हाथर किया जाता है। 'इमेवपत्ति' का अर्थ तनुओं से पट के समान बुनते हैं तथा 'प्र वय अरवय' का अर्थ ऊपर से तुनी, नीचे से तुनी है जिसमें वस्त्र बुनने का भाव स्वप्न ही है। इसी स्वप्न है कि लोग ताने बाने की बुनाई से परिचित थे। यह बुनाई ऊनी वस्त्रों की हाती थी या सूती की यह स्वप्न नहीं होता। ऋग्वेद में सूती वस्त्रों का उल्लेख नहीं मिलता। इससे कुछ लोगों का अनुमान है कि शायद उस समय कनास से वस्त्रों का बनाना भी लोगों ने न सीखा हो। सिंधु घाटी की खुदाई में सूती वस्त्रों का सिद्ध भी प्राप्त हुए हैं। सिंधु घाटी की संस्कृति

वैदिक सभ्यता से बहुत बाद की है। अतः यह सम्भव है कि तब तक लोगों ने कपास से कपड़ा तैयार करना सीखा नहीं होगा। डॉ० मोतीचन्द के अध्यानुसार मोहेंजोदड़ो और हरप्पा में तड़ुओं की फिरकियों के मिलने से पता चलता है कि लोग सूत कातते थे। एक वस्त्र के टुकड़े के वैज्ञानिक अध्ययन से पता चलता है कि लोग कपास से अग्रगत थे।

श्री नरदेव शास्त्री के मतानुसार आर्य लोग जरीदार वस्त्र भी पहनते थे, क्योंकि ऋग्वेद (६।११।४) में 'सुरणा' शब्द आया है जिससे जरीदार वस्त्रों का ही अर्थ लिया गया जान पड़ता है।<sup>१</sup>

वैदिक लोग वस्त्र प्रायः बिना सिले पहनते थे। इस उष्णता प्रधान देश में घोती, चादर ही आसामदेह और स्वास्थ्यवर्द्धक पहरावा था और उसे लोग चाप से पहनते थे। परन्तु इसका अर्थ नहीं कि वे सिलाई से परिचित न थे अथवा सिले वस्त्र कभी पहने ही नहीं जाते थे। स्त्रियाँ कचुक या चोली पहनती थीं जो सिल्कर ही तैयार होती थी। वस्त्र सीने की सूई (सूची) से वे भलीभाँति परिचित थे। ऋग्वेद (२।३।४) में सूनी का स्पष्ट उल्लेख है 'सीव्यस्त्रप सूच्या च्छिन्नमानक (अर्थात् जिस प्रकार कभी न टूटने वाली सूई से वस्त्र सिये जाते हैं)।

किन्तु जान पड़ता है कि सिलाई का काम जानते हुए भी आर्यों ने अपनी सभ्यता में कभी सिले हुए वस्त्रों को मुख्य स्थान नहीं दिया। बुद्ध भगवान् के समय तक इस देश के लोग प्रायः सिले हुए वस्त्र नहीं पहनते थे क्योंकि बौद्ध मूर्तियों में सिले हुए वस्त्रों के दृश्य नहीं होते। यह भी सम्भव है कि साधारणतः सिले हुए कपड़े भी पहने जाते हों परन्तु पवित्र कार्यों में बिना सिले हुए वस्त्रों का ही उपयोग होता है। इसी प्रकार देवताओं के लिये बिना सिले कपड़े ही पहनाना उचित समझा जाता था।

स्त्री पुरूष आभूषणों के भी काफी शौकीन थे। वे सीने के हार, कुण्डल, (कर्ण-घोमन के चूड़, ककण, तूपुर आदि आभूषण पहनते थे। निष्क भी शायद एक हार होता होता था जिसका वचन ऋग्वेद (५।१६।७३) में आया है।

### धातुओं का ज्ञान—

जो लोग धातुओं के प्रयोग से ही सभ्यता का माप करने हैं उनकी दृष्टि से भी आर्यों की सभ्यता काफी आगे बढ़ी हुई थी। ऋग्वेद में 'सुरण' का नाम अनेक स्थानों पर आया है जिससे आर्य लोग सुरण से भलीभाँति परिचित जान पड़ते हैं। सिन्धु नदी के लिये 'हिरण्यवी' तथा हिरण्यपात्र विनोदम भी दिये गए हैं जिससे अनुमान होता है कि सिन्धु नदी की रेतों में ही उनको सुरण मिला होगा। सुरण से ही कुण्डल, कटक, निष्क आदि आभूषण बनाये जाते थे। अनुमानतः धातुओं में सबसे पहले उर्ह सुरण का ही—

उसकी चमक से आकर्षित होने के कारण—पना लगा हो, उसके बाद तौबे का पता लगा हो और ताबे से वे अपने हथियार बनाने लगें हों। ताम्र युग का समय साधारणतः ४००० ई० पू० समझा जाता है। सम्भवतः मागतमें यह इसमें पूर्ण आरम्भ हो गया हागा क्योंकि ऋग्वेद काल में लोग उसमें परिचित थे। ऋग्वेद व 'अयस' १ शब्द का अर्थ कुछ विद्वान 'लोहा' करते हैं और यदि यह अर्थ ठीक है तो उस समय के लोग लोहे से भी परिचित थे। नि तु कुछ विद्वान यह मानते हैं कि लोहे का पता बहुत बादमें लगा हागा उस शब्द का अर्थ तांबा या पीतल करते हैं। सिंधु घाटी में तांबे तथा कान्से के एवमिन घातु के भी बहुत से औजार मिले हैं जिससे स्पष्ट हाता है कि उस समय तक घातुओं का प्रयोग बहुत आगे बढ़ चुका था।

ऋग्वेद में तडड, टडडर, आदि शिल्लियों का भी वर्णन मिलता है इनमें एक वर्ग रथकारों का भी था। ये शिल्लिये लोग भी किहीं घातुओं का प्रयोग अवश्य करते होंगे तथा घातुओं से वस्तुएँ बनाना जानते होंगे।

मृ० ६-७५ सग्राम सूक्त युद्धोपसर्गों—कवच, घनुस, तरकस, वाण आदि के नाम आते हैं जो किसी न किसी घातु के ही बनते होंगे। १० ५३ ४ में 'परगुरवायस' शब्द है जिसका अर्थ सुभ्रायस परगु अर्थात् उत्तम लोहकारने बने परगु से होता है।

सातवें मण्डल के सूक्त ६३ मंत्र ५ में हथौड़े से लोहे व समान शत्रु बल को ताड़ने का वर्णन है। इससे भी अनुमान होता है कि मंत्रकार लग लग से परिचित थे तथा लोहे के कई औजार बनते थे। X इसी प्रकार ७-१०१-६ म भी 'भ्रायस' (ध्रमायस प्रति वर्तयो) शब्द लोहे व अथ में प्रयोग किया गया जाना पड़ता है १०-७२-२ में लोहकार (कर्मार) शिरपी व दृष्टात से युव के कर्त्तव्य का वर्णन किया गया है।

पशु पालन—गौ और अश्व -

पालतू पशुओं में ऋग्वेद में गौ का नाम अनेक स्थानों पर मिलता है। गौ घन उनका मुख्य घन था। सम्भवतः वस्तुओं व ऐन देन में गौ को ही माप माना जाता था। गौ के दूध से ही वे घृत तैयार करते थे जो भोजन व तथा मशरूम में काम आता था।

गौ के परचातू ऋग्वेद में अरर अर्थात् घाड़े की प्रदानना दिनाड देती है। ऋषियों

१ ध्रमायस प्रतिवन्तया गात्रिन्नी १।१२१६

आयस लोह व उने शत्रुओं को, गोदिन = भूमि और आराध व जीव।

प्रतिवन्तय = वल (एजमेर भाष्य)

X 'धनेव वत्रिन इन्धिशाभिधान्—७-६३—५ अर्थात् दे वत्रिन। वीयनाड वत्र शात्नि (घना इव) जिस प्रकार हथौड़े से हथ लोहे का भी चूट डाला जाता है उसी प्रकार (घना) शत्रुओं का हनन कराना वापना नाना राजनीतिक घातनों से शत्रुओं का (इन्धिदि) नाश कर।

ने गौ धन के सदृश्य अन्व घन के लिए भी देवताओं से प्रार्थनाकी है। स्पष्टतः वे अन्न को भी काफी महत्त्व देते थे। घोड़े को वे रथों में भी लगाते थे। रथों का सबसे बड़ा उपयोग युद्धों में तो होता ही था, इसने अतिरिक्त प्रायः मनोरञ्जन के लिये भी रथ दौड़ आदि होती थी। रथचारी वैदिक आर्यों के आदर के पात्र थे। ऋग्वेद ४-४० ४ में घोड़े पर बैठने दौड़ने आदि का वर्णन आया है। ७ ७१ ४ में रथ का वर्णन है।

### तिथि पत्र द्वादश मास—

लोकमाय तिलक के अनुसार आर्य लोग दैनिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक तथा वार्षिक यज्ञ करते थे और इन यज्ञों से ही कालमापन होता था। ब्राह्मणों में तीस दिन के चन्द्रमासा का वर्णन किया गया है तथा ऐसे १२ मासोंके बचका जिसमें चन्द्र वषको सूर्य वष से मिलाने के लिये बीच-बीचमें एक अधिक मास जोड़ दिया जाता था, भी वर्णन है। १

आकाशवि कटिपथ को २७ या २८ भागों में बाटा गया गया था जिन्हें नक्षत्र कहते थे। इनसे सूर्य की तथा विशेषतः चन्द्रमा की गतिपथों का माप होता था तथा चन्द्रमाके पृथ्वी के चारों ओर घूमने का भी ज्ञान होता था।

लोकमाय तिलक का यह भी कथन है कि उन्होंने तैत्तरीय संहिता का—जिसमें ३० दिवस के चन्द्रमा का वर्णन मिलता है—काल २५०० ई० पू० माना है। किंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि इससे पूर्य आर्यों को काल-मापन का ज्ञान नहीं था। वास्तव में ३६० दिन का वर्ष का समय समय पर जोड़े जाने वाले अधिक मास अथवा प्रतिवर्ष के अन्त में जोड़े जाने वाले (चांद्र वर्ष को सौर्य वर्ष से मिलाने के लिये) १०-१२ ऋतुओं का ज्ञान ऋग्वेद के मंत्र निर्माताओं को था तथा ऋग्वेद के कई मंत्रों (१-३६ ८, ६ १-१६४-११।१२ आदि) में उसका उल्लेख किया गया है। ऋग्वेद १-१६४-११ में कहा गया है कि यह चक्र (सूर्य का) बराबर घूम रहा है वह कभी नहीं नहीं पिगड़ता, उसमें १२ आरे लगे हुए हैं अर्थात् १२ मास हैं और (रात दिन को प्रथक प्रथक माता जाय तो) इस सप्तत्वर के ७२० पुत्र इसीके आश्रय में रहते हैं। २

### 1 Arctic Home in the Vedas - B G Tilak Chapter IV

२ मंत्र (ऋ १ १६४ ११) इस प्रकार है—

द्वादशार नहि तन्नाय यवति चक्र परि शामृतस्य  
आ पुत्रा अग्न मिथुनाता अन्न सप्तशतानि विशतिरत्र तस्यु

जिस प्रकार मण गतिशील फाल्गु (द्वादशार) बारह मास रूप आरों बाल्य (चक्र) सप्तत्वर गत्र (ध्याम परि) सूर्य के आश्रय पर यवति) सदा घूमना करता है। यह कभी गाय होने के लिये नहीं होता प्रत्युत बराबर चलता रहता है और उस से (सप्तशतानि विशतिरत्र) सात सौ बीस (मिथुनास पुत्र) जोड़े २ दिन रात सूर्य व पुत्र व सप्तत्वर विद्यमान रहते हैं उसी प्रकार

इस अर्थ की पुष्टि ऋग्वेद १-१६४-४८ में की गई है जिसमें कहा गया है कि चक्र है सम्बत्सर (वर्ष) उसके बाहर आरे हैं चारह मास तीन नाभियों हैं—त्रीप्स वर्षा और हेमन्त तथा उस चक्र में चलायमान ३६० कौलें लगी हुई हैं अर्थात् दिन-रात को एक इकाई मानकर ३६० दिन माने गये हैं 'तदिमन् त्साक त्रिद्यत न शरुगे' अर्थात् उसमें दिन रात्रि रूप ३६० शब्दों के समान बला है चित्रक शुभाते ही दिन गत होते हैं।

ऋग्वेद १-१०४-१८ में चन्द्रमा को मासों का बनाने वाला कहा जाता है अर्थात् चन्द्रमास का उल्लेख किया गया है। श्रु १-२५ ८ से ज्ञान होना है कि ये लोग सूर्य ग्रहण की गति भी जानते थे।

इससे पूर्णतया स्पष्ट है कि ब्राह्मणों ने कालमें न। तिथि-जन्म प्रचलित या यह वैदिक काल से ही चला आता था। इतना ही नहीं वे न मन्त्राणों का यह भी ज्ञान था जैसा कि आधुनिक विज्ञानने सिद्ध किया है कि चन्द्रमा म प्रकाश स्वयं का नहीं है, वह सूर्यके प्रकाशसे ही प्रकाशित होता है। ऋग्वेद १ ८४ १६ में कहा गया है 'सि सूर्य रदिमयो ने जग्ने मे से ही एक सुपुम्ना नामक रदिम को चन्द्रमा के रह में बाने की अनुमति दी है। इसका अर्थ यही है कि सूर्यकी एक रदिम (उसका नाम भी मन्त्रज्ञाओंने दे दिया) चन्द्रमा में आती है और उसे प्रकाशित करती है। यह अर्थ निरुक्त (० ६) के अनुसार है। २

इतनी ही आश्चर्यजनक बात यह है कि ऋग्वेद ( ३ ७ ० ) में किण्वो वासु सूर्य के चारों ओर पृथ्वी की परिक्रमा का वर्णन किया गया है। आराग्य देश में रक्षा करने और सुख शान्ति देने वाले सूर्य के चारों ओर एक पृथ्वी ( चरतिवर्त नि गौ ) बार बार लौटकर आने वाला मार्ग चली है। इसी प्रकार १०-६५ ६ में पृथ्वी के आकाश परिभ्रमण से ऋतुओं की उत्पत्ति ज्ञात गई है। 'या गौवतनि पर्येति निष्कृत' का अर्थ वा भूमि ठीक प्रकार से बने भाग को तन करती है अर्थात् आकाश का परिभ्रमण करती है।

ऐसी दृष्टा में ब्राह्मणों ने काल में ( ३००० इ० पू० के लगभग ) भारत में ज्योतिष ज्ञान का फाँसी विनाश हो जाना स्वाभाविक है। शत पथ ब्राह्मण व एक इगोक ( ५ १५ ३ ) कहा गया है—

वृत्तिका एतावदे प्राण्य दिशान न्यरन्ते दिशस्वयते'

इन्द्र मित्र वरुण मग्नि मातुरथा—दिव्य स सुरगो गस्तमात्  
 एक एद विप्रा बहुवा वदति अग्नि यम मातरिश्वात मातु

इसका अर्थ यह है कि विप्र अर्थात् विद्वान लोग एक ही मूल तंत्र को ( परमेश्वर ) विविध नामों से—अग्नि, यम, मातारिश्वा आदि नामों से पुकारते हैं। वही परमेश्वर ऐश्वर्यमान होने से इन्द्र है तथा सबका स्नेही और मृत्यु से प्राणकारी होने से मित्र। सब उसी को नाना नामों से और जलकारों से स्तुति करते हैं अर्थात् सारे देवता क ही हैं केवल ऋषि लोग ही उन्हें अनेकधा बखानते हैं।

### जलपान और जलयाना—

पाश्चात्य विद्वानों का कथन है कि वैदिक आयों को समुद्र का ज्ञान न था, क्योंकि मध्य एशिया से पहाड़ी रास्तों से भारतमें आये थे तथा यहाँ आकर पञ्जाबमें बस गये। समुद्र से बहुत दूर था। किंतु यह धारणा भी ग्राह्य है। ऋग्वेद से ही पना चल्ता कि आयों को न केवल समुद्र का ज्ञान था बल्कि वे गौक्यों तथा जलयानों से भी परिचित थे तथा समुद्रों का ज्ञान भी करते थे। ऋग्वेद १-३४-१५ में सगर के दृष्टात् अग्नि राजा का वर्णन किया गया है जिसमें आना है मित्रो ( महान सागर के ) स्वभितास ( भारी गर्जना करने वाले ) उमद् ( तरंगे ) जिस प्रकार उमड़ती है यादि। इसी प्रकार ऋ० १-४६-११ में कहा गया है अभूदुपारमेतये पया ऋतस्य धुया जिसका अर्थ है समुद्र के अंगर जल से भी अच्छी प्रकार पार जाने के लिये मार्ग बर्य है। ऋ० १-६५ ३ में भी समुद्र का वर्णन है। १-७१-७ में कहा गया है कि यों में सपन करने वाली बड़ी बड़ी नदियाँ जिस प्रकार समुद्र का प्राप्त होती इत्यादि।

इस प्रकार कई स्थानों पर समुद्र का उसकी विशाल तरंगों का उसमें मिलने वाली देवों का वर्णन मिलता है। इससे यही ज्ञात होता है कि ऋग्वेदिक काल के लोग समुद्र मलीभौति परिचित थे। आगे एक स्थान पर ( ऋ० १-११६-११६ ) मृत्यु की भी या आती है। ७-६८-७ में अश्विनो का मृत्यु को समुद्रसे पार करने का रहस्य बताया जा है। ७-११६-१३ में भी यही बात कही गई है। वह अपने साथियों सहित समुद्रमें दिन तक भटकता फिरा था तथा अश्विनी ने उसे रखाया। अश्विनी की गीका को मरद कहा गया है। अनुमानत यह सों टानों से लेइ जाने वाली फौइ जहाज के समान हीनोका रही होगी। ऋग्वेद १०-६३-१० में भी 'नाव' का नाम आया है। एक अन्य में कहा गया है—'इ ब्रह्मा मरे शत्रुभो के नामों म रत्नकर समुद्र के उस और ले तथा मुझे मेरे कल्पानाथ तान ( जहाज ) क द्वारा सागर के उस पार ले चल कुछ ते सौदागरों की भी चर्चा है जो लो १ वर अपने जहाज विदेशियों को बेच देते थे।

इससे अनुमान होता है कि वे तांग नावों और जलयानों से परिचित ही न थे बल्कि जलयानों का निर्माण भी करते थे तथा उन्हें दूसरे देशों के लोगों को बेचते भी थे।

ऋग्वेद १-१६७ २ की दूसरी पक्ति है—'अष्यदेवा नियुत परमा समुद्रस्य चिद्वन यत् पारे' अर्थात् अर ( और वे यत् ( जिस ) एषा ( इनके ) परमा ( उत्कृष्ट कोटि के साधन, उत्तम सेनायों, लाखों मनुष्य ) समुद्रस्य चित पारे ( समुद्र के परले पार भी ) घनपत्त घन ऐश्वर्य की कामना से व्यापार करते हैं और ऐश्वर्य अर्जन करते हैं वे भी हमें प्राप्त हों । १ इस मंत्र से समुद्र पार व्यापार का स्पष्ट उल्लेख पाया जाता है ।

ऋ० ५ ५३ के मंत्र ७, ८, ९ में भी व्यापारियों को समुद्र पारकर दूर-दूर देशों में जाने आने तथा व्यापारिक करने का उपदेश है ।

डा० वान वूलर ने ऋग्वेद के मंत्रों के आधार पर ही यह मत स्थापित किया है कि उस समय भी आर्य लोग व्यापार तथा अर्य कार्यों के लिये अनेक दूर देशों में जाते थे और अर्य राष्ट्रों से अपना व्यापारिक सम्बन्ध जाड़ते थे । उनका कथन है कि हि दुस्तान और अरब के बीच मनुष्य जाति के ताल्यकाल से ही व्यापारिक सम्बन्ध चलता था \*

मॉन्टेजोदड़ो की खुदाई में जो ३००० इ० पू० की समझी जाती है वइ ऐसी मुहरें मिली हैं जिन पर नावों के चित्र बने हुए हैं । स्पष्टतः उस समय तक भारत के लोग नावों से भलीभाँति परिचित हो चुके होंगे ।

### सिक्का—

प्राचीन सभार के सभी देशों में व्यापार प्रायः वस्तुओं के आदान-प्रदान के द्वारा होता था । कई देशों में तथा सम्भवतः भारत में भी गाय को वस्तुओं के मोल का माना जाता था तथा उसी की सख्या में वस्तुओं का दाम भी निर्दिष्ट किया जाता था, किन्तु यह बहुत प्रारम्भिक अवस्था रही होगी । शीघ्र ही धातु का पता लगने पर गायकी जगह विनिमय के माध्यम के रूप में धातु का प्रयोग होने लगा ।

फिर भी ऋग्वेद ( ८ १५ ) से ज्ञात होता है कि 'शुक्ल' नाम का एक सिक्का उस समय प्रचलित था । सम्भवतः यह तौबे का या काँसे का छोटा सिक्का होता था बैसा कि लोक० तिलक का मत है ।

'निष्क' भी एक प्राचीन सिक्का ज्ञात होता है । ऋग्वेदमें यत्रि ३ ३३ १० म निष्क का अर्थ मुग्गादि के चने आभूषण में किया गया है जिसे रुद्र चारण किये हुए उताये गये हैं किन्तु अर्य स्थानों पर उक्त शब्द से लिखे का भी बोध होता है । डा० डी० आर० भट्टारक ने यही मत प्रकट किया है । ऋग्वेद १-१०६-२ में 'श्वन रातो तात्र-

१ आय साहित्य मण्डल अन्ननेर द्वारा प्रकाशित ऋग्वेद माध्य का अध ।

• जगद्गुरु भारवन्द — पुन्य सन्नि रात्र भगवारी पृष्ठ १५५



मानस्य निष्कमञ्छतमस्या भूय ताम' शब्द है जिनसे ज्ञात होता है कि ऋषि कथिमान् ने एक राजा से एक सहस्र 'निष्क' दान रूप में प्राप्त किये। अजमेर वाले ऋग्भेद भाष्य में निष्क का अर्थ मुहरों ही किया गया है। सैकड़ों मुहरों को और सैकड़ों सव्हे हुए अश्वों (घोड़ों) को प्राप्त करें।

यह अनुमान किया जाता है कि जिस प्रकार आजकल अशर्कियों और मोहरों का हार बगान्तर भी रहने का रूपमें पहना जाता है उसी प्रकार पूव काल में निष्कों का हार भी पहना जाता होगा यद्यपि वह था एक सिक्का ही। 'इसी कारण 'निष्क' का प्रयोग कण्ठहार तथा सिक्का दोनों ही अर्थों में किया गया है।

डा० अविनाशचन्द्र दास का मत है कि प्राचीन भारत में 'मना' नाम का भी एक सिक्का था जो मुद्रण का होता था। इसका वर्णन ऋग्भेद ८ ७८-२ में है। भारत के इस सिक्के को पणि लोग वेरीलानिया तथा असीरिया देशों में ले गये थे जहाँ उसका प्रयोग होने का पता मिलता है।

### लिपि —

लिपि के सम्बन्ध में बड़ा मतभेद है। कुछ पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि भारत में इसा से लगभग ८०० वर्ष पूर्व ही लिपि का प्रारम्भ हुआ होगा, क्योंकि इससे पूर्व लिपि विद्यमान होने के कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होते। अन्य लोग उसका प्रारम्भ १६०० ई० पू० के लगभग मानते हैं। श्री जयचन्द्र विद्यालङ्कार का मत है कि वेदों को संहिता रूप में लिख डालने की बात तभी सूझी होगी जब लेखन कला का आविष्कार हो चुका होगा तथा भारत में लेखन कला का प्रचलन इसा से १८०० वर्ष पूर्व हुआ और संहितायें भी तभी से बनने लगीं। विद्वान् वेदों का संहिताओं के रूप में सफल तथा लेखन कला शुरु हुआ यह कहना कठिन है। यदि माना जाय कि श्री कृष्ण द्वैपायन व्यास ने १६०० ई० पू० अथवा १८०० ई० पू० के लगभग वेदों का समग्र किया तब भी यह जान पड़ता है कि वेदों के कुछ समग्र द्वैपायन व्यास से पूर्व भी हो चुके होंगे। काउट जनस्ट जर्मन का विचार है कि भारत के लोगों के पास ईश्वरी सन् से २८०० वर्ष पहिले तथा अवेस्ता से ८०० वर्ष पहले के लिखे हुए ग्रन्थ विद्यमान थे। इसका अर्थ यही है कि लिपि का आविष्कार भारत में इससे पूर्व ही अर्थात् ई० पू० में भी पूर्व हो चुका होगा। मार्हबोदड़ो और हर्षणा की मुण्डास्यों ने यह सिद्ध कर दिया है कि ३००० ई० पू० से भी अथवा इससे पूर्व भी भारत में लिपि का प्रचलन था। श्री मुण्ड सम्पत्ति राय मण्डारी न अग्नी पुस्तकम एक ज्ञान विद्वान् द्वाप लीडो नगरमें हुई पौर्वात्योंकी एक काग्रेसमें पढ़े गये एक

१ संहति प चार अध्याय— श्री रामधारी सिद्धाचार्य पृष्ठ ३०

२ जगद्गुरु भारतवर्ष—मुण्ड सम्पत्ति राय मण्डारी

पादचार्य विद्वान के लेख का उल्लेख किया है जिसमें उसने अधिभारपूर्वक तथा बल देकर कहा था—सुभ यह कहने में कोई सन्देह नहीं कि वैदिक संहिताओं में तथा ब्राह्मण ग्रंथों में ऐसे वाक्य हैं जो विद्वान्मूलक रूप से प्रमाणित करते हैं कि प्राचीन भारत में लिखित अक्षरों का प्रचलन था।

इस प्रकार ऋग्वेद के समय की तथा उससे पूर्व की जिस सभ्यता के दशम ऋग्वेद तथा अन्य प्राचीन ग्रंथों के द्वारा होते हैं वह काफी उन्नत तथा विकसित थी, क्योंकि उन दिनों भारत के निवासियों का आर्षों को, धातुओं का ज्ञान हो चुका था तथा उनका विभिन्न प्रकार से वे उपयोग करने लग गये, खगोल तथा ज्योतिष विज्ञानों का भी बहुत कुछ ज्ञान उन्हीं में था। समुद्र में नावें चलाने का भी ज्ञान था तथा दूर-दूरके देशों में उनका व्यापारिक सम्बन्ध था। यही सभ्यता आगे ब्राह्मण तथा उपनिषद् काल में और अधिक विकसित हुई। उपनिषद् इस बात के द्योतक हैं कि उस समय तक आर्य ऋषि गम्भीर विषयों पर इश्वर तथा सृष्टि के निर्माण तथा आत्मा, जीवत्मा और परमात्मा आदि के सम्बन्ध में गम्भीर चिन्तन करने लगे थे। आगे चलकर इसी चिन्तन के फलस्वरूप अनेक दशम शताब्दी का विकास हुआ जिन्होंने यूनान आदि विदेशी दर्शनियों को भी प्रभावित किया। इसी प्रकार पञ्चांगपूर्वक काल में रामायण तथा महाभारत जैसे काव्यों की रचना हुई जो कविता की दृष्टि में आर्य सभ्यता की प्रगति के प्रमाण हैं। इनसे उस समय की सभ्यता पर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। यद्यपि यूरोपीय तथा आर्य इतिहासकार इन ग्रंथों को बहुत ज़ाद का—ईश्वरी सन् के प्रारम्भ से कुछ ही शताब्दियों पूर्व का—मानते हैं तथा रामायण और महाभारत के कथानक को भी अनेक इतिहासकार काल्पनिक मानते हैं, किन्तु यह अनुमान सुनियुक्त नहीं है। वास्तव में इन दोनों ग्रंथों का मूल रूप बहुत प्राचीन काल में निर्माण हो चुका था जिसका अनुमान करना कठिन है। बाद में धीरे धीरे इनमें वृद्धि होती रही तथा ईसा से कुछ शताब्दियों पूर्व तक उन्होंने वृहद् रूप धारण कर लिया जिस रूप में वे आज मिलते हैं।

इस वैदिक सभ्यता का विस्तार भारत में सहस्रांशों तक रहा, किन्तु उसका क्रमबद्ध इतिहास के साधन नहीं हैं। वैदिक सभ्यता के पश्चात् जिस भारतीय सभ्यता के प्रामाणिक तथा साधारण रूप में दर्शन होते हैं वह है सिन्धु घाटी की सभ्यता—अर्थात् मोहेंजो दड़ो, अहमदपुरी हारप्पा आदि के उत्खनन में उद्घाटित सभ्यताओं द्वारा जिस सभ्यता के जन्म होते हैं पर सभ्यता। अतः आगे हम इसी सिन्धु सभ्यता के सम्बन्ध में विचार करेंगे।

सिन्धु सभ्यता क्या है ?

सिन्धु सभ्यता का प्रारम्भ भारत महाद्वीप तथा विवाहप्रस्त भी है। इस सभ्यता के निर्माता कौन थे, कहाँ से आये थे, उनका नाम तथा लिपि क्या थी, धर्म क्या

था, इन बातों का निर्णय अभी तक नहीं हो पाया है। फिर भी इस सभ्यता का उद्घाटन होना भारतीय इतिहास के लिये एक क्रांतिकारी घटना है। यूरोपीय विद्वान चाहे उसे ईसा से २॥ ३ हजार वर्ष पूर्व की ही मानें, वास्तव में वह इससे पुरानी जान पड़ती है। फिर भी उसने उद्घाटन के उन विद्वानों का मुँह बन्द कर दिया है जिनकी यह मान्यता थी कि भारत की कोई प्राचीन सभ्यता नहीं, भारतीय सभ्यता बहुत पीछे के काल की, सुमेर, बेबीलोन, मिस्र आदि की सभ्यताओं से हजारों वर्ष बाद की है। उनकी इस मूल्यद्वारा घातना को माहंजोदड़ो, हरप्पा आदि दो चार स्थानों की खुदाइयों के कारण ही भारतीय सभ्यता जो ईसा से कुछ शताब्दियों पूर्व की ही समझी जाती थी, हजारों वर्ष पूर्व तक पहुँच गई। इन उत्खननों ने उन्हें यह मानने के लिये प्रेरित किया कि अब से ५, ५॥ हजार वर्ष पूर्व भी, भारत में कोई सभ्यता विद्यमान थी तथा वह उच्च सभ्यता थी, चाहे वह भारत की किसी भी जाति की रही हो।

यूरोपीय विद्वान सिंधु सभ्यता को प्रागैतिहासिक मानते हैं। इसका एक कारण तो यह है कि इतिहास के लिये जिन ठोस आधारों का हाना आवश्यक समझा जाता है वे प्राचीन भारत में प्राप्त नहीं होते। दूसरे यूरोपीय विद्वानों की दृढ़ धारणा है कि भारतीय सभ्यता तथा भारतीय इतिहास भी ६॥, २ हजार ६०० से अधिक प्राचीन नहीं हैं, किंतु सिंधु सभ्यताम सुमेर सभ्यतासे काफी सम्बन्ध मिलता है जिसका कितना विवरण सुमेर सभ्यता वाले अध्याय में दिया जा चुका है। इसी सम्बन्ध के कारण यूरोपीय अन्वेषकों को यह तो स्वीकार करना पड़ा कि यह सभ्यता सुमेरी सभ्यता की समकालीन अथवा उसके बाद की होनी चाहिये, किंतु सिंधु सभ्यता सुमेरी सभ्यता से प्राचीन हो सकती है यह बात उन्हें नहीं सूझती। वे सिंधु सभ्यता को सुमेरी सभ्यता से प्रभावित मानते हैं। सुमेरी सभ्यता लगभग ४००० ई० पू० की सिद्ध होती है अतः उन्होंने सिंधु सभ्यता का प्रारम्भ ३००० ई० पू० के लगभग माना है। उनकी यह भी कल्पना है कि सुमेर तथा सिंधु घाटी दोनों की सभ्यतायें द्रविड़ सभ्यतायें हैं क्योंकि द्रविण लोग जो मूलतः भूमध्यसागर, के निवासी थे वहाँ से चलकर सुमेर में आये और वहाँ उन्होंने अपनी सभ्यता स्थापित की। इसके पश्चात् वे वहाँ से चलकर भारतमें सिंधु प्रांत में आये तथा वहाँ भी अपनी सभ्यता का प्रसार किया। द्रविड़ों का सिंधु घाटी में आगमन लगभग ३, ३॥ हजार वर्ष ६००० म. दृभा हागा अतः तभी से इस सभ्यता का प्रारम्भ होता है। इस सभ्यता का दूसरा छोर भाषों के भारत आगमन से मिलने के लिये उन्होंने यह कल्पना की है कि लगभग १५०० ई० पू० में यह सभ्यता नष्ट हो चुकी थी। उनका मत है कि आय लोग जब १५०० ई० पू० के लगभग गण्डर से पञ्जाब में आये तो उन्होंने अपने सिंधु में बहकर सिंधु की द्रविण सभ्यता को क्षीण ही नष्ट कर दिया।

किन्तु यह धरना पुद्धिगम्य नहीं है। यदि यह भी माना जाय कि आर्य लोग भारत में जाहर से आये और १५०० इ० पू० के आसपास आय तर मी उन्होंने पञ्जाबमें आकर और वहा धरना पर जनाये निना सिंधु में पहुँचकर एक सहनों वन पुरानी, सुदृढ तथा उच्चकोटि की सभ्यता को नष्ट भ्रष्ट कर दिया यह कुछ समझ में आनेवाली बात नहीं।

वास्तव में देखा जाय तो सिंधु सभ्यता एक अत्यन्त उन्नत, समृद्ध तथा सम्पन्न नगरी सभ्यता है जो भिन्न और मेसोपोटामिया आदि की समकालीन सभ्यताओं से भी कई बातों में उड़ी चढ़ी माना जाती है। उसकी उत्कृष्टनीय बातों में विशाल स्नानागार, संगीत भवन, राजमहल, बड़े बड़े कमरे, सड़कें रास्तों पर राशनी लगाये जाने के चिह्न, अनेक प्रकार की मुहरें, एक नतकी की काँसे की सुंदर मूर्ति, दुमजिले और तिमजिले मकान और उन तक पहुँचने के लिये जीने आदि बसुएँ हैं जो सुमेर के स्थानों से प्राप्त इन वस्तुओं से भी अच्छी हैं।

किन्तु यह प्रश्न कि इस सभ्यता के निर्माता कौन थे अभी तक हल नहीं हो सका है तथा इसका कारण पश्चिमी इतिहासकारों की कुछ भ्रांत धारणाएँ ही जान पड़ती हैं। वे यह मानकर चलते हैं कि यह सभ्यता भारतीय नहीं हो सकती और यदि वह भारतीय हो भी तब भी कम से कम आर्यों की ता नहीं हा सकती क्योंकि आर्य लोग एक तो भारत में बहुत बाद में आये—१॥, २ हजार इ० पू० के लगभग—दूसरे वे प्रामों में रहते थे और खेती तथा पशु-पालन करते थे। अतः यह या तो द्रविड़ सभ्यता है या बाहर कहीं से आये हुए लोगों की है। अनेक भारतीय विद्वान भी इसी मत के अनुयायी हैं।

### सिंधु सभ्यता की कई बातें—

दुमजिले तथा पक्की इटो के बने हुए मकान, उन तक पहुँचने के लिये जीने, पानी के बहाव के लिये मोरिया, अश्राकित मुहरें आदि सुमेरी सभ्यता से मिलती-जुलती देख कर कुछ विद्वानों—हा० वेडेल सिद्धती समय आदि न यह भी अनुमान किया है कि सुमेरी लोग ही प्राचीन आर्य थे आर सुमेरी सभ्यता ही प्राचीन आर्य सभ्यता है तथा उड़ी लोगों ने बाद में सिंधु में आकर इस सभ्यता की स्थापना की। इन प्रकार के सिंधु सभ्यता का आय सभ्यता तो मानते हैं किन्तु साथ ही वे यह भी मानते हैं कि आर्य लोग मूलतः सुमेर के निवासी थे और वहाँ से वे भारत में आये। उनका मत है कि सुमेर वालों की एक शाखा ने सिंधु प्रांत को जोतकर मारनजात्रा बसाया और बाद में उनकी धारणाएँ सप्त सिंधु में तथा उसका पीछे भारत के काने-कोने में पहुँची। उड़ी की अर्थात् सुमेरी आर्या की ही दूसरी लहर पश्चिम की ओर गयी और उमने यूरोपीय देशों को बसाया। इस प्रकार के विद्वान आर्या का मूल स्थान मध्य-एशिया के मानकर सुमेर मानते हैं और वहाँ से उनका पुरन तथा पश्चिम में जाना बताते हैं।

श्री दिनकर ने अनुमान किया है कि जब आर्य जाहर से—मध्य एशिया से—इस देश में आये तब ईरान से उनका सम्पर्क बना रहा। इरानिया और वैदिक आर्यों के बीच सीमा विभाजा जैसी काइ बात नहीं थी। जायों न उपनिवेश महापोटामिया तक फैले हुए थे। उधर ईरान की तरफ के मितन्नी और हित्तादत राते वैदिक देवताओं की प्राथनाएँ करते थे।

कुछ विद्वानों का मत है कि इस सम्भता का निर्माता भूमध्यसागर के निकटपत्ती स्थानों—द्रीट तथा एजिया तटवर्ती द्वीपों से आये होंगे। अब लोगों का मत है—जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि द्रविड़ लोग ही आरम्भ में भूमध्यसागर तट के निवासी थे और वहा से वे लाग इराक, ईरान, बन्दूनिस्तान होते हुए सिंधुमें आये और वहा उन्होंने अपनी सम्भता फैलाइ। इस मत के समर्थन में वे लोग बन्दूनिस्तान के एक भाग में बोली जाने वाली ब्राहुई भाषा की ओर संकेत करते हैं जो द्रविड़ भाषा से मिलती-जुलती है। कुछ लोग इस मत के भी हैं कि सिंधु सम्भता है तो द्रविड़ सम्भता ही किंतु द्रविड़ लोग जाहर से नहीं आये बल्कि वे दक्षिणी भारत से ही चकर समस्त उत्तरी भारत में फैल गये थे। वे ही लोग सिंधु और बन्दूनिस्तान तक भी पहुँचे और सिंधु में उन्होंने अपनी सम्भता का प्रसार किया।

भारत में पुरातत्व के मुख्य अधिकारी सर जान माशल का—जिनका उक्त सिंधु-घाटी के उत्खनन से घनिष्ठ सम्बन्ध था—कथन है कि सम्भव है इस सम्भता का विकास सिंधु घाटी से ही हुआ हो। दूसरी ओर हरप्पा की खुदाई से सम्बन्ध रखने वाले डा० मार्टीमर हीलर ( १९४५ में संगठित पुरातत्व जोड के डाक्टरेक्टर जनरल ) का अनुमान है कि हरप्पा सम्भता के निर्माता ६० पू० २५०८ के लगभग कहीं जाहर से आये और हरप्पा में आगद हुए तथा उ होने हरप्पा तथा उसके आसपास एक दुग प्रकार की नींव भी डाली थी।

इस प्रकार सिंधु सम्भता के सम्बन्ध में अवेगकों तथा इतिहासकारों द्वारा अनेक प्रकार की कृतार्थ की गई हैं तथा आर्यों के आदि निवास, ऋग्वेद के निर्माण-काल आदि का समान यह प्रश्न भी अभी तक उत्कृत न पड़ा हुआ है। यही कारण है कि उक्त कल्पनाओं में से अधिनास अत्यंत दुर्लभ आधारों पर गड़ी की गई है तथा केवल अनुमान मात्र हैं।

सिंधु सम्भता भारतीय तथा आर्य सम्भता है—

श्री सिटनी मिश्र तथा श्री वेडल आदि का यह अनुमान कि मुमेरी लोग आये थे तथा उनकी सम्भता आर्य सम्भता है तथा उनकी स्थापित की हुई सिंधु सम्भता भी

आर्य-सभ्यता है। श्री टिनकर का यह कथन कि आर्यों के उतारविेश ही मेमोपो-टासिया तक फैल हुए थे सभ्य के बहुत निकट तर पहुँचने हैं, किन्तु वे सम्भवतः मर को पूर्णरूप से ग्रहण नहीं कर पाते। यह मानने के अनेक कारण तथा प्रमाण हैं कि सिंधु-सभ्यता बाहर की नहीं, बल्कि भारतीय सभ्यता है तथा वर भारतीय आर्यों की ही कुछ शाखाओं की स्थापित की हुई है—यह सभ्यता आर्यों की तथा उनके माइ-रंधुनों का, जो असुर कहलाते थे, स्थापित की हुई है। यह सम्भव है कि उसमें द्रविड़ों का भी कुछ हाथ रहा हो किन्तु द्रविड़ भी भारतीय ही हैं।

इस सम्बन्ध में पहले तो हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि सिंधु-सभ्यता 'प्रागैतिहासिक' अथवा वैदिक सभ्यता से प्राचीन नहीं जैसा कि यूरोपीय तथा भारतीय विद्वानों ने भी धारणा बना रखी है, बल्कि वह वैदिक सभ्यता से बहुत पीछे की है। वर आर्यों से अनेक आधारों पर सैदान्तिक मतभेद रखनेवाली उनकी अथ टोलियों द्वारा स्वतन्त्र रूप से विकसित की गई सभ्यता है तथा इस प्रकार वह आर्य-सभ्यता का ही एक विकसित रूप है।

इस तथ्य को समझने के लिए पहले हमें यह देखना पड़ेगा कि आर्यों की मुख्य मुख्य कौन-सी टोलियाँ थीं। उनकी दो सबसे मुख्य टोलियाँ थीं—'देव' तथा 'असुर'। जैसा श्री सम्पूर्णानन्द का कथन है 'देव' शब्द 'दिव' धातु से निकला है जिसका अर्थ है चमकना, जो चमकता है, प्रकाशमान है वह देव है। 'असुर' वत् है जो 'असु' बाला है जो नश्वान है जिसमें प्राणशक्ति है। १ यह शब्द भी देवों के लिए प्रयुक्त हुआ है जैसा ऋ० १-१७४-१ में इन्द्रको असुर कहकर सम्बोधित किया। २ परन्तु पीछे से व्यवहार में आकर पड़ा। ऋग्वेदिक काल में ही धारे धीरे 'देव' शब्द इन्द्रादि के लिये तथा 'असुर' शब्द उनके उचरान शत्रुओं—दैत्यों—के लिये व्यवहृत होन लगा था। ३

किन्तु आर्यों की सभी शाखाओं में यह परिवर्तन नहीं हुआ एक शाखान 'असुर' शब्द का प्रयोग पुराने अथमें जारी रखा। उसने देवाधिदेवको उसी पुरानी उपाधि 'असुर' महत् से पुकारने की परम्परा बनाये रखी। परिणाम यह हुआ कि एक शाखा असुरोपासक तथा दूसरी देवाभासक हो गई। पहली शाखा के लिए असुर शब्द बुध तथा देव शब्द अग्नि हागना, दूसरी के लिये 'असुर' शब्द अग्नि और 'देव' उरा होगया। क्रमशः एक मत के अनुयायी देवों के भगडेके नीचे आ पाहे हुए तथा दूसरे पक्ष के माननेवाले 'असुर' सना में भर्त्सित हो गये।

१ ऋग्वेद ३-५५ के ५ मंत्रों में असुर शब्द आया है जिसका अर्थ बटवान है।

२ 'दिव' धातु के देव देवा रक्षा इत्यादि असुर (असुरान) (१-१७४ १)

३ आर्यों का आदि देव—सम्पूर्णानन्द अध्याय ६

श्री सम्पूर्णानन्द आगे लिखते हैं—'प्रजारति की अदिति नामक पत्नी से आदित्यों, अर्थात् देवों की ओर दिति से दैत्यों की उत्पत्ति बनाई जाती है। इससे यह तात्पर्य निकला कि देव और दैत्य, गुर और अमुर सौतेले भाई थे। उनकी आपस में लड़ाई थी। परन्तु मनुष्य ( देव ) लोग यज्ञ होमादि द्वारा देवों की उपासना करते थे इसलिये अमुर लोग मनुष्यों का तग करते थे। ये कथाएँ भी इस बात की पुष्टि करती हैं कि देवामुर सम्प्रदाय प्रकृति के मनुष्य पर हुआ और नित्य होता रहता है वहीं उसकी आरुति पृथ्वी पर आया की दो शाखाओं में प्रजापति की ही दो सन्ततियों में हुई। जिनमें से एक तो यज्ञों से देवों की श्रुति करना चाहती थी और दूसरी इसका विरोध करती थी।

ऋग्वेद के भीतर ऐसी पर्याप्त सामग्री है जिससे यह सिद्ध होता है कि किसी समय या यों कहिये कि दीवसाल तक आपसमें घोर युद्ध हुआ है। यह युद्ध किन कारणोंसे हुआ यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता। परन्तु उन कारणों में उपासना विधि को प्रधान स्थान मिल गया यह निर्विवाद है और कारण दब गये पर यह बात दर न सकी। इसमें कोई समझौता सम्भव न था। एक को अपने अमुरोपासक होने पर गव या दूसरे को देव पूजक होने का अभिमान था। एक इन्द्र को देवराज मानता था और उनके नाम पर लड़ता था दूसरा मित्र, वरुण, अग्नि, वायु, यम के साथ किसी दूसरे का नाम लेना नहीं चाहता था। एक पुरानी पद्धतिसे टलना नहीं चाहता था, दूसरा इस धार्मिक विकास का समर्थक था। दोनों पक्षों में युद्ध हुआ। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि देव याजकों की जीत हुई इसका सबसे बड़ा प्रमाण तो यह है कि भारत में अमुर याजक नहीं रह गये।"

वास्तव में 'देव' तथा 'अमुरों' में तीव्र मतभेद होने का फिर सघन तथा सप्राम होने का मूल कारण यही जान पड़ना है। इसी सम्प्रदाय के कारण अमुर लोग आर्यों के क्षेत्र को तथा अन्त में आर्यों के देश को—अपने देश को छोड़ने के लिये बाध्य हुए। समस्त आर्यों में कुछ दल ऐसे भी थे जो आस्थात्मिकता की अपक्षा भौतिकता पर—घन सम्पत्ति इकट्ठी करने पर तथा सुखका जीवन व्यतीत करने पर अधिक जोर देते थे। ऐसे ही लोगों में चेलों भी रहे होंगे जो 'पणि' कहलाने थे। इसी प्रकार कई जातिवा आर्यों से विभिन्न कारणों से मतभेद रगने वाली पैदा हो गई।

वायु पुराण ( अध्याय ६८ ) तथा मत्स्य पुराण ( अध्याय ६० ) में भी यह उल्लेख आता है कि महर्षि कश्यप की अदिति, दिति, दनु विनता, कद्रू आदि १३ स्त्रिया थीं जिनसे उनके वंश का दीर्घ विस्तार हुआ। इनमें से दनु के पुत्र अपने वंश के परम विद्वान्त एवं महान अमुर थे तथा ब्राह्मण घन य भी विरोधी थे। दिति के पुत्रों में ही हिरण्यकश्यप तथा हिरण्याक्ष हुए जो प्रसिद्ध अमुर बड़े गये हैं। हिरण्यकश्यप के पुत्र प्रह्लाद थे जो अमुरों को छोड़कर देवों से मिल गये थे—उनके मत्त घने रह। तात्पर्य

यह कि असुर कोर विदेशी लोग नहीं थे, आर्यों की ही एक भिन्न शाखा के वंशज थे इन असुरों को ही ऋग्वेद में 'दस्यु' तथा 'दास' आदि नामों से कहा गया है। ए० रागीजिन नामक इतिहासकार ने यही मत प्रगट किया है कि आर्य लोग अपने ही उन साथियों को जो यह याज्ञादि मन्त्र न रखते थे, वैदिक धर्म से अलग मान लेते थे तथा इन्हें दस्यु, अनाय, असुर आदि नामों से पुकारते थे।

इस समय धर्म भी अग्निशक्त्र का मत है कि आर्यों में कुछ ऐसी जातियाँ भी थीं जो आर्य आर्यों के समान प्रगतिशील नहीं थीं तथा कुछ ऐसी भी जातियाँ थीं जो यद्यपि उनके समान ही आगे बढ़ी हुई थीं कि तु जिनसे अनेक कारणों से आर्य लोग घृणा करते थे तथा असुर, दस तथा दस्यु आदि नामों से पुकारते थे। इनमें सम्भवतः अर्य सभी लोग सम्मिलित थे। ऐसे लोग धार्मिक कार्यों में, उपासना-विधि में तथा सामाजिक व्यवहार में आर्यों से भिन्नता रखते थे। यही असभ्य जातियाँ आगे अपना निस्तान, बर्द्धिस्तान, पारस तथा लघु एशिया आदि देशों में फैली।

तावत्, आर्यों की बहुसंख्यक जातियों के साथ धार्मिक मामलों में, भौतिक दृष्टिकोण में तथा आर्य जातियों में मतभेद होने के कारण तथा सर्प में हार कर अनेक टोन्वियों दूर-दूर के देशों में चली गई। इन्हीं में से एक टोनी ईरान गई और असुर मन्द (असुर मन्द) की उपासक बरहान। इन्हीं में से एक टोली, जिनमें भौतिक दृष्टिकोण वाली असुर, पणि तथा अर्य लग वे दक्षिण की ओर सिंधु में जा बसी और वहाँ उसने स्वतंत्र रूप से अपनी सभ्यता का विकास किया। अपने भौतिक दृष्टिकोण के अनुसार ऊँचे ऊँचे और परने भवन बनवाये, स्नानागार बनवाये तथा ऐदव्यपूर्ण जीवन बिताया। उन्होंने अपनी भौतिक सभ्यता को इतना ऊँचा उठाया कि वह नगरी सभ्यता मानी जाने लगी, क्योंकि आज वैसी सभ्यता के लक्षण नगरी में ही दिखाई देते हैं।

इस प्रकार देव या असुर जिन्होंने सिंधु सभ्यता का निर्माण तथा विकास किया, आर्यों के ही भाई बंधु थे, किंतु धार्मिक उपासना तथा अर्य कर्म जातों में उनका देव पूजक आर्यों से मतभेद हो जाने के कारण उन्हें अपने भाइयों से अलग होकर स्वतंत्र रूप से अपना बस्तियाँ बसाने पर ही जरा उर्ध्व धार्मिक तथा सामाजिक पूण स्वतंत्रता थी।

पणि लोगों के सम्बन्ध में मतभेद है कि वे आर्य धर्म अथवा अनाय। इतना निश्चित जान पड़ता है कि वे लग भी 'देव' नामक आर्यों से मतभेद रखते थे तथा अपने व्यापार की ओर अधिक ध्यान देते थे। ऋग्वेद में इनका कर्म स्थानों पर उल्लेख आया है। यह भी जान पड़ता है कि वे लोग व्यापार के अतिरिक्त पशुओं की चोरी, लूट मार आदि भी करते थे। उन वैदिक आर्य इन्हें दस्यु' आदि निन्दा सूचक नामों से पुकारते थे।



और इनके विनाश की कल्पना करते थे। किंतु ये ग्ले उ नहीं कहलाते थे। इससे अनेक विद्वान इनके आर्य होने की ही अधिक सम्भावना बताते हैं। निरुत्कार यास्क ने 'पणियगिग्भरति' कहकर पणियों को वणिक अथवा वैश्य बनलाया है। अपने यापार का फेंटाव उन्होंने दूर दूर के देशों तक कर लिया था। इन्हें त्वण्टा की संतान भी कहा गया है और त्वण्टा वास्तु शास्त्र का शाता प्रसिद्ध है। इसी से अनुमान होता है कि जिस समय देवगण खेतों करने थे तथा ग्रामों में रहते थे, उसी समय इन लोगों ने आर्यों के मुख्य दल से अलग होकर नई नई नगर बसा लिये और उन्हें भय भवनों से युक्त करके रक्षा के लिये परकोटे तथा दुर्ग भी बनाये जिनका संकेत ऋग्वेद में 'पुर' शब्दसे मिलता है।

**सिंधु-सभ्यता द्रविड है ?**

सिंधु सभ्यता के सम्बन्ध में कुछ मत और भी हैं। एक अमेरिकी पुरातन शास्त्री मोरिस स्विबेक ने गहरी खोज के आधार पर यह मत प्रकट किया था कि इस सभ्यता के संस्थापक यहूदी लोग थे जो अपने देश खाल्दिया से निकाले जाने पर इधर आये थे। यहूदियों में यह परम्परा प्रसिद्ध ही है कि उनके आदि पुरुष अब्राहम (अब्राहम) अपने मूल देश से निकाले गये थे। इसी आधार पर श्री स्विबेक ने अनुमान किया है कि यहूदियों को एक टोली तो अब्राहम के नेतृत्व मनील घाटी की ओर चली गई थी और दूसरी उनमें मतीजे खात के नेतृत्व में ईरान होती हुई भारत में आई और सिंधु में बस गई जहाँ उसने अपनी सभ्यता का विकास किया।

किंतु अन्य विद्वानों ने यह अनुमान निरन्तर मनगढ़त बताते हुए कहा है कि अब्राहम का समय १५ वीं १६ वीं शताब्दी ई० पूर्व सिद्ध हुआ है और उस समय तक तो सर जॉन मार्शल तथा डॉ० मार्गमर ह्यूलर दोनों के ही अनुसार-सिंधु सभ्यता का अन्त हो चुका था। इस प्रकार श्री स्विबेक का सिद्धान्त इस बात का उदाहरण है कि है कि पारचात्य इतिहासकार कितने निर्बल आचार्यों को लेकर एक नया सिद्धान्त खड़ा कर देते हैं तथा प्रयत्न डालते हैं।

कुछ लोग जैसे कि पूव में कहा गया है सिंधु सभ्यता को द्रविड़ सभ्यता मानते हैं। १

१ सिंधु घाटी सभ्यता—श्री मोरिस स्विबेक।

१ इस महान् सभ्यता के बनाने वाले इस देश के द्रविड़ थे। उन्होंने ही इसका अग्रभू आज़स को ५ हजार वर्ष पहले किया था। इससे करीब १॥ हजार वर्ष पहले आर्यों ने इस देश में आकर इस सभ्यता का अन्त कर दिया।

—सांस्कृतिक भारत—भगवतसरण उपाध्याय पृष्ठ २४ २५।)

तथा 'यद् निश्चित सा हो चला है कि यह सभ्यता आर्यों के द्रविड़ों की है जो भारत में आर्यों के आने के पूर्व नीहित थी—प्राचीन भारत, भगवतसरण उपाध्याय पृष्ठ ३

इनकी मायता के आधार भी सब ठही हैं। द्रविड़ों का प्राचाय तथा द्रविड़ सभ्यता का प्रभाव अधिकतर दक्षिण भारत में ही रहा। कुछ लोगों का अनुमान है कि द्रविड़ों का विस्तार उन दिनों समस्त मध्यभारत तथा उत्तरी भाग तक हो गया था तथा सिंधु तक भी उनका प्रभाव रहा होगा। यह सम्भव है कि सिंधु-सभ्यता पर आर्य सभ्यता के अतिरिक्त परचातकाल में द्रविड़ों की सभ्यता का भी कुछ प्रभाव पड़ा हो जैसा कि डा० सपनारायण का मत है।+ किन्तु इस सम्बन्ध में एक बात ध्यान देने योग्य है। हाल के अनेक अन्वेषणों तथा उत्खननों के आधार पर प्रकट हुआ है कि मोहेंजोदड़ो और हरप्पा में जिस सभ्यता का उत्पादन हुआ है वह कब तक सिंधु प्रांत तक ही सीमित नहीं। वह दक्षिण में गुजरात और सौराष्ट्र तक तथा उत्तर में पंजाब और गंगा के मैदान तक भी फैली हुई थी। सौराष्ट्र के लोधळ और रणपुर में रात्रपूताना के बीकानेर राज्य में प्राचीन सरस्वती नदी के प्रदेश में तथा सतलज और गंगा की उत्तरी उपत्यकाओं में भी सिंधु-सभ्यता से ही मिन्ने-नुन्ने खण्डहर प्राप्त हुए हैं तथा बहुत-सी वस्तुएँ भी मिली हैं। लोधळ नगर मोहेंजोदड़ो से ६०० मील दक्षिण पूर्व में सरत के पास है। यहाँ भी कई तरह के हथियार तथा औजार, तँबे और काँसे की कुल्हाड़ियाँ, पिन, गहने, सोने के बुन्दे, मनके आदि मिले हैं। ताँबे का रना एक सुन्दर हथ भी मिला है जिससे दलाई कला में प्रगति का परिचय मिलता है। गन्दे पानी के निरास के लिये मोहेंजोदड़ो और हरप्पा के समान नालिया भी यहाँ थीं। स्नानागार भी उसी प्रकार के टोके बने मिले हैं। उत्तर में अम्नाला जिले में स्थित रोपड का टीला सबसे अधिक समृद्ध सिद्ध हुआ है, यद्यपि वह लोधळ से कुछ नाद का सम्भल जाता है। रोपड की खुदाई से भी विद्वानों ने यही निष्कर्ष निकाला है कि यहाँ भी प्रारम्भ में सिंधु सभ्यता के लोग रहते थे।

प्रश्न यह है कि क्या द्रविड़ों का तथा द्रविड़ सभ्यता का विस्तार किसी भी समय अम्नाला तथा उत्तरी पंजाब तक हुआ था। ऐसी सम्भावना उसी दशा में हो सकती है जब हम आर्यों को गहर से गारा हुआ मानें, परन्तु जैसा कि अनेक स्थानों पर बताया गया है यह मानना युक्तियुक्त नहीं है तथा आप लागोच रहते हुए द्रविड़ लोग टेठ पंजाब तक पहुँच नहीं सकते थे।

अतः सिंधु सभ्यता वास्तवमें आर्य लोगों की ही कुछ शाखाओं की—अनुप, पणि आदि की—मानना अधिक युक्तियुक्त है। पंजाब तथा उत्तर प्रदेश तक इस सभ्यता का विस्तार यदी प्रमाणित करता है कि यह सभ्यता यहाँ के स्थानीय लोगों की ही थी कहीं गहर के लोगों की नहीं। पणि लोग स्थानीय होने के कारण अधिक सभ्यत से तथा अमर लाग लपटा के यद्यत होने के कारण शिल्लभ थे। जिनो ही आध्यात्मिकता की

अपेक्षा भौतिक उन्नति की ओर अधिक ज्ञान देन वाला था। अतः उन्होंने धीरे धीरे एक उच्च कोटि की नगरी सभ्यता का विकास किया। एक ऐसी सभ्यता जो शोष आर्या की सभ्यता से भिन्न तथा भौतिक दृष्टि से उच्च कोटि की थी। यह सम्भव है कि ऊपर कहा गया है कि कुछ काल परचात इन असुर तथा पणि लोगों को दक्षिण से आया हुआ द्रविड़ भी सुगन्त तथा सिंधु में मिश्रित हो गया तथा य द्रविड़ भी उन लोगों के साथ मिलकर रहने लगे हों। द्रविड़ लोग भी पणियों के समान कुशल व्यापारी थे अतः यह सम्भव है कि उन्होंने भी सिंधु घाटी में अपनी कुछ प्रस्तुतियाँ प्रस्तुत की हों। जो लोग इस सभ्यता में द्रविड़ प्रभुत्व देखते हैं उसका कारण दो सकता है।

जैसे जिन लोगों का यह विचार है कि आर्य लोग केवल ग्रामों में ही रहते थे, नगरी सभ्यतासे अनभिज्ञ थे अथवा नगर तक नहीं गये थे, उनका विचार पूर्णतया सत्य नहीं है। ऋग्वेद (४ ३०-२०) में पत्थर के बड़े बड़े नगरों का भी वर्णन मिलता है तथा हजारों खम्भों वाले मकानों का भी वर्णन आता है। ११ जान पड़ता है उस समय भी घनवान तथा ऊँचे अधिकारी लोग पत्थर तथा लकड़ी के बने बड़े बड़े भवनों तथा महलों में रहते थे जिनमें गम्भ भी होते थे। ऋ० ६ १६ ६ में 'त्रिवरुण' शब्द है जिसका अर्थ भाष्यकारों ने तिमजिले मकान किया है।

#### सिंधु-सभ्यता का अन्त—

ज्ञान पड़ता है कि आर्या के मुख्य वासस्थान पंजाब से दूर आकर ये असुर और पणि आदि लोग सदस्यों वर्षों तक शांतिपूर्वक रहे तथा इस समय में उन्होंने अपनी सभ्यता की बहुत उन्नति कर ली। व्यापारी बग तथा घन-सम्पन्न लोगों के लिये यह कुछ आश्चर्य की बात भी नहीं है। उन्होंने माहजोदड़ों को एक उच्च कोटि का नगर बना दिया और उस नगर को सप्त प्रकार की सुगन्धद्रव्यों से युक्त करसुंदर तथा समृद्ध बना दिया।

परन्तु ऐसा भी जान पड़ता है कि उत्तर से आया लोग धीरे धीरे पुनः इन असुरों का मुहानेवाला कान के लिये सदाबल सिंधु घाटी की ओर बढ़ने लग और सिंधु सभ्यता के निर्माताओं से एक बार फिर उनका युद्ध होने लग। सिंधु घाटी के लोग घनज्ञान अक्षय धन, वे ऐश्वर्य का जीवन जिताते थे, परन्तु इसी कारण वे वीरता तथा युद्ध-रत्ना में पिछड़े हुए थे। वे अच्छे सैनिक न थे। अतः आर्यों के युद्ध-रत्ना निपुण समूहों के सामने न टिक सका।

ऋग्वेद में ऐसे अनेक मंत्र मिलते हैं जिनमें इन्द्रसे दासों तथा दस्युओं का इष्ट तथा

---

१ शत मन्त्र मन्त्रीय पुरामित्री व्याख्यत—दिवोत्साय टाणुपे ४-३०-२० इन्द्र पत्थर के बने बड़े पुरों को (शत्रुओं के) विविध प्रकार से तोड़ फोड़ दे

पक्षरों के बने हुए मुट्ठ पुरों का ताड़ने की प्रार्थना की गई है। एक स्थान पर 'हरियूपिया' शब्द भी आया है कुछ लोगों का अनुमान है कि यह 'हरियूपिया' 'हरप्पा' के लिये ही आया है। लोगों नामोंमें सादृश्य आश्चर्यजनक है किन्तु अथ लात 'हरियूपिया' एक नदीका नाम बताते हैं। नाम साम्य को देखते हुए 'हरियूपिया' का अर्थ 'हरप्पा' ही लगता है।

श्रुवेत् न उठे मण्डल का २७ वा सूत्र भरद्वाज का आशय है १ उसमें इन्द्र के पराक्रम का वर्णन है। इन्द्र ने अम्बावती चायमान व द्वारा वरशिखों के पशुओं का वध कराया और उनका हरियूपिया नगर अपने अधिकार में कर लिया।

१ वधीन्त्रा वरशिखस्य शेषेऽम्बावतिन् चायमानान् शिशुन्

वृचीवता वदरियूपिया या न पूर्वे अरेभिराम परात्त। ६ = ७ ५

इसका सन्निप्त अर्थ इस प्रकार किया गया है अम्बावती चायमानका ही इच्छित पुत्र का लाभ कर देने के लिये तू न ( इन्द्र ने) वरशिखों के पशुओं का वध किया। हरियूपिया के पूर्व की ओर से नद्वभागमें स्थित वृचीवन को मार गिराया तत्रपदिचम माग में स्थित परम मय में विष्णु होगया।

किन्तु आर्य साहित्य मण्डल अजमेर के श्रुवेत् माध्यमें इस मंत्र का अर्थ कुछ दूसरे ही प्रकार से किया गया है। इसमें हरियूपिया का अर्थ मनुष्यों को गुणों से सुश्रवण करण वाली विद्या के निमित्त अथवा मनुष्यों के राजासी राजा की पालन करने वाली नीति म लग हुए, वृचीवन का अर्थ अविद्या के छेदन करनेवाली उत्तम इच्छा से युक्त विद्यार्थी अथवा प्रजा के उच्छेद करने वाली शक्ति से युक्त दुष्ट पुरुष, चायमान का अर्थ सत्कार करने वाले अथवा सत्कार करनेवाले प्रजाजन, अम्बावतिन् का अर्थ समीप रहनेवाले अथवा अनुकूल, वरशिखस्य अर्थ उत्तम शिखा धारण करनेवाले या वृत्तवाले तथा वधीन् का अर्थ शत्रु के अथवा दण्डित करे किया गया है। इस प्रकार सङ्गे में यह अर्थ किया गया है कि उत्तम आचार्य अपने शिष्यों की ताड़ना करे और उन्हें शिक्षा दता हुआ दण्ड भी दे अथवा राजा प्रजा जनका पुत्रान् प्रेम करता हुआ भी दिन से ही उनका दण्डित भी करे।

२ श्रुवेत् १०३ = मंत्र की दूसरी पक्ति इस प्रकार है —

त्वयता वय दस्यामिनत्पुरोऽनातुन् परिपता श्रुचिपना।

इसका भी अर्थ आर्य साहित्य मण्डल वाण काव्य में भिन्न प्रकार से किया गया है जो इस प्रकार है—देसेनाते, त् दस्यस्य अर्थान् देदी नागों, कुटिल व्यवहारों का यत्नान वा करने वाले अनातुन् अर्थात् अजन अनुकूल उचित पदाधिकारों को न

## अध्याय १०

### आर्य-सभ्यता का दूर देशों में विस्तार

#### (१) भारत और ईरान—

यूरोपीय तथा भारतीय इतिहासकार इस बात में एक मत हैं कि सभ्यता में दो ही प्राचीन देश ऐसे हैं जहाँ आर्यों का निवास था— ये दो देश हैं भारत और ईरान। परन्तु इन देशों में आर्य लोग किस प्रकार पहुँचे इस सम्बन्ध में मतभेद है। यूरोपीय इतिहासकारों की धारणा है कि आर्य-जाति किसी समय मध्यएशिया में वास करती थी। वहाँ से वह जाति नई ग्यांग सामग्री तथा पशुओं के लिये अच्छे चरागाहों की खोज में निकली और तब उस जाति का एक दल एलजुज पर्वतों की तरलहटी में बस गया और दूसरा हिमालय के दक्षिण व प्रदेशों में आगया। एक ने अपने प्रदेश का नाम आर्यन रखा जो पर्याय और फिर ईरान बन गया। दूसरे दलने अपने देश का नाम भारत अथवा आर्या-वर्त रखा जो आज तक उसी नाम से प्रसिद्ध है। कुछ विद्वानों का कथन है कि ये सारी जातियाँ जिनकी भाषा संस्कृत से मिलनी जुलती हैं प्राचीन काल में एक ही स्थान पर रहती थीं। वहाँ से लगभग ४ हजार वर्ष ई० पू० में (आज से लगभग ६ हजार वर्ष पूर्व) ये लोग छोटी छोटी टोलियों में अपनी भेड़ बकरियों को लेकर निकल पड़े और लगभग एक हजार वर्ष तक घूमने के बाद उनके दो भाग हो गये जिनमें वंशज आर्य और ईरानी हैं। इन्हीं अनेक दलों में से एक दल यूरोप की ओर बढ़ गया और उसी की सभ्यता आज की अनेक यूरोपीय जातियाँ हैं। प्रो० मेक्समूलर प्रायः इसी मत के हैं। उनका अनुमान है कि हिन्दू और ईरानी लोग एक साथ पञ्जाब की इंडस नदी तक आये। यहाँ धर्म व ऋग्वेदों ने उन्हें अलग कर दिया। देवों के पूजने वाले अर्थात् हिन्दू लोग पञ्जाब में रहे और अमुरों की पूजा करने वाले ईरानी लोग पारस को गये। १ श्री राहुल सान्प्रनाथन का मत है कि आज से ४ हजार वर्ष पूर्व इस आर्यवंश के दो टुकड़े हुए जिनमें से एक ईरान की ओर गया जिनकी सभ्यता ईरानी है और दूसरा दल भारत की ओर आया। २ श्री मंगरुतगरण उपाध्याय का भी मत है कि आर्य लोग भारत में जरूर वहाँ जाकर से आये थे और ये अपने गाँव ईरानी आर्यों को पीछे ईरान में छोड़ते हुए सतलुज में आकर बस गये। ३

१ प्राचीन भारत का इतिहास — श्री रामचन्द्र दत्त

२ ईरान—राहुल सान्प्रनाथन पृष्ठ २

३ सांस्कृतिक भारत—मंगरुतगरण उपाध्याय पृष्ठ २६

किंतु इसके विपरीत अनेक भारतीय विद्वानों की धारणा है कि ईरानी लोग भारत से ही चलकर ईरान में गये। जहाँ तक प्रमाणों का सम्बन्ध है इस मत के समर्थन में इतने अधिक प्रमाण मिलते हैं कि यही मत अधिक युक्तियुक्त तथा सत्य जान पड़ता है। डा० सत्यनारायण का कथन है—‘यह कल्पना ग्रात है कि मध्य एशिया से चलकर आर्यों की एक शाखा ईरान में रह गई तथा दूसरी भारत में चली आई अथवा आर्य लोग यूरोप की ओर से चलकर पहिले इरान में बसे और फिर उर्ही में से कुछ लोग भारत में आकर बस गये।\*

ऐतिहासिक तथ्यों का गहन अध्ययन करने वाले स्व० श्री जयशंकर प्रसाद ने इस सम्बन्ध में विशेष प्रकाश डाला है। उनका कथन है कि अत्यन्त प्राचीन वैदिक काल में आर्यों के दो शाखाओं में विभक्त होने का कारण त्वष्टा और इन्द्र का सघर्ष था। त्वष्टा वेदों में विश्वकर्मा अथवा आविष्कारक कहे गये हैं। वैदिक काल में एक प्रमुख व्यक्ति होने के कारण उनके बहुत से अनुयायी थे। किंतु इन्द्र का सम्प्रदाय भी प्रबल हो चला था और इन्द्रा कारण था धर्म-सम्बन्धी गहन मतभेद। त्वष्टा का सम्प्रदाय इरानीय महत्ता से पूर्ण धर्म व शासन स्वीकार करता था, किंतु इन्द्र आत्म विश्वास के प्रचागक और आत्मवाद के समर्थक थे। सम्भव है कुछ अन्य मतभेद भी रहे हों। बड़े बड़े धार्मिक विरोधों के मूल में सिद्धान्त सम्बन्धी मतभेद युद्धों का होना अनिवार्य जग देता है। इन्हीं विरोधों के फलस्वरूप ‘दाशरथ’ युद्ध हुआ जिसमें इन्द्र ने मुद्रास की रक्षा और सहायता की थी। इन्द्र की प्रचण्ड शक्ति के द्वारा वृत्र × की धार्मिक सत्ता का आर्यावर्त प्रदेश से नाश हुआ और अनुरोपासन लोग इरान और उसके पश्चिम में इतने के लिये बाध्य हुए। ऋग्वेद में दस धार्मिक सघर्ष का स्पष्ट परिचय मिलता है।<sup>†</sup> वरुण उस प्राचीन काल में एक मानवीय देवता थे और त्वष्टा इत्यादि लोग वरुण पूजा के प्राचीन समर्थक थे। वरुण ‘राजा’ और ‘असुर’ कहकर पूजित थे। यही असुर वरुण असीरिया के उपास्य देवता ‘असुर’, इरान के ‘अहुर मज्द’ और सुमेरिया के ‘इयोस’ थे। वैदिक आर्यों से अलग होकर पिछले काल में ईरानी आर्यों के द्वारा प्रचलित यही अनुर वरुण की उपासना अनेक रूपों में पश्चिमी एशिया के प्राचीन सभ्य देशों में फैली और इधर इन्द्र-पूजा का या इन्द्र का सम्प्रदाय वैदिक आर्यों में प्रधानता ग्रहण करने लगा।<sup>‡</sup>

• हमारा देश—डा० सत्यनारायण।

× वेदों में वृत्र को त्वष्टा का पुत्र बताया गया है।

† ऋ० ७।३३।३-५ तथा ७।८३।६

‡ ‘दाशरथ युद्ध’ जयशंकर प्रसाद (गंगा का वेदिक जनचरी १९३२ में)

इस प्रकार श्री जयशंकर प्रसाद भी उसी मतके समर्थक थे जो यह मानता है कि प्राचीन भारतीय आर्यों में धार्मिक मामलों में मतभेद उत्पन्न हुआ और यह मतभेद इतना बढ़ा कि युद्धों का रूप ग्रहण करने लगा जिसके फलस्वरूप एक दल को—जो वरुण का उपासक था तथा उ ई अमुर कहता था—भारत छोड़कर बाहर जाने के लिए विवश होना पड़ा और इसी दल के लोग बाहर उस देश में बसे जिसका नाम उन्होंने आर्यान् रखा। (क्योंकि वे भी आर्य ही थे) और जो बाद में पर्यान् तथा ईरान कहलाया।

देव और अमुर एक ही जाति के थे इसने प्रमाण भी वेदों में मिलते हैं। कुछ विद्वानों ने बताया है कि प्रजापति के पुत्रों में 'अमुर' बड़े थे और 'देव' छोटे थे। अमुरों को 'पूर्व देव' भी कहा गया है। सम्भवतः पहिले वे लाग ही राजा थे। जब अमुर और देवों में भगड़े हुए तो 'पूर्व देव' ही जीतते रहे। किन्तु अन्त में देवों के राजा इन्द्र ने अवसर पाकर त्वष्टा पुत्र वृष को धोखे से मार डाला। इसके बाद अमुर हार गये तथा देव राजा बन गये। इसने पश्चात् ही अमुरों को अपना पुराना देश भारत छोड़कर बाहर जाने के लिए बाध्य होना पड़ा।

श्री सम्पूर्णानन्द ने भी इसी मत का समर्थन किया है। उनके कथन का सारांश यह है कि प्रजापति की अदिति नामक पत्नी से, आदित्यों अर्थात् देवों की और दिनित्से दैत्यों की (अमुरों की) उत्पत्ति बनाई गई है अर्थात् देव और दैत्य अथवा सुर और असुर सौतेले भाई थे, किन्तु इनकी आरम्भ में लड़ाई रहती थी। देव लोग यज्ञशोमादि द्वारा देवताओं की उपासना करते थे, किन्तु अमुर लोग इसे पसन्द न करते थे तथा देवों को सग करते थे। इसी से 'देवासुर सम्प्रान' हुआ। दोनों पक्षों में खल युद्ध हुआ परन्तु अन्त में देवों की जीत हुई। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि भारत में अमुर, उपासक नहीं रह गये। ×

भारतीय आर्यों के ईरान पहुँचने के सम्बन्ध में श्री सम्पूर्णानन्द का मत है कि सप्त-विंशत्य छोड़नेके बाद प्रवासी आर्यों की एक शाखा कुछ काल के लिये स्यात् उत्तर प्रव में रही हो (क्योंकि लोकमान्य तिलकने उत्तरी भ्रुव को ही आर्यों का आदि देश बताया है) और जब वह देश हिम-प्रल्प के कारण बसने योग्य नहीं रह गया तो वे लोग घूमते फिरते इरान पहुँचे होंगे। यह भी सम्भव है कि भारत छोड़ने के पश्चात् आर्यों की एक शाखा सीधे इरान पहुँची हो तथा दूसरी शाखा उत्तरी भ्रुव का चकर काटकर वहाँ पहुँची हो। कुछ भी हो इरान में गये हुए लोगों का मूलस्थान भारत ही सिद्ध होता है।

उक्त मत केवल अनुमान अथवा कल्पना मान पर ही आधारित नहीं है, बल्कि इसके समर्थन में प्रमाण भी पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं।

प्रथम तो भारतीय तथा इरानी आर्यों के प्राचीनतम धर्मग्रन्थ ऋग्वेद तथा जेदा-वेस्ता का ही प्रमाण स्वरूप प्रस्तुत किया जा सकता है। वेदों में कहीं भी इस बात का कोई उल्लेख—काई संकेत तक नहीं मिलता कि आर्य लोग कहीं बाहर से इस देश में आये थे। इसके विपरीत गंगा, जमुना, सतलुज प्रदेश की नदियों, सरस्वती, सिन्धु आदि का ही वर्णन उनमें मिलता है। किन्तु इरानी धर्मग्रन्थ में आर्यों के किसी मूल-स्थान का उल्लेख मिलता है और उसे 'आर्याना वेजो' कहा गया है जिसे विद्वान लोग भिन्न भिन्न स्थानों पर जताते हैं। जवेस्ता (यास्ता ६-१७) के अनुसार 'देव्य' नदी के किनारे पर जता हुआ 'आर्याना वेजो' ही इरानी धर्मग्रन्थ जरथुस्त का घर था। इससे अतिरिक्त अबेस्ता में एक स्थान पर जरथुस्त का इस प्रकार विलाप करने हुए जताया गया है—“मैं किस देश का जाऊँ, कहीं शरण लूँ, कौन-स देश मुझे और मेरे माथियों को शरण दे रहा है—तु तो काई सेवक मरा सम्मान करता है, न देश के दुष्ट शासक, मैं जानता हूँ कि मैं निराश्रय हूँ। मेरी आश्रय दे, मेरे माथ जुद्धे मनुष्य हूँ—ए अहुर मन्द (अमुर मयान्) मैं तुझ से विनीत प्रार्थना करता हूँ।” आदि।

श्री सम्पूर्णानन्द जी का विचार है कि यह उर्षी समय का विलाप है जिस समय पराजित होकर अमुरोपासक आर्य सप्त-सिन्धु का परित्याग कर अपना आश्रय ढूँढ़ रहे थे। जरथुस्त और उनके अनुयायी बहुत व्याल नर बहू से देशों न भटकते रहे होंगे। उक्त विलाप से यही अर्थ निकलता है कि जरथुस्त के साथ जो लोग ईरान देश में पहुँचे थे वे मूलतः किसी अन्य देश के निवासी थे।

इस समय में एक बात और स्मरण रखने योग्य है। यूरोपीय विद्वान प्रायः जरथुस्त का काल ७वीं या ८वीं शताब्दी ६००-५०० मानते हैं। यह भावना उतनी ही भात तथा असत्य है जितनी ऋग्वेदका हजार बारह सौ वर्ष ६००-५०० में बना हुआ मानने की कल्पना। वास्तव में अमुरोपासक आर्यों के इधर-उधर भटकने फिरने का यह काल लगभग ८-१० हजार वर्ष पहले रहा होगा। पर सौ वर्षों तक भटकने रहने के बाद ही वे लाग स्थायी रूप से उस देश में बसे होंगे जो आज भी ईरान का आर्यों का देश कहलाता है। वास्तव में जरथुस्त का समय भी कहीं पुराना होना चाहिये।

कई यूनानी लेखक जरथुस्त के समय को ६००-६०० वर्ष लगभग (अब से ८०० वर्ष पूर्व) मानते भी हैं और पारसी पुरोहित लाग ईरान की 'शायाओ' का अस्तित्व जरथुस्त से भी पहले का मानते हैं। एक पुराना यूनानी लेखक मेथस जो इरानी सन् ४७० वर्ष में हुआ, कहता है कि जोराटर (यूनानियों ने जरथुस्त का नाम जोराटर कर दिया) द्रोणा युद्ध से ६०० वर्ष पहले हुआ था और इस हिसाब से जोरा



एर का काल ६० सन् पूर्व २४०० वर्ष के लगभग सिद्ध होता है। एरिस्टोटल जोरास्टर का समय प्लेटो से पाच हजार वर्ष पहले बतलाया है। १

अमेजी सदर्भ ग्र य एन साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका म कहा गया है कि यद्यपि एडवर्ड मेयर नामक एक लेखक जरथुस्त का काल अनुमान से १००० वर्ष ६० पृ० मानता है किन्तु असीरिया के लेखों के अनुसार जरथुस्त बहुत प्राचीन काल में हुआ था। २

जरथुस्त के सम्बन्ध म विचार करते समय एक बात और भी ध्यान देने योग्य है। ऐसी परम्परागत कथा है कि मज्द ( इरानी ) घम के सस्कृत अर्थात् शुद्ध रूप को इरान में मग लोगों ने फैलाया। ३ ये लोग मीडिया प्रदेश में रहते थे जो ईरान के उत्तर पश्चिम में है। उस मग अथवा मगोय घम के सस्थापक जरथुस्त ही माने जाते हैं। ४ सम्भवतः मिद या मीडिया प्रदेश में मगों का अधिक प्रभाव था। श्री सम्पूर्णानन्द का मत है कि सम्भवतः ये मग भी उन्हीं लोगों से हैं जो पारस्परिक समाममें हार कर बाहर चले गये थे। पुराणों के अनुसार ( मत्स्य पुराण अध्याय ६ ) देवों में जिन्हें आदित्य ( अदिति की सत्तान ) कहा गया है उनमें एक मग भी हैं तथा दूसरे त्वष्ण है। जिस प्रकार बाहर जाने वालों में त्वष्ठा की सत्तान पण्डित लोग माने जाते हैं उसी प्रकार मग की सत्तान य मग लोग भी हो सकते हैं जो इरान तथा उत्तर पश्चिम के कोने में जाकर बसे।

ये मग लोग अपने साथ जो भाषा लाये वह 'जिन्द' कहलाती थी जो वैदिक 'छन्द' का विकृत रूप समझा जाता है। जिन्द पहलवी और सस्कृत एक ही कुटुम्ब की भाषायें हैं परन्तु जिन्द सस्कृत से अधिक निकट मानी जाती है। एक विद्वान ने तो यहाँ तक सिद्ध किया है कि जिन्दावेस्ता की कद पत्तियाँ थोड़े देर देर के साथ वेद की ऋचायें बन जाती हैं। ५

१—जगद् गुरु भारतवर्ष—सुग सम्प्रतिराय भण्डारी।

2 *Assyrian inscriptions relegate him to a more ancient period Edward Meyer conjecturally puts the date of Zoroaster at 1000 B C*  
—*Encyclopedia Britannica Zoroaster*

३—आर्यों का आदि देश—सम्पूर्णानन्द पृष्ठ ७३

4 *He was famous in antiquity as the founder of the wisdom of Magi Whatever his date he was their teacher and instructor in the Magian religion modified their former religious customs and introduced a composite belief Probably he belongs to the old school*  
—*Median Magi —Encyclopedia Britannica Zoroaster*

5 यथा —अवेस्ता—'मोयथा पुयूम तदस्मिन् हाओमन् वदता मययो,  
और सस्कृत—पो यथा पुत्र तदण सोमधेत् मार्ये।

जेन्दा वेस्ता के अदुर मज्द मिष् और बेरीयायू देवता असुर, महत्, मिश तथा वृत्रहन् के रूप माने जाते हैं। ऋग्वेद में जैसी स्तुति इन्द्र की की गई है वैसी ही अवेस्ता में अदुरमज्द की है। सस्कृत और जेद भाषाओं में समानता देखकर सर विलियम जोन्स ता आश्चर्य चकित रह गये थे। उन्होंने ट्यू पेरन के जेद कोष में १० में से ६-७ शब्द शुद्ध सस्कृत के बताये हैं।†

इन कथनों का तात्पर्य यह है कि जरपुस्त का समय ७ वीं अथवा ८ वीं शताब्दी ई० पू० न होकर कई सहस्राब्दी ई० पू० होना चाहिये तथा प्राचीन इरानी ( जेद ) तथा सस्कृत भाषाओं में भी बहुत अधिक साम्य दिखाई देता है।

उक्त भाषा साम्यके अतिरिक्त अन्य कई प्रमाण भी ऐसे मिलते हैं जिससे स्पष्ट होना है कि इरान के प्राचीन निवासी भारत से ही गये हुए लगये। जरपुस्त की वाणी 'गाया' कहलाती है जो शुद्ध सस्कृत शब्द है। डा० ताग्योर वाला का कथन है कि भाषा और भाव दोनों ही दृष्टियों में गाया और ऋग्वेद के आरम्भिक मंत्र समान हैं एव दोनों में एक ही छन्द का प्रयोग हुआ है।\*

अधिकांश विद्वानों का मत है कि भारतीय आर्यों में चार जातियों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का विकास भारत में ही हुआ तथा उपनयन आदि संस्कार भी यहीं पर विकसित हुए। इरानियों में भी भारत के समान चार जातियाँ—आधुवन, रथेस्तार, वराय और हुतो I—का होना तथा उपनयन संस्कार ( जिसे नवचोत कहा जाता है ) का प्रचलन यही सिद्ध करता है कि ये लोग भारत से अपनी कुल प्रथायें भी वहीं ले गये अथवा भारत में उनमें जो प्रथाएँ प्रचलित थीं, उन्हें उन्होंने अपनी नई भूमि में भी चालू रखा।

इरान की प्राचीन पुस्तकोंमें जरपुस्तको 'दख्युना' भी कहा गया मिलता है जो वैदिक शब्द 'दस्यु' का इरानी रूप दिखाई देता है। यद्यपि वैदिक साहित्यमें 'असुर' शब्दके समान 'दस्यु' भी एक अनादर सूचक शब्द बन गया है, परन्तु इरानी साहित्यमें यह शब्द भी सम्मानसूचक माना गया है। 'दस्यु' और 'असुर' ऋग्वेद में प्रायः एक ही मान गये हैं और जान पड़ता है कि जिस प्रकार 'असुर' शब्द बाद के काल में अनादर सूचक बन गया उसी प्रकार 'दस्यु' भी बन गया। हिन्दु इरान में ये दोनों ही शब्द सम्मानसूचक बने रहे। प्रारम्भ में 'असुर' शब्द आदरसूचक था क्योंकि ऋग्वेद में इन्द्र, वरुण, अग्नि

† I was not little surprised to find that out of ten words in Du Perron's Zend Dictionary six or seven were pure Sanskrit — Sir William Jones.

\* सस्कृत के गार अन्वय—रामधारी विह दिवानर पृष्ठ ३२।

• हमारा देश—डा० सत्यनारायण।

महत आदि सभी को 'असुर' कहा गया है। किंतु बाद में यह अर्थ बदल गया और असुर शब्द से दुष्ट आत्माओं का बोध होने लगा। इसके विपरीत ईरान में असुर अथवा 'असुर' शब्द ईश्वर के लिये ही प्रयुक्त होता रहा। इसी प्रकार दस्यु अथवा दरव्युना शब्द महा आदर सूचक बना रहा तथा देव शब्द निर्दोष अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। इससे यही अनुमान होता है कि ईरान के प्राचीन निवासी भारत से ही बहा गये तथा पारसी शब्दों के कारण उन्होंने शब्दों का पुराना अर्थ ही कायम रखा जबकि आर्यों ने उन अर्थ बदल दिया।

ईरानी मैदान के दक्षिणी भाग का पुराना नाम 'पशु' अथवा फारस था। १६३५ बहा की सरकार ने इस नाम को बदल कर अपने देश का नाम ईरान रखा। इस आध पर कि वास्तव में 'फारस' देश के एक प्रांत का नाम है। श्री पौक्रोक का अनुमान है ईरान के इस भाग में भारत से जो लोग पहुँचे थे वे वीर परशुराम के वंशज थे और उन्होंने अपनी नदी प्रती का नाम 'पशु' रखा था।

कुछ विद्वानों का अनुमान है कि ईरानी धर्मग्रंथ 'जेदावेस्ता' का नाम अथर्ववेद नाम पर रखा गया है क्योंकि वैदिक साहित्य में अन्य नामों में एक नाम 'छन्द' भी अथर्ववेद ही का है। 'जेद' शब्द इसी छन्द का अपभ्रंश है तथा 'अवेस्ता' 'वेद' का अपभ्रंश है। इस प्रकार 'जेदावेस्ता' का अभिप्राय है 'छन्द वेद'।

ईरान के प्राचीन निवासी भारत से ही बहा गये न कि मध्यएशिया तथा अन्य किर देश से इसका अंतिम तथा सुदृढ़ प्रमाण है बहा की नदियों के नाम 'हरहवती' तथा 'हरयू' होना। सभी विद्वान मानते हैं कि ये नाम 'सरस्वती' तथा 'सरयू' के ही ईरान रूप हैं। अब यह निश्चित है कि उत्तरी भारत के जो प्राचीन निवासी ईरान में जाकर बसे उन्होंने अपनी प्रिय नदियों के नाम 'सस्वती' और 'सरयू' बहा की भी नदियों के दे दिये। इसी प्रकार काशी नगरी के नाम पर 'काशा' नगरी उखाद गई जिसका वर्ण बेबीलोनिया वाले अक्षरों में दिया गया हुआ है।

### (२) फिनीशियन अथवा पणि —

एक अन्य महत्वपूर्ण जाति जिसे एशिया तथा यूरोप में इतिहास में प्रमुख भाग दिया 'फिनीशियन' कहलानी थी। जिस प्रकार इतिहास की अनेक प्रमुख घटनाओं—आय, द्रविड, गुनेरी आदि के सम्बन्ध में इतिहास में विद्वानों में मतभेद है उगी प्रकार फिनीशियन लोगों के सम्बन्ध में भी है। अनेक भाषीय विद्वान फिनीशियन लोगों के मूल स्थान भारत का ही मानते हैं तथा द्रविड में जिन 'पणि' लोगों का वर्ण अनेक स्थानों पर मिला है उन्हीं को फिनीशियन लोगों का पूर्वज मानते हैं। इतिहास इता

अन्य बताता है कि फिनीशियन लोग किसी समय में भारत से लेकर सीरिया (शाम) तक तथा आगे भूमध्यसागर एवं अटलांटिक महासागर तक फैले हुए थे तथा व्यापार करते थे।

यह बात सर्वमान्य है कि एक समय में पणि लागो की मुख्य ज्ती सीरिया (शाम) के समुद्री तटों पर थी। उनके मुख्य नगर टायर और सिडान थे। टायर नगर बहुत पुराना है तथा उसका नाम पुराने बाइबिल में भी मिलता है। यह नगर प्राचीन कालमें भी अपने व्यापार के लिये प्रसिद्ध था। पाँचवीं शताब्दी ३० पू० का यूनानी इतिहासकार हेराडाटस इस नगर में गया था और उसने लिखा है कि उस समय भी टायर नगर को २३०० वर्ष हा चुने थे। इस प्रकार यह नगर अबसे लगभग ५ हजार वर्ष पुराना है।

यूरोपीय विद्वान प्रायः ऐसा मानते हैं कि फिनीशियन लोग शाम (सीरिया) के ही मूल निवासी थे जो १२० मील लम्बा किन्तु सड़ड़ा प्रदेश था और जब वे लाग सरगामें बढ़ते गये तो उन्हें समुद्रमें फैलकर भूमध्यसागर में नई बस्तियाँ बसाना पड़ीं। वे यह भी मानते हैं कि ये लोग सभार के प्रायः प्रत्येक ज्ञान देश से व्यापार करते थे। वे मानते हैं कि फिनीशियन लोग सीरिया से ही बहा उनकी मुख्य बस्तिया थीं भूमध्यसागर में आये।

किन्तु अन्य यूरोपीय इतिहासकारों ने यह भी स्वीकार किया है कि फिनीशियन लोगों की मूल बस्तिया शाम में नहीं थीं बल्कि शाम में आने के पूर्व वे लाग अरब तट पर रहे हुए थे तथा सिद्ध, अफ्रीका तथा दूर के देशों से व्यापार करते थे। प्रसिद्ध इतिहासज्ञ रागोजिन ने ऐसा ही मत प्रकट किया है। २

1 *The Phoenicians were the first Syrian people to assume importance in the 11th century B C Their country was a narrow stretch of coast about 120 miles in length seldom 17 miles in width between Lebanon mountains and the sea When Phoenicians grew in number they were obliged to betake themselves to sea They established colonies throughout Mediterranean and had extensive commerce with every region of the known world —Encyclopedia Britannica Vol, 17 Phoenicians*

2 *The Puna were essentially a commercial race An important branch of these gained possession of the finest portion of Arabia the present Yemen and the opposite protruding corner of eastern Africa now known as Somali Coast which commands the Commerce of Red Sea Arabian Sea and even the more distant Indian Ocean Here the Puna lived and traded peacefully with Egypt long before we hear of the Phoenicians.*

*Assyria - Z A Rogozin III Sons of Canaan*

श्री रागोजिन का यह भी मत है कि सीरिया (शाम) में बसने से पूर्व इन फिनीशियन लोगों का घर अरब के किनारे बहरीन टापुओं में था और वहाँ वे कई शताब्दियों तक रहे होंगे। श्री रागोजिन यह भी कहते हैं कि इन्हीं लोगों में एक जाति का नाम दुत अथवा पुना था और उसी को बिगाड़कर यूनानियों ने इनका नाम फिनीशियन कर दिया जिस नाम से वे आगे प्रसिद्ध हुए। 1

कुछ यूरोपीय इतिहासकार यह भी मानते हैं कि ये फिनीशियन लोग पहले इरान में रहते थे और इस प्रकार फिनीशियन लोगों का घर क्रमशः पूर्व की ओर हटता गया है और जैसा कि ऊपर बताया गया है उनके भारत तक फैले होने का पता चलता है। अतः फिनीशियन लोग मूलतः भारत के निवासी रहे हों तो का आश्चर्य की बात नहीं। वे लोग कुशल समुद्री व्यापारी थे यह सभी लोग मानते हैं। व्यापार के सम्बन्ध में भी वे भारत से चलकर पहले इरान में पहुँचे होंगे, फिर अरब के तटों पर बसे, फिर आगे चलकर वे सीरिया में बस गये और अनेक शताब्दियों तक उसे रहे जिससे लोग उन्हें सीरिया का ही निवासी समझने लगे। फिर वे यहाँ से क्रीट और साइप्रस टापुओं में पहुँचे और वहाँ से भूमध्यसागर में अनेक बस्तियाँ बसाते हुए वे भूमध्यसागर के पश्चिमी छोर तक पहुँच गये और फिर स्पेन के समुद्री मुहाने को भी पार करके वे स्पेन के दूसरी ओर फैले हुए विशाल अटलांटिक महासागर तक पहुँच गये। स्पेन के पश्चिम में जिब्राल्टर को पार करके उन्होंने गेटिज़ नाम की बस्ती बसाई थी जो बाद में केटिज़ नाम से प्रसिद्ध हुई। इस बस्ती तक वे लोग ११ वीं शताब्दी ६० पू० में पहुँच गये थे ऐसा पता लगता है।

यूरोपीय विद्वानों का मत है कि इन फिनीशियन लोगों के पूज्यों ने ही जो पुना या पुत कहते थे, मिस्र और यूरोप को भी अनेक बातों में सम्यता का पाठ पढ़ाया था।

1 *The group of small islands now known as the Phoenician Islands situated close to the Arabian coast seems to have been the first known home of the Hamites of Canaan before they separated and multiplied into numerous tribes which overspread all the fruitful portions of Syria and were to play so important a part in the fortunes of the Hebrews for which reason the Biblical historian gives so full and particular a list of these (See Genesis X 16-19) Here they must have dwelt for centuries. One of these Hamitic tribes was even then of sufficient pre-eminence to have received a separate name that of Punt or Puna (the Phat or Put of Genesis) later corrupted under Greek influence into Phoenician and to have been personified as one of Ham's own sons—Assyria Z A Ragorin - III Sons of Canaan.*

यह भी माना जाता है कि इन्हीं लोगों ने जो प्यूनिक भी कहलाते थे—यद्यपि उनमें अनेक दोष भी थे—सभ्यता के विकास में बड़ी सहायता दी। बहुत से लोग वर्णमाला के आविष्कार का श्रेय भी इन्हीं लोगों को देते हैं क्योंकि तब तक यूरोप में फरी भी वर्णमाला प्रचलित नहीं थी।

अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि फिनीशियन लोगों का भारत से क्या तक सम्बन्ध था। यह तो हम देख ही चुके हैं कि इनका फिनीशियन नाम यूनानी लोगों का रखा हुआ है। इससे पूरा भी उनका नाम पुना या पुन मिन्ना है। अरब के जिस भाग में पहले ये लोग बसे हुए थे उसका भी नाम पुना या पुनत था। पुरानी बाइबिल में उनका नाम पुट या पाट भी मिलता है। इसी में मिलता-जुलता नाम ऋग्वेदमें अनेक स्थानों पर मिलता है और वह नाम है—'पणि'। ऋग्वेद के वर्णनों से यह भी ज्ञात होता है कि ये लोग व्यापारी थे किन्तु साम ही यह भी ज्ञात होता है कि ये लोग अच्छे व्यापारी न थे। ये लोग तस्करी व्यापार, पशुओं की चारा आदि भी करते थे। ये लोग धन कमाने के लिये क्रां भी साधन राखी नहीं छोड़ते थे। इसी कारण आर्यजन इनसे बहुत घमड़ाने से और उनकी अमंगल कामना करने से। ऋग्वेद (६-७०-४) में 'उतैरसद्र पणय' आदि शब्द हैं जिनका अर्थ है—'उदाह में डर कर सौ दत्त के साथ पणि लोग भाग गये।' इसी प्रकार ऋग्वेद ६ ५१-१४ तथा ६-६१-१ में भी पणियों का उल्लेख है और उन शब्दों का अर्थ यह समझा जाता है कि ये लोग मेड़ियों के समान लान्सी, अत्यन्त स्वार्थी, यज्ञ न करनेवाले तथा निन्द्य थे। ऋ० १०-१०८ के कई मंत्रों में भी पणियों का बान है।

इस प्रकार ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर पणियों का ध्यान देकर तथा उनकी विशेष-पताएँ भी से ही होने के कारण—जो कि पश्चिमी एशिया में फिनीशियन लोगों में पाई जाती थीं, अनेक भारतीय विद्वानों का अनुमान है कि पणियों का मूलस्थान भारत ही रहा होगा और यहीं से अन्य अनेक जातियों के समान ये पश्चिम की ओर फैलते गये और आशान्तिक जाति होने के कारण भूपृष्ठभाग तक तथा उससे भी आगे पहुँच गये। ये भी उन्हीं जातियों में थे जिनका धार्मिक उपासना तथा अन्य कारणों से भारत

---

*I The Panis form d the great trading class among Rigvedic Aryans and trade d both on land and tra But they were not popular as they were greedy like the wolf extremely selfish and niggardly and non sacrificing and of cruel and unkind speech —Rigvedic culture - Abinash Chandra Das*

की मुख्य आय जातियों से सघर्ष हुआ था तथा जिन्हें अत में भारत छोड़कर बाहर जाने के लिये बाध्य होना पड़ा।

श्री अबिनाशचन्द्र दास का मत है कि पणि लोग ही भारत से फारस की राह में गये थे तथा दक्षिणी बहूचिस्तान, अरब के तट, राल सागर आदि तक पहुँचे तथा उनके साथ भारत के मुख्य पाण्ड्य और चोल लोग भी गये थे। इनमें से चौत्रों ने मेसोपोटामिया में रहकर चालिह्या देश की स्थापना की और पाण्ड्यों ने पणियों के साथ आगे बढ़कर मिथ की स्थापना की। ये पणि लोग ही आगे चलकर सीरिया के तट पर उभरे गये। श्री दास के मतानुसार ये पणि लोग ही उस मिश्रित जाति फिनीशियनों के पूर्वज थे जो जाति यूरोप में पहुँची थी।<sup>1</sup> फिनीशियन लोग पणि और सामी जातियों की मिश्रित सन्तान थे, क्योंकि पणि लोगों ने सीरिया (शाम) में बस जाने के कारण वहाँ के सामी जाति के लोगों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध कर लिया था। यूरोपीय विद्वान फिनीशियन लोगों को सामी जाति का मानते हैं उसका कारण यही जान पड़ता है।

ऐसे कुछ प्रमाण अवश्य मिलते हैं जिनसे इस अनुमान का समर्थन होता है कि पणि लोग मूलतः भारत के ही निवासी थे और यहीं से वे बाहर के देशों में गये। एक बात तो यह दिखाई देती है कि पणियों का मुख्य घाटा व्यापार होने के कारण वे बाहर जहाँ भी गये समुद्र के तट पर ही बस्तियाँ बनाकर रहे। शाम में भी जो उनका मूल देश माना जाता है उनकी छोटी छोटी असंख्य बस्तियाँ टायर, सिडोन आदि समुद्र तट पर ही थीं। आगे बढ़कर उन्होंने भूमध्यसागर के उत्तरी तथा दक्षिणी दोनों किनारों पर ही अपनी बस्तियाँ बनाई थीं, किंतु भारत में उनकी बस्तियाँ केवल समुद्री तटों पर ही नहीं, देशके आन्तरिक भागों में भी होने का पता लगता है। श्रुतियों के वर्णन से ऐसा ज्ञात होता है कि पणि लोग इस देश में बराबर घूमते, व्यापार करते तथा सूद पर धन देते थे। इन्हीं व्यापारों के साथ साथ वे पशुओं को लुभ ले जाते जैसे निन्दापूर्ण वाय भी करते थे जिससे आय लोग उनसे लगे आ गये थे। देश के भीतरी भागों में पलना उसी दशा में सम्भव है जबकि कोई जाति उस देश की मूल निवासी हो।

दूसरे पणियों के जिन देवताओं का पता लगता है उनमें वरुण, बाल तथा मेतकाथ मुख्य थे। वरुण उनका मुख्य देवता था और वे उसने कटर उपासक थे तथा इरानियों की भाँति इन्द्र के विरोधी थे। सम्भवतः इसी कारण आरसी सभ्यता में इरानियों के समान पणि लोगों को भी भारत छोड़ने के लिये बाध्य होना पड़ा। ये लोग भी असुर पूजक माने जाते हैं। श्री अबिनाशचन्द्र दास का मत है कि पणि आदि जातियाँ भारत से बाहर गते गमय परग की पूजा अपने साथ ले गई थी तथा अपने विनाश के अनुसार वह पूजा

करती रही । १

वरुण भारतीय आयो का एक प्रधान देवता या यह बनाने की आवश्यकता नहीं । बाल के समाच में श्री दास का मत है कि वह भी एक प्राचीन वैदिक देवता है । यह सूर्य का बोधक था । श्री रागोजिन का भी ऐसा ही मत है 2 ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर 'श्रुम्ओ' का वर्णन आता है तथा उन्हें जल के पुत्र कहा गया है । णयगाचाय ने इन श्रुम्भ का अर्थ 'सूर्य की किरणों' किया है । सूर्य की किरणों को सूर्य के पुत्र कहना उचित ही है । इसी प्रकार अग्निको भी सूर्यका पुत्र बताया गया है । मेलनाथ विनीशिया लोगों का वायुली लोगोंके मरदुक के समान एक स्थानीय देवता या और उसको मायता भी मरदुक के समान ही होती थी ।

विनीशियन या पणि लोगों के भारत से ही बाहर जाने का एक अर्थ सत्य प्रमाण यह है कि सुमेरी लोगों के समान उनका भी यह विश्वास था कि उनके पूर्वज पू्व के समुद्री तट से आये थे । यद्यपि यूरासीय इतिहासकार 'पूर्व तट' से बेरीनियानिया का तट लेते हैं किन्तु इसका तात्पर्य भारत से ही शत होता है— दरीलोनिया म वे भारत से ही पहुँचे थे 13 वहाँ से वे फारस और अरब के तटों पर बचने हुए सीरिया में पहुँचे और वहाँ बहुत दिनों तक रहे । यहाँ पर उ हें पता लगा कि आगे साइप्रस द्वीप में ताबि की पड़ी पड़ी खदानें हैं आ, वे ओर आगे बढ़ गये और साइप्रस में पहुँच गये । यह समय १५०० इ० पू० के लगभग अनुमान किया जाता है । आगे जब यूनानियों की बढती हुई शक्ति ने उन्हें वहाँ से हगया तो ये लोग आगे गड्डर भूमि सागर के तटों पर जा बसे । यही पर फारयेज नामक नगर बसाया गया जो उनकी शक्ति का एक प्रधान केन्द्र बन गया था । इस प्रसिद्ध उपनिवेश का नाम के लोगों ने दीर्घमान सघन व बाद तट बड़े भूमि सागर में पणि लोगों की शक्ति समाप्त करदी । इस प्रकार से भारत से ही चलकर पणि लोग भूमध्य सागर तक पहुँचे थे । इस तीर्थ यात्रा म उन्हें सत्त्व वर्ण लग होना । वे अथ जानिरी से वैशदिक सत्रय भी करने लग वे । इस कारण यूराय म पहुँचने-पहुँचने

- 1 We then find the existence of the name of Varuna ( Varans Ouranos and Uranus ) not only among Vedic Aryans but also among Iranians the Phoenicians the Greeks and other races which goes to show that the name was taken by the various peoples at the time of their departure from their Central home which was in Sapt Sindh and this God was worshipped according to their conception—*Hippelidic In Abinash Chatterjee Das p 91*
- 2 It was the son whom the Canaanite worshipped calling him Baal the same word as the Babylonian Bel!—*Paganism*
- 3 The Phoenicians themselves believed that they had migrated from Eastern shore—probably meaning B by'onia—*Encyclopaedia Britannica Vol 17 Phoenicians*



उनका रूप पूर्णतया बदल गया और वे एक मिश्रित जाति बन गये थे तथा भारतीयता से बहुत दूर पड़ गये थे ।

### (३) खित्ताई और खुरी मितानी—

पश्चिमी एशिया ( शाम तथा लघु एशिया ) में कुछ अन्य ऐसी प्राचीन जातियों का भी पता लगता है जिनका सम्बन्ध प्राचीन भारत से अथवा प्राचीन काल में भारत से बाहर आये हुए लोगों से शात होता है । ये जातियाँ हैं खित्ताई और खुरी मितानी ।

खित्ताई लोगों का पता पश्चिमी एशिया में २, २॥ हजार वर्ष ई० पू० से लगने लगता है । सम्भव है इससे भी पहिले वहाँ आकर बस गये थे । २००० ई० पू० के लगभग उन्होंने वहाँ एक अपना राज्य स्थापित कर लिया था जो फिनीशिया ( फिनीशियन लोगों की बस्तियाँ ) और ऊररी परात घाटी के बीच में फैला हुआ था तथा पश्चिम में ऐजियन सागर तक चला गया था । यह राज्य काफी बलवान भी था । इसका अनुमान इसी से होता है कि १६ वीं शताब्दी ई० पू० में जबकि बेबीलोनिया में हमुराबी के पौत्र का राज्य था, तब खित्ताई लोगों ने बेबीलोनिया पर आक्रमण करके बाबुली लोगों को ऐसी कठरी पराजय दी थी कि वहाँ हमुराबी के वंश का अन्त ही हो गया ।

कुछ लोगों का कहना है कि ये लोग 'त्रितुम्' आर्य भाषा भाषी लोग थे जो ३००० ई० पू० के लगभग पश्चिमी एशियामें आ बसे थे । अन्य लोग उन्हें तूरानी और सामी रक्त के मिश्रण से उत्पन्न जाति मानते हैं । यहाँ यह स्मरणीय है कि लोकमान्य तिलक के मतानुसार खालदी लोग भी तूरानी जाति के थे । कुछ लोगों का अनुमान है कि ऋग्वेद में "तोरयाण" शब्द आया है जो सम्भवतः तूरानी लोगों के लिये ही है । श्री नरदेव शास्त्री का कथन है कि धार्मिक तथा आचारों के भेद के कारण सप्त सिंधु प्रदेश से जिन असुर लोगों को निकाला गया था वे पश्चिम की ओर जाकर वहाँ की तूरानी जाति में इतने घुल मिल गये कि रक्त सम्बन्ध भी स्थापित हो गया । १

कुछ भी हो इतना सत्य जान पड़ता है कि २००० ई० पू० के लगभग इन लोगों का—जा रती या खित्ताई बड़े जाने थे तथा जिन्हें पुगनी साइबेरिया में 'खित्ताइत' कहा गया है—सब पश्चिमी एशिया में स्थापित हो चुका था और यह एक सभ्य राज्य सम्भल जाता था । सभ्यता में भी खित्ताई लोग बड़े बड़े समझे जाते थे । यूरोपीय इतिहासकारों के मतानुसार उस काल में पश्चिमी एशिया तथा आसपास के क्षेत्रों में मिस्र और बेबीलोनिया के परचात् तीसरा मन्त्वपूर्ण स्थान खित्ताई लोगों को ही प्राप्त

या 1। १० वीं १६ वीं शताब्दी ई० पू० में मिस्र के फरोहाओं (सम्राटों) ने पश्चिमी एशिया पर जो आक्रमण किये वे मुख्यतः इन्हीं गिताइयों के विरुद्ध किये गये थे। चार शताब्दियों तक निरन्तर युद्ध के बाद दोनों में १४ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में— जबकि मिस्र में रामेसस द्वितीय का राज्य था—सधि हो गई। यह सधि चापी की एक प्रतिष्ठा पर लिखी गई थी क्योंकि यह माना जाता है कि गिताइ लोगों के पास चापी प्रचुर परिमाण में थी।

गिताइ लोगों की पूर राजधानी खता नामक स्थान पर थी। इसी कारण ये लोग भी खती अथवा गिताइ कहे जाते थे। काइविल में इन्हें 'हिताइत' कहा गया है। पुराने यूनानी लोग भी इन्हें 'हिताइत' ही कहते थे तथा कभी कभी 'इवेन ग्रामो' भी। पुराने यूनानी कवि होमर के काव्य में एक शब्द केटआइ आया है जो सम्भवतः गिताइयों के लिए ही होगा।

मिस्र, बेरिलोनिया, अगोरिया तथा पदोसी पुरीं मित्रजी लोगों से इन खिताइ लोगों के भ्रमणों के कई शताब्दियों तक चञ्चे रहे और ये सभी लोग गिताइयों से भयभीत रहते थे। मिस्र ने तो इन्हीं लोगों के डर से मित्रजी आदि लोगों से मित्रता की सधि की थी। १६०० ई० पू० के लगभग गती और मित्रजी जातियों के लोगों ने—जो अरामी माने जाते थे—शाम पर हमला करने यहूजियों और आराम प्रांत लोगों को बहा से बाहर निकाल लिया था। मिस्र इतिहास में ऐसे प्रमाण भी मिलते हैं कि बिन दिनों वहाँ १८ वें तथा २० वें राजवंशों का राज्य था (१४००-११६० ई० पू०) उन दिनों मिस्रान खिताइ राज्य समस्त शाम तथा मिस्र पर भी अपना आधिपत्य स्थापित करने की योजनाएँ बना रहा था। मिस्र पर 'हाइक्सास' लोगों (गटरियों) का जो आक्रमण हुआ था 2 जिसका काल कुछ इतिहासकार १६ वीं शताब्दी तथा कुछ २० वीं शताब्दी ई० पू० मानते हैं—उनमें मुख्यतः खिताई लोग ही थे। 10

1 *Hittites the ancient oriental people ruled over a great part of Asia Minor and Syria between 2000-1200 B C and imposed their own high degree of civilization upon that region. Pivotal of old Egyptians and Assyro-Babylonians in comparison with both these nations the Hittites rank third in importance among people of ancient east—Encyclopedia Britannica Hittites*

2 *It is impossible to fix the date of this important revolution for the Egyptians after the expulsion of the Shepherds erased all traces of their movements. Historians have to be content with vaguely placing the Hyksos conquest anywhere between 2200-2000 B.C.—Assyria by Z. A. Rago in*

3 *In the Hyksos invasion the Canaanites especially the Hittites element was strongly represented, as strongly as the Semitic. Some eminent scholars more than suppose that men of the unknown Hyksos dynasties were Hittites—Rago in*

खिताइ लोगों के अस्तित्व तथा उनकी प्रवृत्ता का सबसे बड़ा प्रमाण बोगज काई नामक स्थान पर ( जो टर्की की वर्तमान राजधानी अगोरा के पास है ) प्राप्त लेख हैं जो मिट्टीकी पट्टियों पर खुदे हुए पाये गये हैं । अनुमान किया गया है कि यह बोगज-कोई स्थान किसी समय खिताइ राज्य की राजधानी रहा होगा और सम्भवत खत्ती के बाद राजधानी यहीं आगइ होगी । 'बोगज-कोई' तुर्की भाषा का नाम है । इस स्थान पर मिट्टी की बड़ी बड़ी इटों पर लिखे हुए लेखों का एक पूरा दफ्तर का दफ्तर प्राप्त हुआ था । इसका पता मन् १६०७ में ह्यू विन्डलर नाम के एक नाम विद्वान ने लगाया था—जबकि वह क्यादो सियार नामक स्थान पर खुदाई करा रहा था । इसमें से कई लेख उस समय के राजनीतिक व व्यवहार का प्रभूत करते हैं तथा इन्हीं में कुछ सधि पत्रों के दस्तावेज भी हैं । ऐसे कुछ दस्तावेज ८८ भाषाओं में लिखे हुए मिलने हैं । ऐसे ही दस्तावेजों में एक यह प्रसिद्ध सधि पत्र भी है जिसमें 'मित्तर, उदवता, इदार, गय-तिया—' ( मित्, वरण, इद्र तथा नाथन ) नामक आर्य देवताओं का सधिपत्र के साथी रूप में आवाहन किया गया है तथा जो प्राचीन भारतीय इतिहास की दृष्टि से एक अत्यन्त महत्वपूर्ण दस्तावेज है । इन पड़ता है १४ वीं शताब्दी ई० पू० में खिताइ के वर्तमान राजा ने—जिसका नाम 'गुप्ती तिमारा' कहा गया है, उत्तरी शाम पर अपना आधिपत्य पूरा रूप में स्थापित कर लिया था + उसने मिननी के वर्तमान राजा को—जिसका नाम 'मत्तिगना' कहा गया है, पराजित किया और फिर इन दोनों राजाओं ने एक सधि करली ( १८३० ई० पू० ) । यह बड़ी सधि है जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है और जिसमें मित्, वरण आदि देवताओं के नाम आय हैं । इन नामों से यह पूणतया स्पष्ट होता है कि मिननी के लोग तो आर्य थे ही तथा आर्य देवताओं को मानते ही थे, साथ ही खिताइ लोग भी इन आर्य देवताओं पर भद्रा रखते थे अथवा वे इन देवताओं के आवाहन में अपने को सम्मिलित करते । इसी से यह अनुमान होता है कि खिताई लोग भी उन्हीं आर्य जातियों के वंशज थे जो पूर्व कालमें भारत से बाहर चली गई थीं तथा जो अन्य जातियों के साथ वैसाहिक नाम पर वसति कर देने के कारण

+ *The third of the powers besides Khurrians and Egypt disputing Syria in the 14th century B C were the Hittites who finally under their greatest warrior Shuppli Lullumash ( 1380 B C ) not only defeated the kingdom of Ashtani but established a first dominion of their own in Northern Syria —Encyclopaedia Britannica Syria*

० यह सम्भवत किसी सङ्कलन का विस्तृत रूप है क्योंकि मिननी राजाओं के नाम सरत के होते थे ।

मिश्रित जातियाँ बन गई तथा सामी और इरानी जातियाँ मानी जाने लगीं। सम्भवतः ये भी उन्हीं जातियों में से हैं जिनके सम्बन्ध में पुराणों में यह उल्लेख मिलता है कि वे बाहर जाकर फिर कभी स्वदेशमें न लौटीं तथा भ्रष्ट बन गईं। इस प्रकार रिताई लोगों में भी भारतीय रक्त का मिश्रण अवश्य जान पड़ता है।

११०० ई० पू० व लगभग इन रिताई लोगों की शक्ति समाप्त हो गई तथा ७०० ई० पू० व लगभग रिताइयों का साम्राज्य अन्तिम रूप में नष्ट होगया। लगभग ३ हजार वर्ष तक अपना अस्तित्व बनाये रख कर यह साम्राज्य इतिहास के पृष्ठों में अपनी छाया छोड़कर सदा के लिये अस्त होगया।

### सुरी और मित्रा—

सुरी और मित्रा जातियों के सम्बन्ध में ऐसे अधिक दृढ़ प्रमाण मिलते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि ये आर्य जातियाँ थीं तथा किसी प्राचीन काल में भारत से बाहर चली गई थीं। कई यूरोपीय विद्वानों ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है कि ये लोग द्वितीय अथवा तृतीय सहस्राब्दियों में भारत में बहा पहुँचे थे<sup>1</sup> यह भी माना गया है कि ये लोग आर्य थे तथा उन्होंने रिताइयों के देश ( वर्तमान टर्की ) में अपना राज्य स्थापित किया था।<sup>2</sup> इसने निपरीत कुछ लोगों ने अनुमान किया है कि मित्रा के लोग इरानी थे और ईरान से ही पश्चिम की ओर बढ़े थे। किन्तु अधिक मत उक्त भारतीय आय मानने के ही पक्ष में हैं—विशेष कर इस कारण कि उनके देवताओं में मित्र, वरुण और नासत्यों के साथ इन्द्र का भी नाम आता है जबकि प्राचीन इरानी लोग इन्द्र को देवता नहीं मानते थे। बल्कि इन्द्र को हेय बनाकर उसकी निन्दा ही करते थे। यह सम्भव है

1 It is to be supposed that in the course of their wanderings in India the earliest Indians or at least a part of them touched Mesopotamia and Syria where Khurri Metanni Kingdom was their centre in the Second millennium or even in the third millennium B C

—Encyclopedic Britannica Vol XI—Hittites

2 The Boghaz Kudis inscription shows that besides Hittites and Luwist there was also in the 2nd millennium B C another Indo European people within Hittite area an Aryan conquering people which formed the governing class in the Kingdoms of Khurri and Metanni and probably in consequence of a former expansion of Khurri Kingdom in Syria and Palestine not seldom supplied Syrian and Palestine cities with their dynasties—Encyclopedia Britannica

कि जब भारत के ये आर्यजन इराक में होते हुए और पश्चिम की ओर बढ़े तो उनमें कुछ ईरानी आर्य भी जो पहिले से वहा जाकर बस चुके थे—सम्मिलित हो गये हों। मितानी लोगों के कुछ नामों—आर्तमय, आर्नवीज, गुबरदात आदि को कुछ विद्वानों ने इरानी माना है। मितानी राजाओं के कुछ अय नाम—सुनर्न, दशरथ आदि जो एक पश्चिम पर लिखे मिले हैं भारतीय ही जान पड़ते हैं। दशरथ तो नि स देह शुद्ध भारतीय नाम है ही। तथा यह नाम भारतीय इतिहास के लिये चढ़ा महत्वपूर्ण है। इससे यह स्पष्ट होता है कि जब ये आर्य जातियाँ गगन में बाहर गइ होंगी, उस समय भी भारा में दशरथ नाम प्रचलित था। इसमें दशरथ तथा राम की ऐतिहासिकता सिद्ध होना है नर्थात् दशरथ और राम रामायण की कथा में कल्पित नाम नहीं बल्कि ऐतिहासिक पुरुष जान पड़ते हैं तथा यह भी सिद्ध होता है कि उनका समय उस काल से पूर्व का होना चाहिये जबकि उक्त आर्य जातियाँ भारत छोड़कर बाहर गइ। यह मितानी का दशरथ एक ऐतिहासिक व्यक्ति था यह भी स्पष्ट है, क्योंकि मिस्र के इतिहास में भी उसका नाम मिलता है। दशरथ के पितामह ऋतोत्तम तथा स्वयं दशरथ ने अपनी क्रियाओं में विवाह मिस्र के राजा अमेनोपिस तृतीय तथा अमेनोपिस चतुर्थ के साथ किये थे।

खुर्रि और मितानी के नाम प्रायः साथ-साथ लिखे जाते हैं। इससे अनुमान होता है किये दोनों एक ही जाति की दो शाखाएँ थीं। खुर्रि लोगों को 'हुर्रि' या होराइट भी कहा गया है। इनके मतुष्यों के नाम भी मितानी के लोगों के समान ही शुद्ध सभ्यता भाषा के होते थे।<sup>1</sup>

इस सम्बन्ध में एक बात और उल्लेखनीय है। पीछे के अध्यायों में इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि सुमेरु, बेबीलोनिया तथा मिस्र आदि देशों में छोड़ा भारत से पहुँचा तथा रथ का प्रचार भी भारत से ही हुआ। यही बात पश्चिमी एशिया के इतिहास से भी स्पष्ट होती है। शाम तथा लघु एशिया में भी छोड़ा द्वितीय सहस्राब्दी में पहुँचा। सम्भवतः बेबीलोनिया से छोड़े और रथ पश्चिमी एशिया में पहुँचे और फिर वहा से मिस्र में पहुँचे। इस तथ्य को यूरोपीय विद्वानों ने भी स्वीकार किया है। उनके मतानुसार सभ्यता नामधारी 'होराइट' लोग ही अपने साथ छोड़ों से चलने वाले रथ लाये जिन्होंने पश्चिमी एशिया की युद्ध कला में एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी तथा

*1 The latter included the Biblical Horites (Hurrians) and their Indo Aryan feudal aristocracy bearing old Sanskrit names Encyclo Paedia Britannica Vol 17*

रथों में बैठकर युद्ध करना उच्च जाति के सरदारों का एक सम्मान्य व्यवसाय बन गया । 1

बुद्ध यूरोपीय विद्वान खुरी और मित्तरी के लोगों को—इनके नाम खार तथा मेतन भी मिलते हैं जो युद्ध नाम शत होने हैं—भारत से गया हुआ नहीं मानते । उनकी कल्पना है कि आर्य लोगों का मूल निवास दक्षिणी रूस था—वहाँ से वे कई निशाओं में फैले । इन्हीं लोगों ने एकदल ने द्वितीय सहस्राब्दि के मध्य में भारत पर आक्रमण किया और दूसरा दल पश्चिमी एशिया में गया और वहाँ मित्तरी उच्च स्थापित कर शासन करने लगा और अंत में वही के लोगों में घुल मिल गया । 2

किन्तु यह कथन यूरोपीय विद्वानों के प्रतिभ्रम को ही प्रकट करता है । वास्तव में यह बात उनकी समझ में नहीं पड़ती कि आप लोग मित्तरी जैसे दूर देश में वहाँ से निकल पड़े । अतः उन्होंने आर्यों का आदि स्थान मध्य एशिया रहने व स्थान पर दक्षिणी रूस में रखा दिया, क्योंकि वहाँ से सरलता से मित्तरी पहुँचना का सरल था । वही से वे भारत भी आये । परन्तु ये कल्पना भ्रान्त कल्पनाएँ ही हैं ।

#### (४) मय जाति की सभ्यता—

अभी तक हमने भारत के पश्चिम में इरान, शाम, मित्त आदि देशों में बसी हुई कुछ प्रमुख प्राचीन जातियों व इतिहास तथा भारत व साथ उन सब्रथ के विषय में विचार किया । अब हम भारत के पूर्व में दृष्टि डालने हैं जो शत होना है कि प्राचीन

1 *With them they (Horites or Hurbians) brought swift horse driven chariots which revolutionised the art of war and made fighting a knightly profession followed by the Chariots—owning nobility the Marianni Class—Encyclopedia Britannica Vol 17 Palestine तथा*

*With this we may probably connect the wellknown fact that it was almost this very period (1700 B C approximately) that the horse made its appearance —Encyclopedia Britannica Vol. 17 Persia*

2 *The original home of the Aryans appears to have been Southern Russia from which they spread out in several directions At a date roughly contemporary with that postulated for the beginning of the invasion of India (Middle of second millennium B. C) we find another group of Aryans in the near East ruling in the country of Mitanni where they were eventually absorbed into the native population —Encyclopedia Britannica Vol. XII India*

समय में इस दिशा में भी भारतवासियों ने अपनी सभ्यता का विस्तार किया था। स्याम, कम्बोडिया, इण्डोनेशिया, चाली आदि में आर्य-सभ्यता के प्रमाण आज तक मिलते हैं। परन्तु इन देशों में आर्य लोग—अथवा हिन्दू लोग बहुत पीछे पहुँचे थे। इससे सहस्रों वर्ष पूर्व ही भारत से आर्य लोग पूर्व की ओर गये थे तथा वे लोग ही सुदूर अमेरिका तक जा पहुँचे थे, ऐसे प्रमाण पूर्व के देशों में तथा दक्षिणी अमेरिका के कई देशों में भी उपलब्ध होते हैं।

भारत तथा एशिया के पूर्व में विशाल प्रशांत महासागर फैला हुआ है। इसमें अनेक द्वीपसमूह हैं जिनमें से एक पालीनेशिया कहलाता है। पोलो का अर्थ है बहुत से तथा नेशिया का अर्थ है द्वीप जैसे इ डानेशियाका अर्थ है भारतीय द्वीपसमूह। पोलो-नेशिया में टोंगा, समोआ, हवाई, टस्टो आदि अनेक द्वीपसमूह सम्मिलित हैं। यूरोपीय इतिहासकारों का कथन है कि इन द्वीपों के आदि निवासों एशिया महाद्वीप से ही आये थे। उनका यह भी अनुमान है कि इन एशियावासियों ने सुदूर अतीत काल में ही एशिया महाद्वीप की भूमि को छोड़ा होगा और पहलू व मलय द्वीप समूह में बसे होंगे।

परन्तु एशिया महाद्वीप का अर्थ एशिया का कोई भी देश हो सकता है, जहाँ से वे लोग पूर्व की ओर चले हों। यह देश भारत ही हो सकता है, यह जानने के लिये हमें एक अन्य विद्वान् टर्नरू ज० परी का ग्रन्थ देखना पड़ेगा। उनका स्पष्ट कथन है कि सभ्यता के पूर्व दिशा में प्रसरण में भारत का विशेष महत्त्व है, क्योंकि पालीनेशिया के प्राचीन लोगों की परम्पराओं में उसी देश को अपना मूल निवास माना जाता है तथा

*1 The Polynesians undoubtedly came from Asia They must have left the continent at a remote period migrating first into Malaya Archipelago*

—History of the Far East—Hutton Webster

*2 India is of peculiar importance in the study of movement of early culture for it was the original home to which the Polynesian tradition hark's back. The ancestors of Polynesians were the carriers of the archaic civilisation into the Pacific. The civilisation went by sea from pearl bed to pearl bed until it reached America and there again it spread over the widespread pearl beds of the American continent*

*The carriers of this archaic civilisation started from India and went over by way of Indonesia to the Pacific leaving behind their traces that still are to be detected—The growth of Civilisation—W. J. Perry P. 110 and 111*

भारत की ही प्राचीन सभ्यता एक द्वीप से दूसरे द्वीप में होती हुई प्रयाग महासागर में पहुँची और वहाँ से अमेरिका पहुँची।

इस प्रकार पृथ्वी महासागर प्रयाग महासागर म तथा अमेरिका तक में सभ्यता का प्रसार भारत से ही हुआ मानते हैं—यद्यपि इनका इतना विचार अयस्य है कि भारत में यह सभ्यता मिस्र में आई थी तथा यह सभ्यता सुमेर और सिंधु-घाटी में जाती हुई भारत में पहुँची।

यूरोपीय विद्वानों की इन खोजों से अनुमान जाना है कि भारत के निवासी किसी प्राचीन समय में व्यापार के हेतु अथवा अन्य किसी कारण से चलाओं के द्वारा पूव के द्वीपों में गये तथा बहुत समय तक उन द्वीपों में बसने के बाद और पूव की ओर बढ़ते गये यहाँ तक कि अन्त में वे दक्षिणी अमेरिका में जा पहुँचे।

दक्षिणी अमेरिका के विभिन्न प्राचीनतम देशों में सभ्यता का प्रसार होने का पता लगता है वे हैं पेरू और मेक्सिको। श्री परी ना कथन है कि सभ्यता का प्रसार के विद्यार्थियों के लिये मध्य अमेरिका तथा मेक्सिको के देश उद्गमस्थल हैं, क्योंकि इन्हीं देशों में प्राचीन काल में 'मय' सभ्यता का आरम्भ हुआ और बाद में यही सभ्यता अमेरिका के अन्य देशों—होंडुरस, क्यूबेक, ग्वाटेमाला तथा साँचो में उत्तरी अमेरिका तक फैली। उनका यह भी कथन है कि इस सभ्यता में एशियाई सभ्यता के अनेक चिह्न मिलते हैं, श्री इलियट स्मिथ नामके विद्वाने कहा है कि कोसा नामक ग्राम—जो मय लोगों की सभ्यता प्राचीनतम बसती थी, पथरों से खुदी हुई जो मूर्तियाँ मिलती हैं उनमें कुछ मूर्तियाँ भारतीय शायियों की भी हैं जिससे यह स्पष्ट होता है कि इन मूर्तियों अथवा चित्रों के खोजने वाले कारीगर भारत से ही आये होंगे। 1

मेक्सिको के प्राचीनतम सभ्य निवासियों में मय लोगों की गणना की जाती है। ये मय लोग भारत से ही गये हुए अथवा हिन्दू लोग थे। इस विषय पर श्री चमनलाल ने अपने ग्रन्थ 'हिन्दू अमेरिका' में विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला है। उन्होंने बताया है कि इन मय लोगों के यहाँ भी भारत के समान चार सुगों की करना मौजूद थी, उनके विवाह, ज्ञान कर्म, मृतक आदि संस्कार भारतीय संस्कारों से मिलने-जुलने थे तथा राम और सीता के उत्सव भी यहाँ मनाये जाते थे। इसी प्रकार वैदिक आर्या के समान मय लोग आरम्भ में सूर्य, चन्द्र, विद्युत्, पञ्च, पर्यंत, नदी, समुद्र आदि प्रकृति की दिव्य

1 As Elliot Smith has shown so clearly certain carvings at Copan one of the earliest if not the earliest of the Maya cities are those of the Indian type plants. It follows that the carvers or the object which inspired them must have come from India.—Growth of Civilisation P. 121



विभूतियों का पूजन करते थे। पेरू के 'इन्का' जाति के लोग तो अपने को 'सूर्य क पुत्र' भी कहते थे जो सम्भवतः भारत के सूयवशी क्षत्रियों से सम्बन्ध होना प्रकट करता है।

मेक्सिको का जो इतिहास वहीं ने एक लेखक द्वारा लिखा गया है तथा वहीं की सरकार द्वारा प्रकाशित किया गया है उसमें भी यह बात स्वीकार की गई है कि आज जो देश अमेरिका कहलाता है, वहाँ पर जिन लोगों ने सबसे पहले पदापण किया वे लोग भारत से ही पूव की ओर आने यात्रों में से थे।<sup>1</sup>

इसी सम्बन्धमं जी चमनलाल ने मेक्सिको के राष्ट्रीय अनुसन्धान (नेशनल म्यूजियम) के क्यूरेटर श्री रमन मेना (यह नाम भी भारतीयों जसा ही लगता है) का मत दिया है—जो यह स्वीकार करते हैं कि मय लोगों की शारीरिक व्वाकृति भी भारतीय लोगों की तरह ही थी तथा उनकी अब सभी जातें उच्च भारत तथा पूरव का निवासी सिद्ध करती हैं।<sup>2</sup> श्री रमन मेना का यह भी कथन है कि वे दक्षिणी अमेरिका के लोगों की नहुआटी, जापोटना तथा मय भाषाओं का जो अध्ययन कर रहे हैं, उससे भी ये भाषायें हिन्दी यूरोपीय स्रोत से निकली हुई बात हुई हैं।<sup>3</sup>

अब प्राचीन जातियों के समान जो किसी एक प्राचीन देश से किसी दूसरे प्राचीन देश में जाकर बसी हैं, मेक्सिको के लोगों में भी यह परम्परा प्रचलित है कि उनके पूव किसी सुदूर और सुन्दर देश से आय थे।<sup>4</sup>

1 *Those who first arrived on the continent later to be known as America were groups of men driven by that mighty current that set out from India towards the East—History of Mexico Mexican Government Publication Chapter I P 17 quoted in Hindu America*

2 *The Maya Human types are like those of India The irrefutable technique of their beliefs all speak of India and Orient—Prof Raman Mena Curator of National Museum of Mexico quoted in Hindu America by Chamanlal*

3 *At present we are studying the native tongues and find that at least as far as Nahuatl Zapotaca and Maya languages are concerned they are of Hindu—European origin—Prof Raman Mena*

4 *Mexican traditions themselves claim that their ancestors came from a far off and beautiful country—Hindu America*

पेरु में ऐसी कथाएँ प्रचलित हैं कि वहाँ कुछ देवतामार मनुष्य प्रशासक महासागर को पार करके आये थे—उन्होंने पेरु को जीता तथा वहाँ पर बड़े बड़े मकान बनाये ।<sup>1</sup> यहाँ दृष्टय है कि 'मय' जाति का नाम भारत के प्राचीन ग्रामों—साम्बरीय, रामायण, महाभारत आदि में अनेक स्थानों पर आया है । महाभारत में उ है चतुर शिल्पी बताया गया है जो बड़े सुन्दर तथा अद्भुत मकान बनाये क लिये प्रसिद्ध थे । उनसे बनाये हुए मकानों के अग्रशेष भारत में तो नहीं मिलते, किन्तु मेक्सिको में एसे अनेक मय यूरोपीय लोगों द्वारा पाये गये थे तथा कुछ भवनों के अवशेष अत्रतः भी मिलते हैं । इससे अनुमान होता है कि मय जाति के लोग किसी प्राचीन काल में भारत से ही वहाँ पहुँचे थे ।

कई अन्य यूरोपीय विद्वानों तथा अन्वेषकों,—टोलेट, मेरेग्जी, टाउ, पोकोक आदि ने भी इस विषय में काफी अनुसंधान किये हैं तथा बहुत सी सामग्री एकत्र की है जिससे यह प्रमाणित होता है कि जो देश आज अमेरिका कहलाता है उसकी प्राचीन सभ्यता भारत की ही प्राचीन सभ्यता से प्रभावित हुई थी तथा भारत के लोगों ने ही दक्षिण अमेरिका के देशों में पहुँचकर वहाँ राज्य स्थापित किये थे । ये लोग दक्षिणी अमेरिका में कब पहुँचे, इस सम्बन्ध में मतभेद है, फिर भी कई विद्वानों का मत है इसी सभ्यता के आरम्भ के आस पास मय सभ्यता मेक्सिको में पहुँच चुकी थी । ऐसी दशा में मय लोग भारत से इसमें कई सदस्य, वर्ष पूर्व रवाना हुए होंगे, क्योंकि ये लोग प्रशासक महासागर के द्वारों में सेनडो वर्षों तक बसने हुए वहाँ पहुँचे थे ।

कुछ यूरोपीय विद्वानों ने यह सिद्धांत प्रस्तुत किया था कि काल्पनिक से बहुत पुराने यूरॉप के ही लोग अमेरिका में पहुँचे थे तथा उहाँ ने वहाँ सभ्यता का प्रचार किया, किन्तु पुनरावलोकन अनुसंधानों में उक्त मत निरालम्ब अस्तर सिद्ध हुआ है । इसका विपरीत ऐसे लोगों को मेक्सिको में मिलने है जो रंग रूप में हिन्दू तथा मगोत्र जाति के लोगों से समता रखते हैं जो हिन्दुओं से मिलने वाले धार्मिक रीति रिवाजों का पालन करते हैं, जो गणेश, ब्रह्म जैसे हिन्दू देवताओं की पूजा करते हैं तथा पुत्राही भी रखते हैं, जिनसे विवाह, मृतक आदि सम्भार भी हिन्दुओं से मिलने वाले हैं और ये सभी बातें अवशिष्ट रूपसे यही प्रमाणित करती हैं कि मेक्सिको के निवासियों के पूर्वज भारत तथा

<sup>1</sup> There are many legends to prove that American culture is founded by outsiders Peruvian legends according to Torquemada talk of giants who came across the Pacific conquered Peru and erected great buildings—Hindu America

चीन आदि देशों से ही विशेष भारत से वहाँ पहुँचे थे तथा उहाँ ने पहिले दक्षिणी अमेरिका व देशों में सभ्यता का प्रसार किया और फिर यही सभ्यता उत्तरी अमेरिका में भी फैली।

हाल में ( गितगार १९६० में ) अमरीकी सूचना विभाग की ओर से प्रकाशित एक रपटमें भी इसी मत का समर्थन किया गया है। इस लेखमें कहा गया है—

अमेरिफन रेड इण्डियनों के प्राचीन नगरों के ध्वंसावशेषों में दक्षिणी पूर्वी एशिया और भारतीय सभ्यता के चिह्न अब भी दृष्टिगोचर होते हैं। इनसान ( सूर्य पुत्र ) और मय रेड इण्डियनों के सभी प्राचीन सभ्यताओं में उसी प्रकार के मंदिर, स्तूप तथा शिव मंदिर दृष्टिगोचर होते हैं जो दक्षिण पूर्व एशिया में सभ्यता की पढ़ते हैं। यहाँ इन मंदिरों का निर्माण भारत से सभ्यता और सभ्यता का पताका लेकर आने वाले सादसी व्यक्तियों ने किया और धीरे-धीरे समस्त दक्षिण पूर्वी एशिया में इनके प्रयत्नों के फल-स्वरूप भारतीय सभ्यता का प्रसार हुआ।

इसी लेखमें आगे कहा गया है—यही नहीं स्पेनासियों द्वारा मेक्सिको के पत्तनात होने के बाद तक वहाँ 'परचेसी' नामक खेल अत्यधिक लोकप्रिय था। यह परचेसी शब्द भारतीय शब्द पचीमी ( एक प्रकार का चौसर ) का ही अपभ्रंश है और इसके खेलने के नियम और बोड वही हैं जो आज भी भारत से प्रयुक्त होते हैं। पेरू में मिनवा राम नामक त्यौहार अमेरिका रेड इण्डियनों ( इनसान ) का सबसे बड़ा राष्ट्रीय त्यौहार माना जाता है।”

इस प्रकार एक और पश्चिम में सुमेर, अशुर, शाम, मिस्र आदि देशों में जहाँ सभ्यता की लहर भारत से ही पहुँची, वहाँ उसी प्रकार उठने पश्चातवर्ती काल में यह लहर पूर्व की ओर भी बढ़ी तथा प्रशांत महासागर के द्वीप समूहों में होती हुई मेक्सिको तथा दक्षिण अमेरिका के अन्य देशों में पहुँची। इन समस्त तथ्यों पर दृष्टि डालते हुए यदि यह माना जाय कि सभ्यता का प्रसार में भारत की सभ्यता ही सबसे प्राचीन है तथा वही से सभ्यता का पाठ सभ्यता के अन्य देशों ने सीखा तो इसमें कुछ भी अनौचित्य नहीं है।

## सहायक ग्रन्थों की सूची

### हिंदी ग्रंथ

- (१) सृष्टि की कथा—सय प्रकाश
- (२) विश्व सृष्टि का इतिहास—कालिदास कपूर
- (३) सभार का सृष्टि इतिहास—संपदहरीम जदम
- (४) इरान—राहुल साह्यायन
- (५) मध्यएशिया का इतिहास—राहुल साह्यायन
- (६) यूरोप का इतिहास—रामनिशोर शर्मा
- (७) वय र नाम—आचार्य चतुर्भुजेन गान्धी
- (८) वेद और उनका साहित्य—आचार्य चतुर्भुजेन गान्धी
- (९) वैदिक सभरति—रघुनन्दन शर्मा
- (१०) ऋग्वेदालोचन—गणदेव शास्त्री
- (११) भारतीय सभरति का विकास—मणनदेव शास्त्री
- (१२) साभरतिक भारत—मणनदेव उपाध्याय
- (१३) प्राचीन भारत का इतिहास—मणनदेव उपाध्याय
- (१४) प्राचीन भारत का राजनीतिक और साभरतिक इतिहास—रतिभानु सिंह नाहर
- (१५) सभरतिके चार अध्याय—रामधररी सिंह दिनकर
- (१६) हमारी साभरतिक एकता , " "
- (१७) भारत का साभरतिक इतिहास—हरिदत्त उद्दालकार
- (१८) जगत गुप्त भारतवर्ष—सुखसभरति राय भण्डारी
- (१९) प्राचीन भारत—मूल लेखक श्रीनिवास चारतिया—रामरायणीअयमर—  
अनुवादक मोरगनाथ चौध
- (२०) प्राचीन भारतीय इतिहास और परम्परा—रामय राधक
- (२१) हमारा देव—डा० सत्यनारायण
- (२२) भारतवर्ष का इतिहास—भणन देव
- (२३) आर्यों का आदिदेश—स पूर्णाचर
- (२४) भारत भूमि और उन निवासी—जयचरत्र विगानकार
- (२५) प्राचीन भारतीय वेद—भूषा—डा० मानोचर
- (२६) मध्यपुराण—रि दो-सहित सभरति द्वारा प्रकाशित
- (२७) रामपुराण " " "
- (२८) पाणिनि सलीन भारतवर्ष—वासुदेवराय आर्या
- (२९) तमिल साहित्य और सभरति—अनन्दन
- (३०) वेदवर्ष घन—परपुराण चतुर्भुजे

## अग्नेजी पुस्तकें

- (1) *Story of pre historic civilisation*—Dorothy Davidson
- (2) *Story of civilisation*—C E M Joad
- (3) *Growth of civilisation*—W J Perry
- (4) *A history of mankind*—Hutton Webster Ph D
- (5) *A history of ancient world*—
- (6) *A Concise History of religion*—F J Gould
- (7) *Ur of the Chaldees*—Leonard Woolley
- (8) *Digging up the past*—Leonard Woolley
- (9) *Assyria*—Z A Ragoan
- (10) *Inside Asia*—John Gunther
- (11) *Civilisation of China*—Herbert A Giles
- (12) *China*—Sir Robert H Douglas
- (13) *China Her life and her people* Mildred Cable & Francisco Franu
- (14) *Modern Chinese History*—Prof Fan Yun Shan
- (15) *Greece*—E S Shuckburgh Lit D
- (16) *Rome*—Arthur Gilman
- (17) *Cambridge history of India*—C J Rayson
- (18) *Rigvedic culture*—Abinas Chandra Das
- (19) *A History of Sanskrit literature*—A B Keith
- (20) *Arctic Home in the Vedas*—B G Tilak
- (21) *Ancient India*—J N Mc Grindle
- (22) *Hindu America*—Chamanlal
- (23) *Mexico*—Susan Hale
- (24) *Rigveda*—with Sayan's Commentary  
—Manmatha Nath Dutt Shastri

